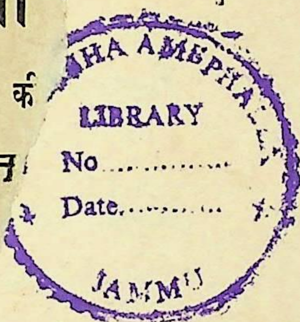
महादेवी वर्मा]

क

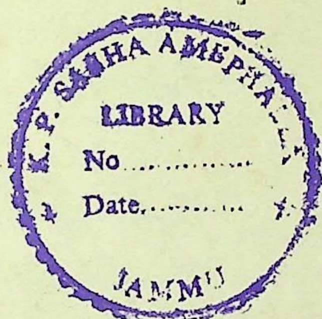
समालोचन



आदरणीय
श्री श्याम सुन्दर 'कैसर'
को सादर

लक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी'

दूसरी बार]



]

आदरणीय

श्री श्याम सुन्दर 'कौसर'

को सादर

लक्ष्मीनारायण टंडन 'प्रेमी'

Donated by
R K Razdan
w/o RL Shant



विषय-सूची

आलोचना-भाग

२—टीका तथा व्याख्या भाग

———

श्रीमती महादेवी वर्मा : एक आलोचना

परिचय

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ वि० फर्रुखाबाद में हुआ। आपके पिता श्री गोविंदप्रसाद वर्मा वकील थे तथा माता श्रीमती हेमरानी देवी विदुषी तथा कला-प्रिय महिला थीं। आपकी माता धार्मिक तथा भावुक प्रकृति की थीं और आपके पिता कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक प्रकृति के थे। घर पर ही आपको संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा दी गई। श्रीमती महादेवी पर अपने माता-पिता की स्पष्ट छाप है। अपने सम्बन्ध में आपने स्वयं लिखा है—"एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली, चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्व-भूमि पर, माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरम्भ की थी। मेरे प्रथम हिंदी-गुरु भी ब्रजभाषा के ही समर्थक निकले, अतः उलटी-सीधी पद-रचना छोड़कर मैंने समस्या-

पूर्त्तियों में मन लगाया। बचपन में जब पहले-पहल खड़ी-बोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओं द्वारा हुआ तब उसमें बोलने की भाषा में ही लिखने की सुविधा देखकर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा। गुरु उसे कविता ही न मानते थे अत: छिपा-छिपा कर मैंने रोला और हरिगीतिका में भी लिखने का प्रयत्न आरम्भ किया।'' इस प्रकार हम देखते हैं महादेवी जी प्रारंभ से ही खड़ी-बोली में कविता करने में गौरव का आभास पाने लगीं। वह १३-१४ वर्ष की आयु से ही कविता करने लगी थीं और उत्सवों पर स्वरचित तथा समस्या-पूर्तिवाली कवितायें सुनाया करती थीं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा इंदौर में हुई। बाद में आप क्रास्थवेट स्कूल, प्रयाग में पढ़ने लगीं। बचपन से ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था। प्रारम्भ से ही वह एकान्तप्रिय तथा सादगी-पसंद थीं। बच्चों के प्रति उनका आकर्षण, सदा हँसते रहने का स्वभाव, गरीबों के प्रति उनकी सच्ची सहानुभूति तथा सेवा का भाव तथा प्रत्येक कार्य को एक अनूठे और आकर्षक ढंग से करने की उनकी आदत विद्यार्थी-जीवन से ही स्पष्ट हो गई थी। श्री सावित्री देवी वर्मा एम० ए० ने एक स्थान पर आपके सम्वन्ध में लिखा है—'ये प्रारम्भ से ही बड़ी संकोची स्वभाव की थीं। आत्मप्रशंसा सुन कर तो उनका मुँह लाल हो जाता था। निबंध का घंटा (विद्यार्थी-जीवन में) केवल इन्हीं की रचना पढ़ने में बीत जाता। जिस दिन 'पोयट्री' होती, बस इन्हीं को अर्थ समझाने को खड़ा किया जाता। उस दिन हिन्दी पीरियड में एक अच्छा खासा कवि-सम्मेलन का मजा आ जाता।' विद्यार्थी-जीवन में ही इन्हें साहित्य-संसार में पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। मुँह पर मुस्कान और अन्तस्तल में उदासी तथा युवावस्था में सन्यासिनी का भेष और स्वभाव—यह तो विद्यार्थी-जीवन से ही इनकी विशेषता रही है। संसार के दुखों की तीव्रता का इन्होंने गहराई से अध्ययन कर लिया था। प्रयाग-विश्वविद्यालय से आपने संस्कृत में

एम० ए० किया। आपका विवाह संवत् १९७३ में डाक्टर स्वरूप नारायण वर्मा के साथ ११ वर्ष की छोटी आयु ही में हो गया। बाद में आप प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रिंसिपल हो गईं।

बातचीत करने की कला में आप अत्यन्त दक्ष हैं। घंटों अपनी बातों से यह मिलनेवालों को मंत्र-मुग्ध किये रखती हैं। मिलने आनेवाले की रुचि, प्रकृति तथा प्रिय विषय का आप न जाने कैसे इतना शीघ्र आभास पा जाती हैं। साधारण मनुष्य हो या प्रकांड पंडित, आपकी बातचीत से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। श्री शिवचन्द्र नागर ने आपके बारे में लिखा है कि 'बातचीत करने वाले के पास यदि बातचीत करने के लिये कुछ भी न हो तो ये उसे बातचीत करने का सूत्र पकड़ा देती हैं और इस प्रकार उसे इस विचार-चक्र से मुक्ति मिल जाती है कि मैं क्या बात करूँ, क्या न करूँ।'

श्री शिवचन्द्र नागर का कहना है कि 'सचमुच महादेवी जी का मन इतना बड़ा है कि उसमें संसार भर का दुःख समा सकता है और संसार के लिये इनके पास इतनी हँसी है कि ये संसार के समस्त दुःख का अपनी हँसी से विनिमय कर सकती हैं।' डा० रमेशचन्द्र वर्मा ने भी इनसे मिलकर लौटते समय अपने इन मित्र से कहा था—'स्त्रियों का मुक्त-हास मुझे अच्छा नहीं लगता, पर ऐसी वात्सल्यमयी हँसी मुझे जीवन में कभी नहीं मिली।' सचमुच महादेवी जी की हँसी निर्मल, निश्छल और अकृत्रिम है, फिर चाहे वह अन्तर से फूटी हो या अधरों से।

आपके ड्राइंग-रूम में जाते ही मन पुकार उठेगा कि यह कलाकार का कमरा है। कवयित्री के साथ आप कुशल चित्रकर्त्री भी हैं। आप के काव्यग्रन्थों में प्रकाशित चित्र आपके ही ब्रुश से निकले हैं। आप संगीत की भी जानकार तथा मर्मज्ञा हैं। इस प्रकार संगीत, चित्रकला तथा काव्य की त्रिवेणी एक साथ महादेवी जी में आपको लहराती मिलेगी।

आपकी स्मृति अत्यन्त तीव्र है। स्वाभिमान की मात्रा तो आप में पूर्ण रूप से है किन्तु वह दम्भ नहीं है। विनम्रता आपका स्वाभाविक गुण है। घरेलू कलाओं में भी आप दक्ष हैं—जैसे पाकशास्त्र का अपूर्व ज्ञान, काढ़ना, कातना, बुनना, सीना-पिरोना आदि। आपको गरीबों तथा ग्रामीणों से तथा उनकी समस्याओं से प्रेम है। यह सत्य है कि आप अधिकतर नगर ही में रहती हैं किन्तु सन् १९४२ की क्रांति के समय राष्ट्र-सेविका के रूप में आपने उन ग्रामों में पैदल घूम-घूम कर साम्राज्यवादी के सताये ग्रामीणों को भोजन, कपड़ा तथा रुपये की सहायता पहुँचाई थी। वैसे ही बंगाल में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष के समय इन्होंने बंग-दर्शन का संपादन करके उसका पूरा रुपया अकाल-ग्रस्तों के सहायता-कोष में दिया था।

गंगा के निकट रसूलाबाद में जहाँ महादेवी जी की अमर कीर्ति, साहित्यकार-संसद-भवन है, वहाँ के प्रत्येक मल्लाह या किसी भी निम्न-स्तर के मनुष्य से पूछिये—वह महादेवी जी की उदारता, सहानुभूति तथा प्रेम का विह्वल शब्दों में वर्णन करेगा। असमर्थ तथा पीड़ित प्रतिभाशाली साहित्यिकों तथा उनके परिवारों के लिये उक्त संस्था की स्थापना महादेवी जी के अकथ परिश्रम का परिणाम है।

आप चाँद की सम्पादिका भी रह चुकी हैं और अपने सम्पादन काल में नारी-जागरण और नारी-आन्दोलन में आपने प्रमुख भाग लिया है—अपने लेखों तथा सम्पादकीय नोटों द्वारा।

संस्कृत, पाली, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, गुजराती, उर्दू और अँग्रेजी में आपका ज्ञान बहुत अच्छा है।

आपने प्रिय कवियों, ग्रन्थों तथा अन्य विचारों के बारे में लिखा है—'विदेशी लेखक मुझे कोई पसंद नहीं। शैली, बायरन आदि 'फिन्-फिन् करते नजर आते हैं। उनमें मुझे कुछ नहीं मालूम पड़ता। ....संस्कृत-कवियों में कालिदास का 'रघुवंश' मुझे प्रिय है और उसका भी अनुवाद मैंने किया है। लेकिन अपेक्षाकृत भवभूति का

'उत्तर-रामचरित' और अधिक प्रिय है। हिन्दी में तुलसीदास की 'रामायण' तो बचपन में बार-बार पढ़ी है। पढ़ी क्या है, रात में सबको पढ़कर सुनाया करती थी और जब तक सो न जाते थे, यही क्रम चलता था। बड़े होने पर शर्म के मारे वह छोड़ दी पर मुझे वर्ण-व्यवस्था वाला व्यक्ति अधिक पसंद नहीं है। गोस्वामी जी की 'पूजिय विप्र शील-गुन-हीना' वाली बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं जन्मना ब्राह्मण की कल्पना ही नहीं करती। और ब्राह्मण का जो शास्त्रीय अर्थ है इस दृष्टि से तो संसार में सर्वत्र ब्राह्मण मिल जायेंगे। मैं तो तुलसी की अपेक्षा कबीर को अधिक पसंद करती हूँ। इस प्रकार विदेशी प्रभाव मेरे ऊपर बिलकुल नहीं है। वह हो भी कैसे सकता है? बचपन से ही संस्कृत पढ़ती रही और अंग्रेजी कवियों को पढ़ने से पहले ही 'नीहार' मैं लिख चुकी थी। वह मेरे ७, ८, ९ दर्जे की रचना है।'

आपकी रुचि बौद्ध-साहित्य के प्रति विशेष रही है। वेद तथा उपनिषदों के प्रति भी आपका झुकाव और ज्ञान तीव्र है और इनका स्पष्ट प्रभाव आपके जीवन तथा आपके काव्य में परिलक्षित होता है।

बाल्यावस्था में आपने राजनीतिक कवितायें भी लिखी थीं जिन्हें विशेष महत्व की न समझ कर आपने स्वतः नष्ट कर दिया। शिक्षा के विस्तार तथा आयु की वृद्धि के साथ-साथ भावों, विचारों तथा शैली में भी परिष्कार होता गया तथा गुरुता आती गई तथा वहिर्मुख जगत से आप हटती जाकर अन्तर्जगत की ओर आती गईं। इस समय निसंदेह आप स्त्री-कवयित्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं तथा कल्पना-प्रधान छायावादी कवियों में आपका बहुत ऊँचा स्थान है। आप रहस्यवादी कवयित्री हैं। कहते हैं कि भावुकता में एक बार आप जैसी कविता लिख लेती हैं उसका बाद में संशोधन नहीं करतीं। यही कारण है कि आपकी कविता में इतनी स्वाभाविकता है।

आपके जीवन के संबंध में एक घटना का वर्णन और आवश्यक है। बौद्ध-दर्शन का अध्ययन उन्होंने बचपन ही से किया था और उससे इतना

अधिक प्रभावित हुई थीं कि आपने निश्चय कर लिया था कि आ
विवाहित जीवन नहीं बितायेंगी। आप बौद्ध-भिक्षुक की भाँति जीव
बिताना चाहती थीं। पर घर वालों के विरोध के फल-स्वरूप, आप
उस समय चुप रहकर अपना अध्ययन जारी रखा। एम० ए० करने
पश्चात् वह पति से पृथक रहकर महिला-विद्यापीठ की प्रिंसिपल होक
सेवाभाव में जुट गईं। छुट्टियों में गाँवों में जाकर दवा-दारू करना पसं
करती हैं। कविता करने के लिए इन्हें बहुत कम समय मिलता है
उन्होंने लिखा है—

'मेरी सम्पूर्ण कविता का रचना-काल कुछ घंटों में ही सीमित किय
जा सकता है। प्रायः ऐसी कवितायें कम हैं जिनके लिखते समय मैं
रात में चौकीदार की सजग वाणी या किसी अकेले जाते हुए पथिक
के गीत की कोई कड़ी नहीं सुनी।

आपका जीवन सेवा का है। आप कार्यकर्त्री हैं किन्तु रचनात्मक औ
मूक। आप ख्याति से दूर भागती हैं पर वकील अकबर इलाहाबादी—

'निगाहें क़ाबिलों पर पड़ ही जाती हैं ज़माने की,
कहीं छिपता है अकबर फूल पत्तों में निहां होकर।'

कवि-सम्मेलनो, रेडियो तथा सभा-सोसाइटी से आप दूर भागती
हैं। इसका कारण है आपकी संकोची प्रकृति। आपका कहना है कि
'भीड़ में व्यक्ति को समझा नहीं जाता।' अपने संबंध में प्रकाशित लेख
तथा आलोचनात्मक पुस्तकें आप कभी नहीं पढ़तीं। आपकी सादगी का
यह हाल है कि आपके पास दर्पण तक नहीं। यहाँ पर हमें तुरंत महात्मा
गाँधी का ध्यान आ जाता है। हाथ में काँच की चूड़ियाँ तथा माथे पर
बिन्दी तक नहीं लगातीं। तभी तो विद्यार्थी-जीवन में इन्हें होस्टल
सुपरिन्टेंडेंट (जिज्जा) प्रायः टोकती—'ए महादेवी ! यह क्या सोंटे से
नंगे हाथ लटकाए फिरती हो। सिर में तेल भी तो नहीं डालती। क्या
उदास-सा चेहरा बनाया हुआ है। पढ़-लिख कर लड़कियों के ढंग ही
अजीब हो गये हैं।'

निराला जी की आप परम भक्त हैं।

अपनी प्रकृति तथा अपने काव्य के सम्बन्ध में आपने लिखा है:—"साहित्य मेरे सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं है, यह स्वीकार करने में मुझे लज्जा नहीं। आज हमारे जीवन का धरातल इतना विषम है कि एक पर्वत के शिखर पर बोलता है और दूसरा कूप की अतल गहराई में सुनता है। इस मानव-समष्टि में, जिसमें सात प्रतिशत साक्षर और एक प्रतिशत से भी कम काव्य के मर्मज्ञ हैं, हमारा बौद्धिक निरूपण कुण्ठित और कलागत सृष्टि पंखहीन है। शेष के पास हम अपनी प्रसाधित कलात्मकता और बौद्धिक ऐश्वर्य छोड़कर व्यक्ति-मात्र होकर ही पहुँच सकते हैं। बाहर के वैषम्य और संघर्ष से थकित मेरे जीवन को जिन क्षणों में विश्राम मिलता है उन्हीं को कलात्मक कलेवर कर मैं समय-समय पर उनके पास पहुँचाती ही रही हूँ जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है। शेष जीवन को जहाँ देने की आवश्यकता है वहाँ उसे देने में मेरा मन कभी कुण्ठित नहीं होगा। मेरी कविता यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत सूक्ष्म की भावुक है अतः उसके वियोग के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा-सुना जा चुका है।'

आपके बारे में कहा जाता है कि यह जान सकना असंभव है किआप हँसती अधिक हैं या बातचीत अधिक करती हैं। जिसने केवल आपकी कविता ही पढ़ी है वह तो, एक आलोचक के शब्दों में, यही आश्चर्य करेगा कि इतनी छोटी मटकी और मनों आँसू। किन्तु प्रत्यक्ष दर्शन होने पर उसे आश्चर्य होगा कि यह हँसती प्रतिमा वही महादेवी हैं या कोई दूसरी। सामाजिक जीवन में भाग लेने की ओर आपकी प्रवृति सदा रही है। साक्षरता का प्रसार, नारी-जीवन की उन्नति और पीड़ित व्यक्तियों के प्रति हार्दिक सहानुभूति और सहायता—आपका समाज-सेवा में क्षेत्र रहा है। यह आपकी जीवन-घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है।

ग्रन्थ-परिचय

नीहार (१९३०), रश्मि (१९३२), नीरजा (१९३५), सांध्यगीत

(१९३६), दीपशिखा (१९४२) तथा यामा आपके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। आपको मंगलाप्रसाद-पारितोषिक प्राप्त हुआ है। 'नीरजा' पर सेकसरिया पुरस्कार भी आप प्राप्त कर चुकी हैं।

'शृङ्खला की कड़ियाँ', 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखायें' आपके प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ हैं।

नीहार—महादेवी जी की कवितायें तो 'चाँद' आदि में १९२६ ई० से ही प्रकाशित होती रही हैं किन्तु काव्य-ग्रन्थ के रूप में १९३० ई० में 'नीहार' के दर्शन हुए। उस समय नीहार की कविताएँ अपनी दुरूहता के कारण विशेष लोकप्रिय नहीं हो सकी थीं। लोग उसे 'गीतांजलि' का अनुकरण-मात्र मानते थे। किन्तु वास्तव में हिन्दी-साहित्य की अपनी रहस्यमयी विचारधारा और नई भाषा, शैली को लिए नीहार नयी देन थी। १९२३ से १९२९ ई० तक की कविताओं का इसमें संग्रह है। यह कवितायें भाव-प्रधान न होकर विचार-प्रधान हैं। डॉ० रामरतन भटनागर ने लिखा है "नीहार" के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस संग्रह में महादेवी वर्मा अपने जीवन-आदर्श को स्पष्ट रूप से नहीं देख सकी हैं, फिर भी उनके जीवन-दर्शन की कुछ रूप-रेखायें यहाँ भी स्पष्ट हैं:—

१—यह संसार स्वार्थमय है।

२—यह संसार दुःखमय है।

३—इस दुःखमय संसार के परे एक अलौकिक, शाश्वत, आनन्मय संसार है, जो बड़ा आकर्षक है, वास्तव में यह संसार कहीं बाहर नहीं है, मनुष्य के मन के भीतर ही है। दुःख और पीड़ा की साधना से तपकर ही मनुष्य इस 'सोने के संसार' तक पहुँच सकता है।

४—इस दुःखमय संसार में भी कभी-कभी उस शाश्वत जीवन की आभा मुस्कराने लगती है। तब जीवन में वास्तविक आनन्द का अनुभव होता है।

५—इस संसार के दुःख का कारण है क्षणभंगुरता, नाश, जरा, मृत्यु, असफलता। यहाँ सर्वनाश की झंझा बराबर चल रही है। इस झंझा से बचने का साधन एकमात्र है आत्म-विसर्जन, त्याग, संयम और निष्ठा का जीवन। प्रकृति, प्रेम, आशा—ये सब भुलावे हैं। इनकी ओर से आँख बंद कर लेना है।

यह स्पष्ट है कि संसार के सारे रहस्यवादी कवियों की तरह महादेवी वर्मा ने भी इस लोक के संघर्ष और प्रतिदिन की समस्याओं से अलग हटकर कुछ प्रारंभिक प्रश्न उठाये हैं और अपने ढंग पर इन प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा की है। इस संग्रह की कविताओं में न उनके प्रश्न ही स्पष्ट हैं, न उत्तर ही। 'रश्मि' में हमें जैसा सुसंबद्ध दर्शन मिलता है, वैसा यहाँ नहीं मिलता। जैसे-जैसे कवयित्री का अध्ययन विस्तृत होता गया, वैसे-वैसे वह अपने जीवन-दर्शन के सम्बंध में अधिक आश्वस्त होती गई।......जैसी एकनिष्ठ विचारधारा, जैसी एकनिष्ठ साधना महादेवी वर्मा की रही है वैसी आधुनिक युग के किसी भी कवि की नहीं रही। अपने कवि-जीवन के २५ वर्षों में वे बराबर एक ही विचारधारा को अपनाये रहीं और उसी के आधार पर अपनी अनुभूतियों को प्रगाढ़ और मार्मिक बताती रही हैं।"

नीहार में ४७ कवितायें संग्रहीत हैं। प्रकृति आपके लिए सजीव है। अनेक कवितायें प्रकृति के वर्णन को अपने ढंग से कहती हुई हमारे सम्मुख आती हैं।

रश्मि—१९३२ ई० में प्रकाशित दूसरा कविता-संग्रह है। अधिकांश कवितायें १९३० और ३२ के बीच की लिखी हैं—हाँ, कुछ कवितायें पुरानी हैं। इस संग्रह की कविताओं में कवयित्री की दृष्टि अपनी ओर से अधिक दूसरों की ओर है। दार्शनिकता से कवितायें ओत-प्रोत हैं। इसकी कवितायें मूलतः चिंतनप्रधान हैं। उनका रहस्यवादी दर्शन हमें 'रश्मि' में मिलेगा। भारतीय उपनिषदों का प्रभाव 'रश्मि' में स्पष्ट झलकता है। दार्शनिक-चिंतन के फलस्वरूप अनेक गूढ़ प्रश्नों के उत्तरों में

हमें प्राचीन रहस्यवादी परम्परा बहुत-कुछ मिलती-जुलती है, किन्तु उनमें नवीनता का आवरण स्पष्ट है। नये युग के अनुरूप नये प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। महादेवी जी के आकर्षक व्यक्तित्व के दर्शन हमें 'नीहार' और 'रश्मि' में मिलते हैं। आगे के ग्रंथों की भाषा और मूर्तिमत्ता अवश्य ही अधिक सामर्थवान है।

नीरजा—१९४३ ई० में प्रकाशित इस ५८ गीतों के संग्रह में कवयित्री के विचार प्रौढ़ हो गये हैं साथ ही साथ वह चिंतन से अनुभूति की ओर बढ़ आई हैं। पिछले दो ग्रन्थों में उनके चिंतन ने उनकी अनुभूति को दबा दिया है किन्तु कवयित्री का काव्यमय व्यक्तित्व इस ग्रन्थ में खुल गया है। उनका काव्य उनकी साधना वन चुका है। जीवन, मृत्यु, मनुष्य, सुख-दुख आदि पर दार्शनिक अनुभूतिपूर्ण चिंतन हमें इस ग्रंथ में देखने को मिलता है। अनेक सुन्दर प्रकृति-चित्रण भी हैं किन्तु उनमें किसी रहस्यमय मूल सत्ता की ओर संकेत है। कल्पना की बहुलता भी उनमें है। प्रकृति का इतना विराट और साथ ही साथ इतना सहज स्वरूप हमें अन्य कवियों में मिलना कठिन है। उनकी रहस्यात्मकता में अध्यात्मिक अनुभूति के साथ ही साथ बौद्धिक अनुभूति भी है। स्वयं महादेवी जी ने कहा है—'छायावाद का कवि धर्म के आध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का अनुरागी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता की भावना की हृदय की भावना-भूमि पर उसने प्रकृति में विखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की ओर दोनों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यातमवाद, रहस्यवाद इत्यादि अनेक नामों का भार सँभाल सकी।''

साध्य-गीत—१९६३ ई० में प्रकाशित यह ग्रंथ भी "नीरजा" की ही भाँति अनुभूति-प्रधान है। इसमें मूलत: आध्यात्मिक मिलन और वियोग के गीत मिलते हैं। जो दो-चार प्रकृति-सम्बन्धी कवितायें हैं,

वे भी रहस्यात्मकता से आच्छादित हैं। भावुकता और तल्लीनता इस ग्रंथ में दर्शनीय है। इसमें न 'नीरजा' के उठे प्रश्न हैं, न 'रश्मि' की जिज्ञासा है। 'सांध्य-गीत' में यह सब कुछ शान्त हो चुका है। अनुभूति और साधना का काव्यमय स्वरूप सर्वत्र स्पष्ट है। आप रहस्यवाद को बौद्धिक विलास नहीं मानतीं, न उसे कल्पना और कला पर आश्रित करती हैं। आपके अनुसार आधुनिक रहस्यवाद में अनेक तत्व हैं—

१—परा विद्या की अपार्थिवकता

२—वेदांत का अद्वैत

३—लौकिक प्रेम की तीव्रता

४—कबीर का सांकेतिक दाम्पत्य-भाव

५—सूफी-मत की प्रेम-जनित आत्मानुभूति और चिरंतन प्रियतम का विरह।

६—प्रकृति के अनेक रूपों में एक मधुर व्यक्तित्व का आरोपण। अत: प्राचीन परम्परा से भिन्न आज का रहस्यवाद है। महादेवी जी ने स्वयं लिखा है—'इसमें संदेह नहीं कि इस बाद के रूढ़िवाद ने बहुतों को भ्रम में डाल दिया है। परन्तु जिन इने-गिने व्यक्तियों ने इसे वास्तव में समझा उसे इस नीहार लोक में भी गन्तव्य मार्ग स्पष्ट दिखाई दे सका। इस काव्य-धारा की अपार्थिव-पार्थिवता और साधना की न्यूनता ने सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। अत: यदि इसका रूप कुछ विकृत होता जा रहा तो आश्चर्य की बात नहीं। हम यह नहीं समझ सके हैं कि रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नहीं।

'सांध्यगीत' में वह एकदम अनुभूति के सहारे साधना-रत हुई हैं।

दीप-शिखा—१९४२ ई० में प्रकाशित यह ५१ गीतों का कविता-संग्रह रहस्यात्मक-साधना और कल्पना के उच्चतम रूप में सामने आया है। कुछ लोगों ने इसे आपका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ कहा है। प्रकृति के कई मार्मिक चित्र रहस्याच्छादित मिलते हैं। हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ देन

आपका यह ग्रंथ है। 'निहार' से दीपशिखा तक अर्थात् १९३० से १९४२ तक कविता रूप में साधना का एक युग व्यतीत होता है।

यामा—यामा में महादेवी जी ने अपने चार काव्य-ग्रंथों (नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत) के १८५ गीत संग्रह किये हैं। संभवत: दिन के ही चार यामों को रूपक के रूप में से यह कविता-संग्रह है। किन्तु 'अपनी बात' में कवयित्री स्वयं ही इस बात का निश्चय नहीं कर पाई हैं कि ये दिन के याम हैं या रात के। उनके स्वयं निर्मित चित्रों के समावेश से यह ग्रन्थ अत्यन्त आकर्षक और महत्व का हो गया है। कवयित्री का सम्पूर्ण काव्य-व्यक्तित्व हम इस ग्रंथ में देख सकते हैं। दार्शनिकता और आलङ्कारिक-सौन्दर्य से ओत-प्रोत यह ग्रन्थ है।

महादेवी जी सुंदर गद्य-लेखिका भी हैं। चाँद की सम्पादिका के रूप में नारी-समस्याओं पर जो इन्होंने सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखी थीं, वही पुस्तकाकार रूप में 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक ग्रंथ में प्रकाशित हुई हैं।

महादेवी जी के गद्य-साहित्य को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। अपनी पुस्तकों की भूमिका के रूप में इन्होंने जो कुछ लिखा है तथा कुछ स्फुट निबंधों के रूप में जो हमारे सामने आया है। एक तो गद्य इस प्रकार है। दूसरी प्रकार का गद्य उनके लिखे 'संस्मरण' के अन्तर्गत है। और तीसरे प्रकार का 'शृंखला की कड़ियाँ' में है।

निश्चय ही उनका गद्य समाज-केन्द्रित है। अत: कविता में महादेवी जी का एक रूप मिलता है और गद्य में बिल्कुल दूसरा रूप। समाज के दुख, पीड़ा-दैन्य, स्वार्थ, ईर्ष्या तथा अभिशापों आदि से उनका हृदय हिल-हिल उठा है। उनकी सहानुभूति तथा गहरी अनुभूति गद्य के रूप में फूट पड़ी है। भारतीय नारी की-सी उपेक्षिता, प्रताड़िता, अंधकार में पड़ी, अधिकारहीना, पराश्रिता, अपमानित तथा व्यक्तित्वहीना नारी और किस देश की होगी। बद्ध-मूल संस्कारों और अभिशप्त परवशता

की जंजीरें यद्यपि टूटना प्रारंभ हो गई हैं किन्तु अभी दिल्ली बहुत दूर है। उन्होंने 'शृंखला की कड़ियाँ' में लिखा है— हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिये। उस समय, उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल संतानों की रोगिणी पीली माता में कौन-सी विवशता कौन सी रुला देनेवाली करुणा न मिले।' वेश्याओं की समस्या पर भी आपने अत्यन्त सहृदयता तथा सहानुभूति-पूर्ण दृष्टि डाली है। विधवाओं की कारुणिक स्थित पर भी आपने प्रकाश डाला है। आप प्राचीनता की विरोधी नहीं हैं किन्तु संकीर्णता और विचारहीनता की आप विरोधी हैं। नवीन समस्याओं के प्रति भी हमारा आंख बंद कर लेने से काम नहीं चलेगा ऐसा आपका विश्वास है।

'अतीत के चलचित्र' आपकी दूसरी गद्य-पुस्तक है। अवैध संतान तथा नारी से एक बार हुई भूल का समाज कितनी क्रूरता से दण्ड देता है इसके चित्र इतने कारुणिक हैं कि हृदय हिल जाता है। उन्होंने केवल करुण-दृष्टि ही आज की परवश नारी पर नहीं डाली है वरन एक गंभीर समाज़-शास्त्री के रूप में भी इस समस्या पर चिंतन किया है। जब तक आर्थिक परवशता है तब नक नारी दुखी रहेगी। आप नारी-स्वाधीनता की समर्थक हैं। किन्तु 'आधुनिका' के 'विद्रोह' को वह आत्मघात से कम नहीं समझतीं। इन समस्त नारी-समस्याओं पर इन पुस्तकों में विचार हुआ है।

"स्मृति को रेखाएँ" आपका अनुपम गद्य-ग्रन्थ है। जहाँ कविता में आप आध्यात्मिक विरह तथा मिलन को लेकर चली हैं वहाँ गद्य में आप ठोस, पार्थिव तथा यथार्थवादी धरातल पर हैं। युग की समस्याओं को जैसे कविता में स्थान मिला है, वैसे ही उन्हें गद्य में स्थान मिला है। विवेचनात्मक, संस्मरणात्मक तथा यात्रा-विषयक गद्य हमें इसमें मिलता है। गद्य में भी कल्पना और अनुभूति इतनी गहरी होती है कि हमें उसमें काव्य का-सा आनन्द आता है। उनका प्रकृति के अनुपम

दृश्यों का वर्णन अत्यन्त सजीव, सूक्ष्म, भावना-पूर्ण तथा काव्यमय है। एक उदाहरण लें—

'उस सरल कुटिल मार्ग के दोनों ओर अपने कर्त्तव्य की गुरुता से निस्तब्ध प्रहरी-जैसे खड़े हुए आकाश में भी धरातल के समान मार्ग बना देने वाले सफेदे के वृक्षों की पंक्ति से उत्पन्न दिग्भ्रान्ति जब कुछ कम हुई तब हम एक दूसरे ही लोक में पहुँच चुके थे, जो उस व्यक्ति के समान परिचित और अपरिचित दोनों ही लग रहा था, जिसे कहीं देखना तो स्मरण आ जाता है परन्तु नाम-धाम नहीं याद आता।'

बदरीनाथ-यात्रा पर लिखा आपका संस्मरण वहाँ के पहाड़ी-कुलियों के निश्छल और निर्मल स्वभाव का ऐसा सुन्दर चित्र उपस्थित करता है कि मनुष्य गंभीर होकर सोचने को विवश हो जाता है।

अतः मानव तथा प्रकृति का मनोवैज्ञानिक भावावेग से पूर्ण तथा काव्यमय वर्णन संस्मरणात्मक गद्य की विशेषता है। इसमें चमत्कारिक रूप के हमें दर्शन होते हैं। भाषा में कवयित्री की भावुकता, कल्पनात्मकता तथा संवेदनशीलता सर्वत्र दर्शनीय है। हम संक्षेप में कह सकते हैं कि महादेवी जी का गद्य उतना ही महत्वपूर्ण और अलौकिक है जितना उनका काव्य-साहित्य।

अस्तु विवेचनात्मक तथा मननशील गद्य का रूप हमें उनके लिखे फुटकर लेखों तथा लिखी भूमिकाओं में मिलता है। गवेषणात्मक गद्य के दर्शन हमें 'अतीत के चल-चित्र' तथा 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में मिलते हैं। इसमें तीखा व्यंग्य और तर्क की प्रधानता मिलती है। और तीसरे प्रकार का उनका गद्य संस्मरणात्मक है—'स्मृति की रेखाएँ' में।

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र ने सत्य कहा है—'हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की सद्भावना, कल्पना-शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्य-शैली में ऐसा घुल-मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम पहेलियों पर सूक्ष्म अन्तदृष्टि डाल

देती हैं। उनके व्यक्ति और समाज के रेखाचित्र बड़े सजीव एवं रंगीन हैं। कला की तूलिका से उनमें रंग भरे गए हैं, कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया है।'

कुछ निराशा और दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि इधर साहित्य-सृजन की ओर आप कुछ शिथिल हो गई हैं। हो सकता है कि इस विमुखता का कारण हो समयाभाव तथा आपका बहुधन्धी होना, पर साहित्य के लिए तो यह हानिप्रद है ही।

भाषा तथा व्याकरण

बाल्यावस्था में आपने कुछ कविताएँ ब्रजभाषा में लिखी थीं, जो अब प्रायः अप्राप्त हैं, किन्तु केवल कुछ दिन। अपने काव्य-जीवन के बाल-काल से ही आपने खड़ी-बोली को अपनाया। आपने शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली में कविता की है। तत्सम शब्दों की अधिकता है। आपका शब्द-भंडार विस्तृत है। भाव जटिल होने पर भी भाषा जटिल नहीं हो पाई है। उसे हम संस्कृति-गर्भित भाषा भी नहीं कह सकते। भाषा सरस, मधुर, प्रांजल, प्रौढ़ तथा परमार्जित है। उसमें सर्वत्र प्रौढ़ता तथा अविरल धारा-प्रवाह है। संस्कृति की कोमलकांत पदावली का बाहुल्य है। पंत जी की भाँति आपकी भाषा भी कोमल है, और वह स्वाभाविक ही है। नारी होने के कारण आपकी भाषा तथा भाव अत्यन्त कोमल हो पाये हैं। भाषा की स्वच्छता, मधुरता तथा प्रवाह के अवलोकनार्थ एक गीत उदाहरणार्थ लीजिये—

'राग भीनी तू सजनि, निश्वास भी तेरे रँगीले।
लोचनों में क्या मदिर नव
देख जिसको नीड़ की सुधि फूल निकली बन मधुर रव॥
झूमते चितवन गुलाबी
में चले धर खग हठीले
छोड़ किस पाताल का पुर

राग से बेसुध चपल सपने सजीले नयन में भर
रात नभ के फूल लाई
आँसुओं से कर सजीले
आज इन तन्द्रिल पलों में
उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुंतलों में।'

मुहावरों की कमी तो प्रायः सभी छायावादी कवियों में पाई जाती है। विदेशी शब्दों को कोई स्थान आपकी भाषा में नहीं मिला है। 'खुमार' 'नज़र' आदि दो-चार इने-गिने ही शब्द मिलेंगे। 'नीहार' में इने-गिने मुहावरों का प्रयोग हुआ है यथा 'धूल में लोटना' आदि।

आपकी भाषा व्याकरण-संमत है। पत जी की भाँति आपने कहीं भी व्याकरण की कड़ियाँ नहीं तोड़ी हैं।

कर्कशता का तो चिन्ह भी हमें आपकी भाषा में नहीं मिलेगा। उनकी भाषा में वह मसृणता है जो अन्य कवियों में नहीं मिलती। कवि-स्वतंत्रता का उपयोग एक सीमा के अन्दर ही किया है। मात्राओं की पूर्ति के लिये तथा तुक के आग्रह के लिये आपने कुछ शब्दों का अवश्य ही रूप-परिवर्तन तथा अंग-भंग किया है, उदाहरणार्थ 'ज्योती, अन्धकार, बतास, अभिलाषें, अधार, कर्णधार, आह्वान आदि। वैसे ही कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो कविता में ही प्रायः कवि प्रयोग करते हैं जैसे बैन (बचन), नैन (नयन), आन (आकर), हौले (धीरे-धीरे), बयार (वायु) आदि। 'ये' (बहु बचन) है और 'यह (एक वचन) पर महादेवी जी ने कहीं-कहीं 'यह' को बहुबचन के रूप में प्रयोग किया है। यदि आप चाहतीं तो इसको बचा सकती थीं क्योंकि 'यह' और 'ये' दोनों में समान मात्रायें हैं और आपने मात्रिक छंद ही लिखे हैं, वर्ण-वृत्त नहीं। उदाहरणार्थ (१ उड़ रहे यह (ये) पृष्ठ पल के। (२) यह (ये) खिलौने और यह उर ! प्रिय नई असमानता है। (३) दुखमद के चषक यह (ये) नयन।

किन्तु व्याकरण की ये अत्यन्त छोटी भूलें हैं और फिर कवि को कुछ तो स्वतन्त्रता होती ही है।

कहीं-कहीं तुक को मिलाने तथा मात्राओं को पूरी करने के लिए कवयित्री को स्वतंत्रता अपनानी पड़ी है जैसा अंधाकार (अंधकार), हारैं ('हार' का बहुवचन) अंधार तथा आसाक्त आदि। पर ऐसे शब्द केवल दो-चार ही गिनती में होंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि द्विवेदी-युग ने अनेक चोटी के कवि तथा लेखक पैदा किये—रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, प्रेमचंद, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला आदि—भले ही उनमें से कुछ द्विवेदी-युग की विशेषताओं से अलग हों। किन्तु यह तो निश्चय ही है कि इन सभी ने खड़ी बोली को वह परिष्कृत रूप दिया और उसे काव्यमय भाषा बनने में सहायता दी कि यह कार्य स्तुत्य है। प्रो० विश्वम्भर मानव ने सत्य ही लिखा है—'हिन्दी के प्रायः सभी बड़े साहित्यकारों ने, जिनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री सुमित्रानंदन पंत मुख्य हैं, खड़ी-बोली को काव्योपयोगी बनाने में बड़ा श्रम किया है। यों प्रसाद में 'वचन' की गड़बड़ी, पंत में स्त्रीलिंग-पुल्लिग का विचित्र सम्मिश्रण, निराला में मनोनुकूल समास और शब्द-निर्माण पाया जाता है। मैथिलीशरण जी व्याकरण-संयत भाषा लिखते हैं, पर तुक मिलाते समय अनुपयुक्त और भरती के शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। महादेवी जी से भी प्रारम्भ में कुछ असावधानियाँ हुई हैं, पर गिनी-चुनी।' तथा 'पर्वत के टुकड़े नदी की धारा में बहुत दूर तक बहकर धीरे-धीरे अपने खुरदरेपन को खोते हुए जब चिकने हो उठते हैं, तब उस दूरी का पता उनकी भाषा से मिलता है। भाषा जैसे माधुर्य-गुण की खराद पर उतार दी गई हो।'

यदि पंत जी द्वारा खड़ी बोली को रमणीयता मिली है तो महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने तुलनात्मक आलोचना करते हुए कहा है—"भाषा के सौन्दर्य में पंत

बेजोड़ हैं, अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी। उधर प्रसाद और निराला ने छायावाद को प्रबंधात्मक व्यक्तित्व दे दिया है, 'द्विवेदी-युग के 'पद्म-प्रबंध' की चरम उत्कर्ष। उधर पंत और महादेवी ने छायावाद के मुक्तक को एक निश्चित व्यक्तित्व दिया।' इससे यह तो स्पष्ट है ही कि खड़ी-बोली को प्रौढ़, परिमार्जित तथा काव्योपयोगी मधुर रूप देने में महादेवी का भी प्रमुख हाथ है।

'नीहार' में भावों की कमी और शब्दों का बाहुल्य है। पर "नीरजा' तक आते-आते भाव और शब्द बराबरी की स्थिति में हो गये हैं तथा 'दीपशिखा' तक आते-आते, जो 'नीरजा' तक भाषा और भाव में संतुलन हो गया है, उससे बहुत आगे कवयित्री बढ़ जाती हैं। अब भावों की ही प्रधानता हो गई है। काव्य में पूर्ण प्रौढ़ता आ गई है।

'नीहार' में दो-चार उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग दिखता है और वह भी तत्सम रूप में, यथा अरमान, खुमार, दाग़ तथा तूफान आदि—किन्तु ये दाल में नमक के बराबर हैं।

महादेवी जी कवयित्री ही नहीं वरन् एक सुन्दर गद्य-लेखिका भी हैं। उनके गद्यकार का रूप किसी प्रकार भी उनके कवि के रूप से कम नहीं है। दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। विचारों तथा शैली की दृष्टि से महादेवी जी का गद्य हिंदी-साहित्य में अपना पक विशिष्ट स्थान रखता है। हमारे साहित्य का वह एक पुष्ट अंग तो है ही, नवीन साहित्य को भी उससे मार्ग-प्रदर्शन होता है तथा प्रेरणा मिलती है।

उनका गद्य-साहित्य तीन प्रकार का है, यह तो पहले बताया ही जा चुका है—(१) विवेचनात्मक, (२) 'चाँद' में नारी-समस्या विषयक सम्पादकीय टिप्पणियाँ जो एकत्र करके 'शृङ्खला की कड़ियाँ,' नाम से छपी हैं (३) संस्मरणात्मक तथा यात्रा-सम्बन्धी। श्री अमृतराय ने लिखा है, 'महादेवी का काव्य पढ़ चुकने पर जब पाठक उनके इस गद्य-साहित्य को पढ़ता है तब जो बात अपनी सम्पूर्ण तीव्रता में सबसे

पहले उसकी चेतना को स्पर्श करती है, वह है दोनों की परस्पर विरोधी प्रवृत्ति। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि यह विरोध केवल विरोधाभास नहीं समग्र विरोध है। कवि महादेवी की दृष्टि, उनका लक्ष्य, पाठक के मन पर उनका प्रभाव, उनके साहित्यिक उपादान—सब गद्यकार महादेवी से सर्वथा भिन्न हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा जान पड़ने लगता है कि कवि महादेवी और गद्यकार महादेवी दो व्यक्ति हैं, एक नहीं। इस बात पर तनिक और गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। महादेवी का काव्य मूलत: आत्म-केन्द्रित है। उनकी आत्मा को भिन्न-भिन्न आलोचकों ने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। किसी ने उसे रहस्यवाद कहा है, किसी ने दु:खवाद और किसी ने रुदनवाद। महादेवी ने स्वयं अपनी कविता का सबसे अच्छा परिचय दिया है—

'मैं नीर भरी दुख की बदली'।"

यह पहले ही बताया जा चुका है कि नारी-समस्या तथा सुधारवाद को आदर्श बनाकर गद्य लिखा गया है—दूसरे प्रकार का गद्य। उनका गद्य-साहित्य मूलत: समाज केन्द्रित है।

विवेचनात्मक गद्य में उनकी भूमिकायें तथा कुछ स्फुट लेख आते हैं। संस्मरणात्मक गद्य में उनका यात्रा-साहित्य आदि। इस चीज को समझ लेने के पश्चात् हम उनके गद्य के स्वरूप को भली-भाँति समझ लेंगे।

उनके विवेचनात्मक तथा मननशील गद्य में और उनके संस्मरणात्मक गद्य में तो हमें काव्य का सा आनन्द आता है। भाषा सरल और सरस है। एक-एक उदाहरण लें:—

'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार यह एक स्त्री को भी पालता है, तथा अपने पालित पशुओं-पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है।'—शृङ्खला की कड़ियाँ।

'साधारण रूप से वैभव के साधन ही नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है।'—अतीत के चल-चित्र।

अब उनके संस्मरणात्मक गद्य का एक नमूना देखिए—

'चारों ओर से नीलाकाश को खींच कर पृथ्वी से मिलाता हुआ क्षितिज रुपहले पर्वतों से घिरा रहने के कारण बादलों से बने घेरे जैसा जान पड़ता था। वे पर्वत अविरल और निरन्तर होने पर भी इतनी दूर थे कि धूप में जगमगाती असंख्य चाँदी-सी रेखाओं के समूह के अतिरिक्त उनमें और कोई पर्वत का लक्षण दिखाई न देता था। जान पड़ता था जैसे किसी चित्रकार ने अपने आलस्य के क्षणों में रुहले रंग की तूलिका डुबा कर नीचे धरातल पर इधर-उधर फेर दी है। पृथ्वी अश्रुमुखी ही दिखाई पड़ती।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम प्रकार के गद्य में काव्योचित आनन्द आता है। भाषा इसमें संस्कृत-प्रधान तथा अलंकार-युक्त है। भाषा प्रौढ़, संयत, परिष्कृत तथा विशुद्ध है। शैली चमत्कारपूर्ण है। इस विवेचनात्मक गद्य तथा स्फुट लेखों में उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है। दूसरे प्रकार की भाषा अपेक्षाकृत सरल है। 'शृंखला की कड़ियाँ' ग्रन्थ की भाषा सर्वत्र प्रायः ऐसी ही मिलेगी। अनुभूति और कल्पना के सम्मिश्रण से पूर्ण इसकी भाषा होगी। तीसरे प्रकार की संस्मरणात्मक गद्य की भाषा अधिक काव्यमय, कल्पना से मांसल, अनुभूति से पूर्ण तथा मनोवैज्ञानिकता लिए हुए हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आपकी भाषा सरल, सरस, बोधगम्य और परिष्कृत है। गद्य-साहित्य में महादेवी जी का विशिष्ट स्थान है। उनका गद्य-साहित्य और उसकी भाषा, उनके काव्य और काव्य की भाषा की भाँति ही सशक्त और महत्त्वपूर्ण है। भाव के अनुसार आपकी भाषा और शैली का रूप परिवर्तित होता गया है। जैसा विषय महादेवी जी ने लिया है उसी के अनुसार उनकी भाषा, शब्द-चयन तथा कल्पना और अनुभूति के सहज स्पर्श से उनकी भाषा मार्मिक, चमत्कारपूर्ण तथा मधुर हो गई है।

सीधे-सादे विषय को भा वह चमत्कारपूर्ण भाषा, शैलो तथा ढग से कहती हैं। यही उनकी भाषा की विशेषतायें हैं।

छंद तथा महादेवी का गीत-काव्य

महादेवी जी ने गीत-काव्य लिखा है। उन्होंने मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। प्रतिभा, भावुकता तथा विद्वत्ता की त्रिवेणी के दर्शन इने-गिने ही कवियों में मिलते हैं। महादेवी जी इस दृष्टिकोण से सूर, तुलसी, मीरा, प्रसाद, पन्त, निराला तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कक्ष में रखी जा सकती हैं। हृदयगत अनुभूतियों के प्रकटीकरण के लिए गीत-काव्य का सहारा सूर, तुलसी, मीरा, विद्यापति, कबीर आदि ने लिया था, पर उन कवियों ने राग-रागिनियों के आधार पर गीत-काव्य लिखे। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी के गीत संगीतमय होने पर भी राग-रागिनियों के आधार पर नहीं लिखे गये हैं। बँगला तथा अँग्रेजी गीत-काव्य का प्रभाव इन आधुनिक कवियों पर बहुत पड़ा है। महादेवी जी के गीत हमें अपनी पूर्णता पर दिखाई देते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि निराला की भाँति आप भी संगीत की मर्मज्ञा हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि मीरा की भाँति आप भी स्त्री हैं। मात्राओं का उलट-फेर, कमी-बेशी जैसी कहीं-कहीं निराला और पन्त ने सोद्देश्य की है, महादेवी जी में बिलकुल वैसा हमें नहीं मिलता। अतः मात्रिक छन्दों में लिखे गीत, मात्राओं के दृष्टिकोण से पूरे उतरते हैं, उदाहरणार्थ उनका एक गीत देखें:—

मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का !
जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई,
घूममयी बीथी-बीथी में
लुक-छिपकर विद्युत-सी रोई
मैं कण-कण में ढाल रही अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का ?

पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत-लोक छिपाया,
अंग राग-सी हैं अंगों में
सीमाहीन उसी की छाया
अपने तन पर भाता है अलि, जाने क्यों शृंगार किसी का !
मैं कैसे उलझूँ इति अथ में,
गति मेरी संसृति है पथ में,
बनता है इतिहास मिलन का
प्यास भरे अभिसार अकथ में,
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का !

(दीपशिखा)

गीतों में टेक की विविधता है, उनसे नूतनता तथा मौलिकता की वृद्धि हुई है। उनकी स्वर-लहरी का अधिकाधिक विकास होता गया है—नीरजा से सांध्य-गीत में और सांध्य-गीत से बढ़कर दीपशिखा में।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी-काव्य में गीत-कला का सर्वोच्च विकास हमें महादेवी जी के गीतों ही में मिलता है। उसमें हृदय-पक्ष की प्रधानता है तथा विचार और चिन्तन की गौणता। गीतों में उनकी अनुभूति दर्शनीय है। डा० रामरतन भटनागर ने कहा है—'गीत रसधर्मी और भावधर्मी ही होते हैं। उनमें चित्रमय, नादमय, संगीतमय-प्रधान भाषा-शैली का प्रयोग होता है। श्रेष्ठ गीत जहाँ एक ओर सुन्दर संगीत की प्रतिध्वनि उठाते हैं, वहाँ दूसरी ओर उनमें श्रेष्ठ चित्रों की सारी रंगीनी रहती है। काव्य, संगीत और चित्रकला का समन्वय ही गीत बन जाता है। 'गीतों के अपने ढाँचे होते हैं और यह ढाँचे ही कला का रूप ग्रहण कर लेते हैं परन्तु उनमें कृत्रिमता न आनी चाहिए। उनमें बुधितत्व अधिक नहीं होता। दर्शन और साहित्य-शास्त्र के बड़े-बड़े पचड़े गीतों के विषय नहीं। मनोविज्ञान का भी केवल उतना ही समावेश हो जितना गीत-पक्ष को निर्बल न कर दे, उसे सहारा दे।

परन्तु जो दो चीजें गीत को गीत बनाती हैं वह हैं उनकी गीतात्मकता और व्यंजना। गीतों में संकेत का महात्वपूर्ण स्थान है। वे काव्य की अपेक्षा संगीत और भावचित्र की ओर ही अधिक झुकते हैं।'

महादेवी के गीतों में श्रेष्ठ गीतों की ये सारी विशेषतायें मिल जाती हैं। काव्य, संगीत और चित्रकला का जो अपूर्व समन्वय हमें महादेवी के गीतों में मिलता है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। उन्होंने अपने गीतों में लोक-छन्दों की अनेक ध्वनियों का प्रयोग कर उनमें नवीनता, मधुरता तथा संगीतात्मकता दी है। ताल-लय का अद्भुत समन्वय उनके गीतों की षिशेषता है—उदाहरणार्थ:—

अलि, वरदान मेरे नयन!
उमड़ता भव अतुल सागर,
लहर लेने सुख-सरोवर,
चाहते पर अश्रु का लघु
बिन्दु प्यासे नयन!'

'घिरती रहे रात!
न पथ रूँधती ये गहनतम शिलायें,
न गीत रोक पातीं पिघल मिल दशायें,
चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर बात!
घिरती रहे रात।'

आपके गीत-काव्य पर अब हम विस्तार से विचार करेंगे क्योंकि वर्तमान युग की आप सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं।

वर्तमान युग के कवियों ने गीत-काव्य को बहुत अपनाया, संवारा और संजोया है विशेष कर छायावादी तथा प्रगतिशील कवियों ने। हृदय की सरल भावनाओं, कोमल कल्पनाओं और सुन्दर कला-तत्वों की त्रिवेणी से पूर्ण होने के कारण गीत-काव्य पाठकों तथा श्रोताओं को बरबस अपनी ओर घसीट लेता है, सीधे हृदय पर चोट करता है। अन्तस को तन्मय बना देने की अभूतपूर्व क्षमता रखने के कारण गीत-

काव्य आज काव्य का सर्व-प्रिय अंग बन गया है। गीत-काव्य की सफलता इसी में है कि कवि और पाठक या श्रोता के हृदयगत भावों में एकरूपता हो जाय। कवि के अन्तस्तल से निकली हुई हृदयस्पर्शी धार्मिक तथा कोमल अनुभूति यदि ऐसा करने में सफल हो तो यह स्वाभाविक ही है। मर्मस्पर्शी अनुभूति से सभी के हृदय झनझना उठते हैं—यही उनकी विशेषता है, महानता है। तो फिर साधारण स्तर से ऊँचे, भाव-जगत के शिल्पी कवि में तो यह अनुभूति तथा उनके व्यक्त करने का ढंग और भी अधिक हृदयहारी, मर्मस्पर्शी तथा सहज-स्वाभाविक होगा संगीत में तो पशु-पक्षियों को भी मोह लेने की सामर्थ है। अतः काव्य जब संगीतात्मकता से ओत-प्रोत होता है तो वह कर्ण-प्रिय तो होता ही है, उत्कृष्ट तथा सर्वमान्य और महत् भी बन जाता है। विश्व की समस्त समृद्धिशाली भाषाओं में गीत-काव्य (lyric) का अलभ्य भंडार आपको दिखाई देगा। भारतवर्ष में केवल हिंदी ही नहीं, अन्य देशी भाषाओं में भी गीत-काव्य का प्राचुर्य है। यह अवश्य मानना पड़ेगा कि अँग्रेजी कविता तथा बँगला काव्य का बहुत कुछ प्रभाव हिन्दी के गीत-काव्यों पर पड़ा है, उनसे हिन्दी गीत-काव्यों ने दिशा ग्रहण किया है। ऐसा नहीं है कि प्राचीन काल में गीत-काव्य नहीं लिखे गये। विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि तो अपने गीत-काव्यों के कारण अमर ही हैं। हाँ रीति-कालीन कवियों ने गीत-काव्य की उपेक्षा की। भारतेन्दु ने भी गीत-काव्य का सृजन किया। किन्तु गीत-काव्य की ओर ध्यान भारतेन्दु-युग से कुछ-कुछ दिया जाने लगा। प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि ने भी कुछ गीत-काव्य का सृजन किया। किन्तु वर्तमान युग में ही महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रगति इस क्षेत्र में हुई है। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, श्रीधर पाठक, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' बच्चन, भगवतीशरण वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि ने भावपूर्ण गीत-काव्य लिखे। अब तो प्रायः सभी नवोदित कवि गीत-

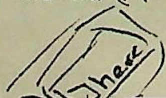
काव्य का अंचल पकड़ कर बढ़ रहे हैं। महादेवी जी का गीत-काव्य अपने चरम उत्कर्ष पर है, तथा हिन्दी-काव्य तथा उनके गीत उनकी एक अपूर्व देन हैं।

गीत-काव्य की कुछ विशेषतायें होती हैं। हमें इन्हीं के आधार पर महादेवी जी के गीत-काव्यों को कसना होगा, परखना होगा। गीत-काव्य में कवि अपनी मनोभावनाओं को संगीतात्मक रूप में हमारे सामने उपस्थित करता है। उसकी अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता का गुण तो होता ही है, सरसता तथा माधुर्य का भी समावेश होता है। गीत-काव्य की विशेषताओं पर तथा भक्त-कालीन गीत-काव्यों और वर्तमान युग के गीत-काव्य में क्या अन्तर है, इस पर अन्यत्र भी प्रकाश डाला जा चुका है। मुक्तक कवितायें ही गीत-काव्य में सम्भव हैं तथा अधिक उपयुक्त होता है। प्रबन्ध-काव्य या खंड-काव्य इनमें नहीं लिखा जा सकता। कारण स्पष्ट है—प्रबंध-काव्य में कुछ स्थल अवश्य ही ऐसे आते हैं जिन्हें हम इतिवृत्तात्मक कह सकते हैं और वर्णनात्मक-काव्यों के लिए गीत-काव्य नहीं छंद आदि ही उपयुक्त होते हैं। गीत-काव्यों में तो स्वतंत्र, मुक्तक, गेय कवितायें ही सफलतापूर्वक प्रस्तुत की जा सकती हैं। निश्चय ही गीत-काव्यों का प्रभाव अधिक व्यापक, स्थायी तथा गहरा होता है, अपेक्षा कृत छंद-बद्ध-कविता के। गीत-काव्य का सृजन भाव-वेग के कारण होता है, अतः गीत-काव्यों के लिए कोई निश्चित विधान की सीमा हो, यह संभव नहीं है। भावस्थिति में समानता, एकरूपता नहीं हो सकती क्योंकि भाव स्थिति तथा भावावेग का रूप परिवर्तित होता ही रहा है। किन्तु यह होते हुए भी गीत-काव्य का स्वरूप कुछ तो निर्धारित किया ही गया है। स्वयं गीतकारों ने तथा आलोचकों ने गीत-काव्य के स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न किया ही है यों तो कोई भी अमूर्त वस्तु (abstract) की पूर्ण परिभाषा की उपलब्धि असंभव है। गीत-काव्य में आत्माभिव्यक्ति तो होगी ही। इसके अतिरिक्त गीत-काव्य में अनुभूति की गहराई, गंभीरता और तीव्रता होती

है। भावों की एकरूपता, आत्माभिव्यक्ति या आत्म-कथन की संक्षिप्तता और मर्मस्पर्शी भाव-योजना भी अवश्यमेय गीत-काव्य में अनिवार्य है। संगीतात्मकता, नाद-सौंदर्य, स्वर-ताल का तारतम्य, संगीत का आरोह-अवरोह, कोमल-कान्त पदावली और माधुर्य गीत-काव्य में अपनी विशेषता लिए हुए मिलेंगे। महादेवी जी के गीत-काव्य में यह समस्त विशेषतायें अपने पूर्ण रूप में मिलेंगी। उन्होंने यामा की भूमिका में गीत-काव्य के सम्बन्ध में अपने विचार स्वयं स्पष्ट कर दिये हैं—

"सुखदुःख की भावावेशमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को संयम की परिधि में बँधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती हैं वह सहज प्राप्य नहीं। कारण हम प्राय: भाव की अतिशयता में कला की सीमा लाँघ जाते हैं। और उसके उपरान्त भाव के संस्कार-मात्र में मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है।"

गीत-काव्य तो यों ही सुमधुर होता है। फिर स्त्री होने के कारण महादेवी का गीत-काव्य तो अत्यधिक मधुर है। सात्विक प्रेम की मर्मस्पर्शी भावनाओं की इस आधुनिक-मीरा ने जो सरस चित्रण किए हैं वे अद्वितीय हैं। उनकी कविता रहस्यवाद के अन्तर्गत है जिसमें आध्यात्मिकता को सरस काव्योचित रूप में आना पड़ा है। आत्मा का परमात्मा की सन्निद्धि के लिए व्याकुल होना, प्रयत्नरत होना, साधना-रत होना और आत्मा का ब्रह्म से एकाकार होने का प्रयत्न, इच्छा और तड़पन, उनके गीतों को उच्च, महत् तथा पावन धरातल पर व्यवस्थित करते हैं। उनके काव्य में संवेदना, मार्मिकता और अन्तर-अनुभूति का प्राचुर्य है, और रागात्मकता के तत्वों का पूर्ण समावेश। कहीं भी हीन भावना के दर्शन हमें उनके काव्य में नहीं मिलेंगे। अनुभूति तथा भावावेश के सूक्ष्मतम तथ्यों तथा सत्यों का उन्होंने कलात्मक रूप में संगीतकला को अपना कर सरल, सहज शैली में प्रकटीकरण किया है। उनकी कविता रस से ओत-प्रोत है। उसमें प्रगीतात्मकता का विकास



देखा जा सकता है। उनके काव्य में पाठक और श्रोता को भावमग्न कर देने की क्षमता है। पाठक उनके गीत-काव्यों का अमृतपान करके इस लोक से परे दूसरे ही भाव-लोक में पहुँच जाता है। एक अलौकिक अवर्णनीय आनन्द की उपलब्धि उसे होती है। यों तो एक महान कवियित्री होने के कारण वह छन्दों में भी जो लिखतीं वह भी महत् ओर सुन्दर होता, पर गीत-काव्य उन्होंने बहुत सोच-समझ कर अपने विषय के अनुरूप जानकर अपनाया है। उनका गीति-कौशल स्तुत्य है, श्लाघनीय है। उनका गीत-काव्य हिन्दी-साहित्य की परम, चरम तथा अमर निधि है। माधुर्य-गुण तो विशेषता ही है उनके समस्त काव्य की। तो भी रसास्वादन के लिए दो-एक उदाहरण देखें:—

"राग भीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !
लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !
झूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले !

× × × ×

आज इन तन्द्रिल पलों में !
उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुन्तलों में !
सजनि नीलम—रज भरे
रँग चूनरी के अरुण पीले।"

संगीत-लहरी, मधुरता, हृदयस्पर्शिता, मार्मिक व्यंजना सभी का दर्शन हमें होता है।

प्रकृति के प्रत्येक अवयव में उन्हें अपने प्रियतम की शोभा का आभास मिलता है। अपने अस्तित्व का आभास तथा प्रियतम के प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा उन्होंने अनेक रूपकों द्वारा प्रस्तुत की है। प्रकृति उनकी सहचरी है।

वह कहती है:—प्रिय साध्य गगन, मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वपन, रँगीले घन।'

प्रतीक्षा-रत महादेवी पुकार उठती हैं:—

'घर लौट चले सुख-दुख विहंग
तम पोछ रहा मेरा अग-जग
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन।'

प्रगति-काव्य के तत्वों का समावेश उन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति में अधिक से अधिक किया है। अपनी सरस अनुभूति, आत्माभिव्यक्ति तथा सजग भावनाओं की अपने गीत-काव्य में बड़े कलात्मक ढंग से उतारा है।

उन्होंने मुक्तक-काव्य लिखा है। अतः गीत-काव्य ने सोना और सुगन्ध का काम किया है। उनकी रागात्मिका वृत्ति, उनकी आत्मा का संगीत, उनकी कलात्मकता ने उनके काव्य की वह सौन्दर्यता, सरसता, और माधुर्य प्रदान किया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। वह काव्य-कला, संगीत-कला तथा चित्र-कला की मर्मज्ञ हैं और इसी कारण उनके काव्य में संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का इतना अभूतपूर्व संयोग है। उनकी चित्र-शैली इतनी अनूठी है, वह अमूर्त को मूर्त रूप देने की इतनी क्षमता रखती हैं, जैसा हम किसी भी कवि में नहीं पाते। दो-एक उदाहरण लें:—

"अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया।
स्वप्न सा हँस पास आया।

हो गया दिन की हँसी से
शून्य में सुरचाप अंकित;
रश्मि रोमों में हुआ
निस्पंद तम भी सिहर पुलकित;
अनुकरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया ।
वेदना का अग्निकण जब
मोम से उर में गया लस,
मृत्यु - अंजलि में दिया भर
विश्व ने जीवन सुधा - रस
माँगने पतझार से
हिम - बिन्दु तब मधुमास आया ।"

मनोमय चेतना से परिप्लावित उसका गीत-काव्य उनकी हृदयगत मार्मिक अनुभूतियों के वह सूक्ष्म, स्पष्ट और सरस दर्शन कराता है कि पाठक स्वयं भावना-मग्न होकर आत्म-विस्मृति कर बैठता है। उनकी अभिव्यंजना इतनी मधुर और मार्मिक रूप से हमारे सामने आती है कि हम उन अनुभूतियों की चेतना, सजीवता और शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगते हैं :—

"शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !
अर्चना हों शलभ भोले,
क्षार दृग - जल अर्घ्य हो ले,
आज करुणा - स्नात उजला
दुःख हो मेरा पुजारी !
नूपुरों का मूक छूना,
सखी कर दे विश्व सूना,
यह अगम आकाश उतरे
कम्पनों का हो भिखारी !

प्रगति काव्य की सफलता तथा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए संगीतात्मकता अत्यन्त अपेक्षित है। इससे कवि के भाव सरस और सजीव हो जाते हैं। इतिवृत्तात्मकता भी इसमें समाप्त हो जाती है। निम्न-लिखित गीत में आप प्रायः समस्त ऊपर कहे हुए तत्व पायेंगे :—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे !
उस असीम का सुन्दर मन्दिर, मेरा लघुतर जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं, नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते, लोचन में जल कण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
स्नेह-भरा जलता है झिलमिल, मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में, नव-उत्पल का उन्मीलन रे !
धूम बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय-प्रिय जपते अधर, ताल देता अधरों का नर्तन रे !"

गीत-काव्य में शृंगार, करुण, वात्सल्य आदि की अभिव्यक्ति अधिक सुन्दर रूप से हो सकती है। शृंगार तथा करुणा के तो भण्डार ही हैं महादेवी के गीत। वियोग, अश्रु, अभाव, तड़पन, दुःख आदि इनके गीत-काव्य का केन्द्र-विन्दु रहा है :—

"शलभ मैं शाप वर हूँ ! किसी का दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा,
चिनगारियाँ शृंगार माला;
ज्वाला अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंगशाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ।"

अपने कवि-रूप के लिए तो उन्होंने स्वयं ही कह दिया :

"मैं नीर भरी दुःख की बदली !
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

× × ×

विस्तृत नभ का कोई कोना ,
मेरा न कभी अपना होना ,
परिचय इतना इतिहास यही ,
उमड़ी कल थी मिट आज चली !"

डा० सुरेशचन्द्र गुप्त ने लिखा है—'उनकी भावना-प्रधान मनसा ने संगीत की कलात्मक रुचि को और भी निखार प्रदान किया है और उसके विभिन्न अंग हमारे समक्ष पूर्ण सजीव रीति से उभर आए हैं। इस प्रकार के स्थलों पर हमें सहसा ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों हमारे समक्ष किसी दिव्य लोक की रागिनी ने साकार रूप धारण कर लिया हो और हमारे प्राणों में भी अपनी रम्य चेतना का शनैः-शनैः मधु-मिश्रण करने लगी हो। आगे हम अन्तस की इसी रागात्मिका वृत्ति से संयुक्त उनकी कुछ उत्कृष्ट काव्य-पंक्तियाँ उद्घृत करते हैं—

"तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या ?

× × ×

तेरा अधर विचुम्बित प्याला ,
तेरी ही स्मितिमिश्रित हाला ,
फिर पूछूं क्यों मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?
रोम - रोम में नन्दन पुलकित ,
साँस - साँस में जीवन शत - शत
स्वप्न - स्वप्न में विश्व अपरिचित ,
मुझमें नित बनते - मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?"

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा हो बन्धन
भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय ! मेरी अब हार - विजय क्या ?
चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम -
काया छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि - प्रियतम का अभिनय क्या।"

प्रगती-काव्य में आत्माभिव्यंजना की संक्षिप्त प्रणाली वांछनीय है यह कहा ही जा चुका है। पर आवश्यकता पर भी विस्तार की प्रवृत्ति का परित्याग ही किया जाय, यह अनिवार्य नहीं हैं। कविता में विस्तार प्रवृत्ति होने पर भी यदि प्रगति-काव्य में अन्य तत्व उपस्थित हों तो ठीक प्रकार से, तो विस्तार भी उपेक्षणीय नहीं है। हाँ, आत्माभिव्यंजना जितने ही संक्षिप्त रूप में हों उतनी ही हृदय-स्पर्शी और प्रभावोत्पादक होगी यह तो निश्चय ही है। महादेवी के गीत-काव्यों में कहीं भी आपको अनावश्यक विस्तार नहीं मिलेगा। यह एक विशेष महत्वपूर्ण विशेषता उनके काव्य की है।

प्रगति-कांव्य के लिए यह भी आवश्यक है कि जिस विषय या व्यक्ति से मूल व्यक्तियों का सम्बन्ध हो उनकी उद्‌भावना स्वतंत्र, सहज और मौलिक रूप से की जाय। महादेवी ने आत्मा से परमात्मा के रहस्यपूर्ण सम्बन्ध का रूप अपने काव्य द्वारा हमारे समक्ष रखा है। परमात्मा को उन्होंने प्रियतम के रूप में ग्रहण किया है। अपनी प्रत्येक भावना को उन्होंने स्पष्टतम रूप में हमारे सम्मुख रखा है। यही कारण है कि उनके गीत-काव्य में एक स्वाभाविकता, धारा-प्रवाह और स्वस्थता है। कृत्रिमता वोझलपन आदि नाम-निशान भी उनके गीतों

में नहीं मिलता। भावावेश के प्रकटीकरण में कहीं भी संकोच या दुराव नहीं है। वह वियोगिनी हैं, मिलन की इच्छुक, किन्तु उनका नारीत्व भी है, आत्माभिमान भी, व्यक्तित्व भी है।

वह चिर-वियोगिनी हैं। अपने प्रियतम को कैसे पावें, वह यही सोचती है:—

"अलि! कैसे उनको पाऊँ।
वे आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुल-ढुल जाते,
इन पलकों के बन्धन में,
मैं बाँध-बाँध पछिताऊँ।
मेघों में विद्युत सी छवि,
उनकी बनकर मिट जाती।
आँखों की चित्रपटों में,
जिसमें आँक न पाऊँ।"

पर अपने वियोग को अपने अभाव को, अपनी पीड़ा को अपने अश्रु को वह अपनी सर्वस्व निधि मानती हैं। उनका परित्याग वह किसी भी दशा में करने को प्रस्तुत नहीं हैं। वह अहर्निशं, अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में रत हैं। उन्हें आत्म-विश्वास है, अपने प्रेम पर विश्वास है। यही कारण है कि उनकी कविता इतनी चुटीली और सीधे हृदय में उतर जाने की क्षमता रखती है। कितना अटूट विश्वास उन्हें अपने प्रेम पर है:—

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ!

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ।
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ!"

महादेवी के गीतों के पीछे हम किसी प्रकार के आयास या प्रयास का चिन्ह तक नहीं पाते। उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त सहज स्वाभाविक रूप में हुई है। यही कारण है कि भावावेश का वह सुस्पष्ट, मधुर और हृदयग्राही रूप हमें इन गीतों में मिलता है जिसका हृदय पर प्रभाव स्थायी तथा तीव्र पड़ता है। कवयित्री ने अपनी सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि का परिचय हमें अपनी कविता में दिया है। उनका आत्म-विश्वास जिस गंभीर नींव पर टिका है वह उनकी अन्तर्भावनाओं के प्रवाह की ओर अधिक बल देता रहा है। यह विशेषता गीत-काव्य के संगीत-सौष्ठव के लिये भी आवश्यक और वान्छनीय है।

उनके अनेक गीत रूपक के आवरण पहने सामने आये हैं। ऐसे द्विअर्थक गीत भी अत्यन्त सफल और परिपूर्ण हुये हैं। ऐसे रूपकों का निर्वाह छंदों में भी अधिक सुविधा और सरलता से हो सकता है। किंतु महादेवी के कुछ गीतों में यह रूप हमें मिलता है, और अत्यन्त सहज, स्वाभाविक, आकर्षक और सफल रूप में। एक उदाहरण लें :—

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।
हो उठी हैं चंचु छू कर,
तालियाँ भी वेणु सस्वर,
वन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,
सिहरता जड़ मौन पिंजर।
आज जड़ता में इसी की बोल दो।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महादेवी के गीत अपनी संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य, स्वरों के आरोह-अवरोह, मधुर वर्ण, सजीवता, चेतनता,

स्वाभाविकता तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। उनमें रागात्मक वृत्ति, अन्तस्तल से प्रवाहित भावोद्रेक, स्वर-चेतना और कोमल कल्पना का अभूतपूर्व सम्मिश्रण है। गीत-कौशल उनके गीत का प्राण है। केवल एक उदाहरण देकर हम यह प्रसंग समाप्त करते हैं :—

"रूपसि तेरा घन - केश - पाश !
श्यामल - श्यामल, कोमल - कोमल,
लहराता सुरभित केश - पाश !
नभ गंगा की रजत धार में,
धो आई क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्य स्नात ।
भीगी अलकों के छोरों से,
चूती बूँदें कर विविध लास !"

आपके गीत-काव्य पर हम विस्तार से विचार करेंगे क्योंकि वर्तमान युग की आप सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं।

रस और अलंकार

महादेवी की अधिकतर रचनायें शृंगार के अन्तर्गत हैं। संयोग से अधिक विप्रलंभ शृंगार ही हमें अधिक मिलेगा। करुणरस से तो आपकी अनेक कवितायें ओत-प्रोत हैं। शान्त रस भी हमें मिलता है। शृंगार, करुणा तथा शान्त ही प्रमुख रस हमें मिलते हैं।

अलंकारों के पीछे आधुनिक कवि जाते ही नहीं हैं। स्वाभाविक रीति से जो अलंकार उनकी कविता में आ जाते हैं वही पाना हमें संभव है। अलंकारों का संयत प्रयोग महादेवी जी की कविता में हुआ है। महादेवी जी ने रूपक, उपमा तथा अपन्हुति द्वारा सौन्दर्य-चित्रण में अधिक सफलता पाई है। उनके साँगरूपक बहुत अच्छे होते हैं यद्यपि उनकी संख्या कम ही है। एक उदाहरण लें :—

'प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती ।
श्वासों में सपने कर गुम्फित,
बन्दनवार वेदना चर्चित,
भर दुख से जीवन का घर नित,
मूक क्षणों से मधुर भरूँगी भारती ॥
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल,
भर आँसू का स्नेह रहा ढल,
सुधि तेरी अविराम रही जल,
पद-ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती ॥
यह लो प्रिय निधियों सय जीवन,
जग की अक्षय स्मृतियों का धन,
सुख सोना करुणा हीरक कण,
तुम से जीता आज तुम्हीं को हारती ।'

शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त वस्तुओं के लिए मूर्त-योजनायें, भावों और प्राकृतिक रूपों के मानवीकरण—यही हमें आधुनिक महा-कवियों की कविताओं में मिलता है। इन्हीं का अधिक मात्रा में प्रयोग महादेवी जी ने किया है, विशेषकर 'नीहार' में ऐसी कवितायें प्रायः श्रृंगार रस के अन्तर्गत हैं जिसमें 'आश्रय' स्वयं कवियित्री तअ 'आलंबन' उनका अलक्ष्य प्रियतम (ब्रह्म) है। अतः इनका स्थायी भाव 'रति' है। उद्दीपन के रूप में ज्योत्सना, बसंतऋतु तथा मलयानिल आदि हैं। रोमांच, कंपन तया अश्रु का ही अधिक वर्णन हुआ है और वे 'सात्विकों' के अंतर्गत हैं। 'संचारी भावों' में विषाद तथा स्मृति का वर्णन अधिक है। अधिकांश कवितायें विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है। उनका श्रृंगार आध्यात्म पक्ष में है। अपनी विशेष-ताओं के कारण वह आधुनिक मीरा कहलाती हैं। इस वाक्य से ही अनेक बातें स्पष्ट हो जाती हैं। आपकी प्रेम-व्यंजना में हमें रस-मग्नता मिलेगी और रसाभास भी।

महादेवी जी की कविताओं में वह तो केवल एक प्रतीक मात्र है। आश्रय के रूप में महादेवी जी न होकर हम सब की आत्मा हैं। अतः उनके गीत उनकी व्यक्तिगत विरह-वेदना के प्रतीक न होकर 'सर्व आत्मा' के गीत हैं। प्रेम के गीत होते हुए भी वे आत्मा के आह्वान के रूप में हैं। प्रियतम (ब्रह्म) के विरह-गीतों में रस-मग्नता ही मिलेगी, उनकी कमी यदि है भी तो नहीं खटकेगी।

अलंकारों का बहुत सुरुचिपूर्ण तथा संयत प्रयोग हुआ है। रूपकों का प्रयोग महादेवी जी ने अधिक किया है। सांगरूपक के उदाहरण देखें :—

'गोधूलि अब दीप जला ले !
किरण - नाल पर घन के शतदल—
कलरव - लहर विहग - बुदबुद चल,
क्षितिज - सिन्धु को चली चपल,
आभा - सरि अपना उर उमगा ले।'
'तरल मोती से नयन भरे !
मानव से ले उठे स्नेह - घन,
कसक - विद्यु, पुलकों के हिम कण,
सुधि स्वाती की छाँह पलक की सीपी में उतरे।'

उपमा अलंकार के उदाहरण :—

'बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी;
जब सुनहले आँसुओं के हार - सी।'
वह सुनहला हास तेरा
अंक भर घनसार - सा
उड़ जायेगा अस्तित्व मेरा।'
'पीड़ा मेरी मानस में
भीगे पट - सी लिपटी है।'

मालोपमा :—

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्न लोक से आह्वान।
वे आये चुपचाप सुनने
तव मधुमय मुरली की तान।'

समासोक्ति :—

'चुभते ही तेरा अरुण बान—
इन कनक रश्मियों में अथाह
लेता हिलोर तम सिंधु जाग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल
जो क्षितिज - रेख थी कुहर - म्लान'

संसृष्टि :—

'मृदुल अंक घर, दर्पण - सा सर,
आज रही निशि दृग इंदीवर।'

विभावना तथा रूपक :—

'पारद के मोती से चंचल
मिटते जो प्रतिपल बन ढुल - ढुल
हैं पलकों में करुणा के अरण।'

प्रदीप :—

'जिन अधरों की मंद हँसी थी,
नव अरुणोदय का उपमान।'

अप्रस्तुत :—

'अवनि - अम्बर भी रुपहली सीप में
तरल मोती - सा जलधि जल काँपता।'

'अपन्हुति' तथा 'क्रम' ('उपमा' भी है) का एक साथ उदाहरण

'एक प्रिय - दृग - श्यामता - सा'

'दूसरा स्मित की विभा-सा
यह नहीं निशदिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह !'

उल्लेख:—

'चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम।'

शब्दालंकारों की बहुत कमी है। अनुप्रास, यमक कम हैं, श्लेष तो प्राय: हैं ही नहीं। यमक का उदाहरण—

'जगती जगती की मूक प्यास !'

अनुप्रास:—'उड़ गई नींद निशि क्षितिज पार'
'अधखुले दृगों के कंज कोष'
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि विहान।'

महादेवी जी के काव्य में समासोक्ति, सांगरूपकातिशयोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा तथा उपमा आदि की बहुलता है। प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र इन अलंकारों की सहायता से प्रस्तुत किये गये हैं।

दो शब्द महादेवी जी के चित्रों के विषय में भी कह देना अनुपयोगी न होगा। यामा और दीपशिखा के चित्र अत्यन्त रम्य और भव्य हैं। केश-विन्यास तथा आकृति-अङ्कन में भारतीय शैली है या विदेशी शैली या दोनों का सम्मिश्रण है इसे तो चित्रकला का मर्मज्ञ ही कह सकता है। हाँ, चित्र की मुद्रायें, पद-संचालन तथा नेत्रों की भाव-स्थितियाँ अत्यन्त कलामय हैं।

और काव्य में तो 'चित्र-काव्य' के दर्शन हमें सर्वत्र होते ही हैं।

कला तथा शैली

महादेवी जी की कविता का अध्ययन करने से दो बातें विशेष रूप से हमारे सामने आती हैं। एक तो आपके दुख का वर्णन अनन्त विश्व-व्यापी है और दूसरी विशेषता है—रहस्योन्मुख भावनाओं का सरस चित्रण। स्त्री होने के कारण कोमलता, मधुरता के साथ वेदना तथा कसक आपकी कविता की प्रधानता है। जैसी रहस्योन्मुख अनुभूति हमें आपकी कविता में मिलती है वैसी अन्य कवियों की कविताओं में नहीं। वेदना, निराशा, पीड़ा तथा कसक से पूर्ण कराहता हुआ हृदय होने के कारण भाव-व्यंजना तथा अनुभूतियों में जो एक रस समन्वय तथा एक समता है वह अत्यधिक प्रभावोत्पादक तथा हृदयस्पर्शी है। आपका कला-पक्ष उतना ही सुन्दर है जितना भाव-पक्ष। उनकी सुन्दरता उनकी स्वाभाविकता में है। दुःख ही आपका सर्वस्व है।

"मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है, इन दीवानी चोटों में।"

आप तो चाहती हैं:—

"इस अचल क्षितिज रेखा के, तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हें पकड़ पाने के सारे प्रयत्न हों फीके।'

ऊपर की कविताओं से आपका आध्यात्मिक सिद्धांत प्रकट हो जाता है।

अपनी कविता की व्याख्या तथा विशेषता तो आपने स्वयं 'मैं नीर भरी दुख की बदली' में कह दी है। अपने बारे में आपने कहा है:—

'मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा कभी न अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली ?'

एक सतत अभाव का जैसे अनुभव कवयित्री करती है। कल्पना

का इतना स्वाभाविक तथा मार्मिक सामंजस्य अनुभूतियों के साथ है कि कवितायें हृदय को छू लेने की पूर्ण क्षमता रखती हैं।

'अपने इस सूनेपन में मैं हूँ रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जला कर करती रहती दीवाली ।।'

कवयित्री को अपने दुख में ही एक विचित्र सुख का आभास मिलता है। उन्हें अपने दुख से संतोष है। अपने अभाव को वे समझने का प्रयत्न सा करती हैं।

'मुझे न जाना अलि उसने जाना इन आँखों का पानी;
मैंने देखा उसे नहीं, पगध्वनि है उसकी पहचानी।
मेरे जीवन में उसकी स्मृति भी तो विस्मृत बन आती;
उसके निर्जन मंदिर में काया भी छाया हो जाती।
क्यों यह निर्मम खेल सजनी, उसने मुझसे खेला-सा है।'

निराशा, अभाव और वियोग-जन्य-दुख ही उनके अपने हैं। पीड़ा आपकी चिर सहचरी है। उसको कभी आप भूल नहीं सकतीं, भूलना भी नहीं चाहतीं। तभी वे कहती हैं:--

'पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा,'

'फैला अपने मृदु स्वप्न पंख उड़ गई नींद निशि क्षितिज-पार;
अधखुले दृगों के कंज कोष पर छाया विस्मृति का खुमार।
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास यह चतुर चितेरा सुधि विहान,'

वेदना का कितना दार्शनिक रूप है:--

'आलोक यहाँ लुटता है, बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है पर मेरा-दीपक सा मन।'

मन अपने सिद्धांतों पर अटल है। चलता हुआ भी वह सदा प्रकाशित रहता है। यह उसकी सत्य विजय है; अपने करुणा-पूर्ण जीवन पर उसे हर्ष तथा अभिमान है--

'बिछाती हूँ पथ में करुणेश छलकती आँखे हँसते ओंठ ।'

वह ऐसी स्थिरता चाहती हैं । उनकी तपश्चर्या व्यर्थ नहीं जायगी । उसका फल वह अवश्य पायेंगी और यहीं––

'क्या अमरों का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव ! अरे, यह मेरे मिटने का अधिकार,'

प्रेम, त्याग और तपश्चर्या का दूसरा नाम है । वियोग तथा अभाव प्रेम को दृढ़ता प्रदान करता है । तभी तो कवयित्री चाहती है:––

'इस अचल क्षितिज रेखा से तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हें पकड़ लाने के सारे प्रयत्न हों फीके ।'

आप जीवन में अतृप्ति का स्वागत करती हैं, क्योंकि आपका विश्वास है 'दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना' । तभी तो आप कहती हैं:––

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सागर ।'

आपने अपने असीम दुःख को एक मधुर गान का रूप दिया है । उसकी व्यापक व्यथायें अनन्त सौन्दर्यशालिनी रूप में संसार के सामने आई हैं । है भी सच––'Our sweetest songs are those which tell of saddest thought.'

आप अपने ही लिये कहती हैं:—

'शलभ ! में शापमय वर हूँ ।
किसी का दीप निष्ठुर हूँ ॥

ताज है जलती शिखा चिनगारियाँ शृंगार-माला,
ज्वाल अक्षय कोष है, अंगार मेरी रंगशाला ,
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ ।

कौन आया था न जाना स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन उँगलियों की हैं मुझे पर युग बिताने;
रात की उर में दिवस की चाह का शर हूँ।
शीश पर छाया हुआ है अमर झंझा का वरद कर,
तुहिन पद-तल कुहरमय पथ प्रलय रखता अंक में भर,
दूत बासंती न कह मैं अजर पतझर हूँ।

शून्य मेरा जन्म था, अवसान है मेरा बसेरा,
प्राण आकुल के लिये संगी मिला केवल अँधेरा,
मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।'

वस्तु-जगत के ही चित्र आपने खींचे हैं अवश्य, किन्तु वह तो साधन-मात्र है। उनका रूप-रंग रहस्य से आच्छादित है। आपकी कविता दार्शनिकता से ओत-प्रोत है। किन्तु आपकी दार्शनिकता अत्यन्त रहस्य-मय तथा भावमय है—उसमें शुष्कता तथा कठोरता नहीं। भौतिक जगत की भावनाओं से और ऊपर भी जैसे आप की भावनायें हों।

आपका प्रियतम निराकार अदृश्य परमात्मा है जिसकी प्राप्ति के लिये आपकी आत्मा सदा तड़पती रहती है। आप अपने प्रियतम को पहचानती हैं :—

'जो न प्रिय पहचान पाती।
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत-सी तरल बन ?
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में
सजग दीपक-राग गाती ?

चाँदनी के बादलों से स्वप्न फिर फिर घेरते क्यों ?
मदिर सौरभ से सने क्षण दिवस-रात बिखेरते क्यों ?
सजग स्मित क्यों चितवनों के
सुप्त प्रहरी को जगाती ?

कल्प-युग व्यापी विरह को एक सिहरन में सँभाले,
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप वाले,
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पन्दन में मनाती ?
मेघ पथ में चिन्ह विद्युत के गये जो छोड़ प्रियपद,
जो न उनकी चाप का मैं जानती संदेश उन्मद,
किस लिये पावस नयन में
प्राण में चातक बसाती ?'

मीरा की साकार भगवान की उपासना तथा आपके अस्पृश्य अव्यक्त परमातमा की उपासना में वही एक-सी तल्लीनता है। आप कहती हैं:—

'वे आँसू बन कर मेरे इस कारण ढल-ढुल जाते,
इन पलकों के बंधन में मैं जिससे बाँध न पाऊँ।
मेघों की विद्युत-सी छवि उनकी बन कर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में जिसमें मैं आँक न पाऊँ।
वे तारक बालाओं की अपलक चितवन बन आते,
जिसमें उनकी छाया भी मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ।
सोते सागर की धड़कन वन लहरों की थपकी से,
अपनी यह करुण कहानी जिसमें उनको न सुनाऊँ।
वे आभा बन खो जाते शशि-किरणों की उलझन में,
जिसमें उनको कन-कन में देखूँ पहचान न पाऊँ।
वे चुपके से मानस में आ छिपते उच्छ्वासें बन,
जिसमें उनको साँसों में ढूँढूँ पर रोक न पाऊँ।
वे स्मृति बन कर प्राणों में खटका करते हैं निशिदिन,
उनकी इस निष्ठुरता को जिसमें मैं भूल न जाऊँ।

तभी तो आप संसार की दृष्टि से ओट होकर भक्ति-भाव चाहती हैं। उनके प्रियतम का स्वभाव ही ऐसा है:—

'प्रियतम को तो भाता है नभ के पर्दे में आना,
ओ नभ की तारावलियों तुम क्षण भर को छिप जाना।'

न जाने कितने युग बीत गये, न जाने कितनी आत्मायें मोक्षपद प्राप्त कर चुकीं, किन्तु मेरी आत्मा अभी रिक्त ही है। उस असीम संगीत को सीखने की इच्छा बलवती है। देखें इच्छा-पूर्ति कब होती है :—

'गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण;
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा-सा मनमोहन गान।'

उनकी खोज जारी है—अधीरता और विह्वलता साथ में लेकर कहीं उनसे साक्षात्कार हो जाय, बस यही अन्तिम साध है। देखिये :—

'कितनी करुणा, कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग भरा उन्माद राग।

आँसू लेते वे पद पखार।
हँस उठते पल में आर्द्र नैन-
धुल जाता ओठों से विषाद;
छा जाता जीवन में बसन्त,
लुट जाता चिर-संचित विषाद।
आँखें देतीं सर्वस्व वार।'

यह सत्य है कि चिर-विरह, निराशा और वेदना ही आपके काव्य का प्राण है किन्तु चिर-मिलन भी कहीं-कहीं जैसे पुलक उठा है—

'तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या ?
रोम-रोम में नन्दन पुलकित
साँस-साँस में जीवन शत-शत;
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित;
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय।
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?'

तथा

'मैं तुममें हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश;
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित विलास ।'

यह स्थिति है कवयित्री तथा उसके प्रियतम की ।

संक्षेप में, प्रेम के अन्तर्गत जितनी मनोदशाएँ हो सकती हैं प्रायः सभी का वर्णन आपके काव्य में आ गया है—लौकिक शृंगार, आध्यात्मिक इच्छा, कारण, क्रिया, फल, श्रवण-सुख, नयन-सुख तथा स्पर्श-सुख सभी का वर्णन हुआ है ।

आप प्रेम के मार्ग में पथ-भ्रष्ट होने की तो कल्पना ही नहीं कर सकतीं—

'पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला ।
और होंगे चरण हारे,
अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे,
दुख व्रती निर्माण उन्मद,
अह अमरता नापते पद ।' आदि ।

अन्तर्जगत के अदृश्य तथा अस्पृश्य भावोद्रेक का कितना सरल चित्रण है !

वह अपने प्रियतम को ठीक से समझने का प्रयत्न करती हैं—

'शून्य काल के पुलिनों पर आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में वह रहस्यमय कौन ?'

जीवन की नश्वरता का उन्हें ज्ञान है। वह कहती हैं—

'विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहां किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन।'

उनकी निराशा और वेदना का उद्गम यही है।

पर वह बौद्ध-दर्शन से प्रभावित होने पर भी जब कहती हैं—

"घन बनूँ वर हो मुझे प्रिय !
जलधि-मानस से नव जन्म पर
सुभग तेरे ही दृग व्योम में।
सजल, श्यामल, मंथर, मूक-सा
तरल अश्रु-विनिर्मित गात ले
नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय"

तो उनकी 'आकांक्षा' की महत्ता प्रकट हो जाती है। वह 'निर्वाण' नहीं चाहतीं। जन्म-मरण की स्थिति को जानते हुए भी वह पुनर्जन्म से घबराती नहीं हैं। पुनर्जन्म पर उनका विश्वास है।

इस रहस्य के प्रति उनकी उत्कंठापूर्ण जिज्ञासा देखिये—

'अवनि अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता;
तैरते घन मृदुल हिय के पुंज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में—

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?'

संक्षेप में, आपकी कविताओं में एक मूक वेदना, एक कसक है। ऊँचे दार्शनिक भावों तथा सूक्ष्मतर कोमल कल्पनाओं तथा भावनाओं को व्यक्त करने में लाक्षणिक अभिव्यंजना होने के कारण कहीं-कहीं आपकी कविता में सर्वसाधारण पाठकों की दृष्टि में दुरूहता आ गई, जो स्वाभाविक ही है। मीरा की संगीतमयी भाषा तथा कबीर की आध्यात्मिकता को यदि एक साथ देखना हो तो महादेवी जी की कविता देखी जाय। मार्मिकता ऐसी है, जैसे लगता है कि आपने अपने हृदय को चीरकर कागज पर रख दिया है। आपको आधुनिक मीरा कहते हैं।

मीरा का रूप आराधिका है और महादेवी का साधिका का—महादेवी अपने प्रेम को दार्शनिक-शब्दावली में व्यक्त करती हैं। मीरा खुले हृदय से अपने गिरधर गोपाल को प्रेम करती हैं—कोई भी दुराव उसकी रति-भावना में नहीं है। श्री रघुवीर प्रसाद सिंह ने लिखा है—मीरा और महादेव हिन्दी-साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान कवयित्रियाँ हैं। जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं लेकिन दो भिन्न युगों की विभिन्न परिस्थतियों में रहने का कारण दोनों के कवि-व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान के भावमय भजन का पूरा प्रभाव पड़ा है।' महादेवी ने अपने बाल्यकाल की परिस्थितियों तथा घर के वातावरण का स्वयं ही वर्णन कर दिया है।

आपने अपने काव्य के सम्बन्ध में स्वयं 'रश्मि' में लिखा है—'मेरे लिए तो मनुष्य सजीव कविता का शब्द-चित्र-मात्र है, जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उनकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इससे भी अधिक

सुन्दर, अधिक सुकुमार संसार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका वाह्याकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम द्वारा उड़ता रहना ही चाहता है।'

आपने अपनी कविताओं द्वारा साहित्य के कोष की जो समृद्धि की है, वह अनुपम है। आपकी कविताएँ सत्य, शिव और सुन्दर का सम्मिश्रण हैं। आप वर्तमान समय की प्रथम श्रेणी के कवियों में से हैं। कवयित्रियों में तो आप वर्तमान युग-सर्वश्रेष्ठ हैं। आपकी तुलना केवल प्रसाद, पंत जी से करते हुए श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने कहा है—'पंत की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कौशार्य्य लिया है, महादेवी की कविता ने वेदना का दग्ध यौवन। पंत के सौन्दर्य में अनजान मधुरता है, महादेवी की वेदना में सजग दार्शनिकता। शरीर की परिधि में बँधकर भी ये निःशरीर अनुभूतियों के कवि हैं—अलौकिक आनन्द और आलौकिक वेदना के। महादेवी जिस समष्टि तक दुःख के माध्यम से पहुँचना चाहती हैं, पंत उस समष्टि तक सुख के माध्यम से। इसीलिए महादेवी में एक उत्फुल्ल विषाद है, पंत में एक प्रसंग आह्लाद।'

आपसे हिन्दी साहित्य को भी बहुत आशाएँ हैं। शचीरानी गुर्टू एम०ए०, ने आपकीतुलना क्रिस्टिना रोज्जेरी से करते हुए कहा है—'क्रिस्टिना की कविता में कुमारित्व की अमल धवल पावनता, भोली सरलता और यत्किंचित अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्र-तत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्व का क्रंदन, असफल पत्नीत्व की खोज और द्विविधा-ग्रस्त अभावजन्य उपराग है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट को आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है, जिसमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल प्राणों की कसक और आन्तरिक आवेगों का संघात है—महादेवी के भावोद्वेगों

में मीठी कचोट होते हुये भी वचन-विदग्धता, अमूर्त व्यञ्जना औ विखरती-मचलती भावप्रवणता है, जो हृदय की गहराइयों में उतरते चलती है और जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की सी अवि राम धड़कन सुन पड़ती है।'

महादेवी गद्यकार भी हैं। गद्यकार महादेवी के विषय में बहुत कुछ पहले कहा जा चुका है।

महादेवी जी की रहस्यवादी कविता तथा अध्यात्म

रहस्यवाद की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है और न रहस्यवा के संबंध में एक निश्चित मत। विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषा प्रस्तुत की हैं और यह स्वाभाविक भी है। किन्तु एक बात तो अवश्य हम समान रूप से सब में पाते हैं। परोक्ष सत्ता के प्रति इन सभी रहस्यवादी कवियों ने, भले ही वे विद्यापति, कबीर, जायसी, मीरा, प्रसाद, पंत य महादेवी हों, स्त्री तथा पुरुष के प्रेम-भाव के सहारे अपनी अनुभूतियों को काव्य का रूप दिया है। रति-भाव के माध्यम से उन्होंने संयोग तथा वियोग-जन्य हर्ष-विषाद की अवस्थाओं तथा स्थितियों का वर्णन करते हुये, अलक्ष्य सत्ता की अलौकिकता का वर्णन किया है। अपने अन्तस्तल की संवेदनाओं के हाथ में अपने को उन्होंने छोड़ दिया है। परोक्ष सत्ता का अनुभव करना ही उनका लक्ष्य होता है। सीमा के पार, अनन्त असीम की ओर मुक्त होकर वह मुड़ता है। वह देशकाल तथा शरीर और पार्थिव कार्यों से ऊपर उठकर अपने व्यक्तित्व को सार्वभौम विराट सत्ता से निमज्जित करता हुआ एक अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करता है—जैसे गूँगे को गुड़। अतः यह 'रहस्य' बहुत कुछ अस्पष्ट और दुरूह तो होगा ही। ईश्वर-जीव-संबंधी रहस्य से आच्छादित चिंतन ही सदा से रहस्यवादी कविता का अंग और विषय रहा है।

हमारे निर्गुण-पंथियों तथा सूफियों आदि की रहस्यवादी कविताओं में ब्रह्म और जीव की एकता, योग, मोक्ष, 'परममुख' शून्य (सुन्न)

अनहद आदि का वर्णन मिलेगा। संत-साहित्य में हमें जिस रहस्य के दर्शन होते हैं, आधुनिक रहस्यवाद से उसमें कुछ विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। वह क्या है, यह पहले लिखा जा चुका है।

आपकी तुलना जायसी, कबीर, मीरा, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रसाद, पंत तथा निराला से की जासकती है। यह सब रहस्यवादी कवि हैं।

यों तो प्रसाद, पंत, निराला सभी के काव्य में हमें रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। और यह निर्विवाद सत्य है हिन्दी के सभी आधुनिक कवि रवीन्द्रनाथ बाबू तथा अँग्रेजी रहस्यवादी कवियों से विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं और यह प्रभाव उनके काव्य में स्पस्ट रूप से देखा जा सकता है। किन्तु आधुनिक कवियों में रहस्यवाद की सबसे अधिक और सबसे पूर्ण व्यंजना तो महादेवी के ही काव्य में हुई है। पं० रामचन्द्र शुक्ल का कहना है—'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं.......अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनायें छूट-छूट कर झलक मारती रहती हैं। एक अलक्ष्य, अनन्त, सार्वभौम सत्ता की सर्वत्र उपस्थिति का अनुभव तथा उस अलक्ष्य सत्ता के प्रति-विरह-मिलन के भाव का सर्वत्र वर्णन हमें महादेवी की कविता में मिलेगा। जितना स्पष्ट और जितना अधिक इस विरह-मिलन का अपूर्व वर्णन महादेवी ने हमारे सामने रखा है अन्य किसी भी हिन्दी के कवि ने नहीं। अपनी अनुभूति की गहराई के सामने तथा कल्पना का पुट देते हुए उन्होंने अत्यन्त मार्मिकता से इस 'रहस्यवादी कविता' की सृष्टि की है। अपने 'रहस्य-गीत' के सम्बन्ध में स्वयं महादेवी जी ने कहा है—रहस्यगीतों का मूलाधार भी आत्मानुभूति अखण्ड चेतन है पर वह साधक की मिलन-विरह की अनुभूतियों में इस प्रकार घुल-मिल सका कि उसकी अलौकिक स्थिति भी सामान्य हो गई। भावों के अनन्त वैभव के साथ ज्ञान की अखण्ड व्यापकता की स्थिति वैसी है जैसी, कहीं रंगीन, कहीं सितासित, कहीं सघन, कहीं हल्के, कहीं चाँदनी-धौत और कहीं अश्रुस्नात

बादलों में छाये आकाश की होती है। व्यक्ति अपनी दृष्टि को उस अनन्त रूपकात्मकता के किसी भी खंड पर ठहरा कर आकाश पर भी ठहरा लेता है। अतः आनन्द और विषाद की सहानुभूति के साथ-साथ उसे एक अव्यक्त और व्यापक चेतन का भी स्पर्श मिलता रहता है। पर ऐसे गीतों में निर्गुण ब्रह्म और सगुण अनुभूति का जैसा संतुलन अपेक्षित है, वैसा अन्य गीतों में आवश्यक नहीं, क्योंकि आधार यदि बहुत प्रत्यक्ष हो उठे तो बुद्धि उसे अपनी परिधि से बाहर न जाने देगी, और भाव यदि अव्यक्त सूक्ष्म हो जावे तो हृदय इसे अपनी सीमा में रख सकेगा। रहस्य गीतों में आनन्द की अभिव्यक्ति के सहारे इस चित् और सत् तक पहुँचे हैं।'

महादेवी जी का रहस्यवाद निर्गुण-अनुभूति पर आश्रित होने के कारण सर्वसाधारण के लिए अवश्य ही कुछ अस्पष्ट-सा है। आपको दुःखवाद का कवि कहा जाता है। उनकी पंक्तियों में रोदन ही रोदन है। दुःख की अत्यन्त कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति जैसी उनकी कविता में हुई है अन्य किसी की भी कविता में नहीं। इसका कारण आध्यात्मिक असंतोष है। उनका दुःखवाद आध्यात्मिक है। उन्होंने स्वयं लिखा है—'उनकी काव्य-साधना आध्यात्मिक है। उनमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है। कवि की आत्मा मानों इस विषय में बिछुरी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उनकी दृष्टि से, विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनन्त, अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है।' इसी 'दर्शन' के आधार पर उनकी कविता का जन्म हुआ है। रहस्यवादी प्रेम के अन्तर्गत ब्रह्म पर आस्था प्रथम सीढ़ी है। फिर उस प्रेम का संबंध किस प्रकार का है। आपका प्रेम दाम्पत्ति-भाव का है। फिर रूप-वर्णन, विरह-वर्णन, पत्र-लेखन अभिसार तथा मिलन (केवल स्वप्न-मिलन का उदाहरण मिलता है।) आदि सबके उदाहरण आपकी कविता में मिलते हैं।

अपने दुःखवाद के संबंध में उन्होंने 'रश्मि' में कहा है—'संसार

साधारणतया जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।' उनका दुःख आध्यात्मिक दुःख है।

महादेवी जी का रहस्यवाद साधनात्मक न होकर भावात्मक है। रहस्यवाद भी या मधुर (इसके अन्तर्गत आत्मा और परमात्मा के पारस्परिक संबंध का वर्णन करते समय कविगण माधुर्य भाव को विशेष स्थान प्रदान करते हैं) रहस्यवाद होता है या प्राकृत रहस्यवाद (इसमें प्रकृति के व्यक्त रूप का भौतिक रूप से कवि अध्ययन करता है और प्रकृति में एक सार्वभौम चेतना का आरोप करता है तथा उसे प्रकृति की समस्त क्रियायें ईश्वरीय शक्ति द्वारा परिचालित दिखाई देती हैं) होता है। दोनों प्रकार का भावात्मक रहस्यवाद कवियित्री की कवताओं में मिलता है।

ब्रह्म की सत्ता में कवयित्री को आस्था है। उस अलक्ष्य अनन्त शक्ति का आभास महादेवी को व्यापक प्रकृति में भी प्रायः मिल जाता है—

'कैसे कहते हो सपना है
अलि, उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास !'

महादेवी ने ब्रह्म को प्रियतम के रूप में स्वीकार किया है। कोई ईश्वर को पिता या पुत्र के रूप में, कोई दास-भाव से, कोई सखा-भाव से और कोई रति-भाव से लेकर ब्रह्म से संबंध स्थापित करता है। महादेवी जी कहती हैं—

'प्रिय चिरंतन हैं सजनि
क्षण - क्षण नवीन सुहागिनी मैं।'

कबीर भी 'राम मोरा पीव, मैं राम की बहुरिया' तथा 'अब मों गवने का दिन नगचान' आदि कहते हैं।

अपने उस प्रियतम का ध्यान, उसके रूप-सौन्दर्य का ध्यान तथ चिंतन रहस्यवादी कवि करता है। प्रकृति में भी उसी के रूप-सौन्दर्य का आभास महादेवी को मिलता है—

तेरी आभा का कण नभ को
देता अगणित दीपक दान
दिन को कनक राशि पहनाता
बिधु को चाँदी का परिधान।'

उनके विरह-वर्णन में विह्वलता है। वह कहती हैं—

'तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में।'

तथा—'जो तुम आजाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार - तार
अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार !'

प्रेम के अन्तर्गत जितनी दशायें हैं प्राय: सभी का वर्णन महादेवी के काव्य में मिलता है। प्रेयसी को अभिसार की उत्कण्ठा है—

'शृंगार कर ले सजनि !
तू स्वप्न - सुमनों से सजा तन
विरह का उपहार ले,
अगणित युगों की प्यास का
अब नयन अंजन सार ले !

अज्ञात पथ है दूर प्रिय,
चल, भीगती मधु की रजनी !'

उन्होंने 'मिलन' का भी वर्णन किया है, स्वप्न-मिलन का भी तथा अपने अन्तर में उसकी अनुभूति का भी। यथा—

'मिलन बेला में अलस तू
सो गई कुछ जागकर जब
फिर गया वह स्वप्न में
मुस्कान अपनी आँक कर तब।'

कवयित्री अपने अन्तर में अनुभव करती हुई पूछती है—

कौन तुम मेरे हृदय में ?'

कवयित्री का स्पष्ट मिलन अपने प्रियतम से अभी तक नहीं हुआ है, इस बात को बार-बार उन्होंने अपनी कविता में कहा है—'मैंने देखा उसे नहीं पद-ध्वनि है केवल पहिचानी।' पर अवश्य ही उन्हें आशा है कि उसका उसके प्रियतम से साक्षात्कार होगा। वह इस मार्ग की ओर अग्रसर हो चुकी है:—

'झर चुके तारक-कुसुम जब
रश्मियों के रजत पल्लव,
सन्धि में आलोक तम की क्या नहीं नभ जानता तब ?
पार से अज्ञात वासंती दिवस-रथ चल चुका है।'

इस प्रेम में नारी-प्रकृति की एक सरस विशेषता 'हठ' भी मौजूद है। नारी होने के कारण ही जो स्वाभाविकता उनकी प्रणयानुभूति तथा प्रेम-व्यंजना में हो पाई है वह अन्य कवियों में नहीं हो पाई है। अपने प्रियतम के पीछे दीवानी होती हुई भी उसमें आत्माभिमान है, हठ है—

'उन्हीं तारक फूलों में देव !
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण।'

उसका आध्यात्मिक स्वाभिमान देखिये—

'मिलन मंदिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल गुंठन,
मैं मिटूँ प्रिय मैं मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल कण,
सजनि मधुर निज तत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।'

वैसे ही नारी-सुलभ शृंगार-भावना भी उनमें है। वह कहती हैं—

'रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से,
अलि दे मेरी कवरी सँवार।'

वैसे ही मिलन-क्षण के निकट पहुँचने पर उनकी विह्वलता, उत्सुकता और शंका भी दर्शनीय है:—

'नित सुनहली साँझ के पद से लिपट जाता अँधेरा;
पुलक-पानी बिरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा;
कौन जाने बसा उस पार
तम या रागमय दिन !'

नारी की अन्य और विशेषतायें—'सहिष्णुता' और कष्ट-झेलने की प्रवृत्ति—भी उनमें हैं—

'जिसको पथ-शूलों का भय हो
वह खोजे नित निर्जन, गह्वर;
प्रिय के संदेशों के वाहक
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुज भर;
मेरी लघु पलकों में छलकी
इस कण-कण में ममता बिखरी !'

इस प्रकार हम देखते हैं कि नारी होने के कारण प्रणयानुभूति में जो स्वाभाविकता महादेवी जी की कविताओं में आ पायी है वह अन्य की कविताओं में नहीं।

महादेवी जी भारतीय उपनिषदों तथा दर्शन से बहुत प्रभावित हुई हैं। इस संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है—

'मेरा सर्वप्रिय ग्रंथ तो ऋगवेद है। उसकी प्रार्थनाएँ मुझे बहुत प्रिय हैं। मारुत के गीत अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, फिर उषा के गीत तो अच्छे लगते हैं ही। मैंने उन गीतों में से कुछ के अनुवाद भी किए हैं। उसके बाद मुझे उपनिषद प्रिय है। 'गीता' मैं अधिक पसंद नहीं करती। कारण, कृष्ण जिस क्रान्ति के सूत्रधार थे उसी में स्वयं यह क्रान्ति गल गई। उन्होंने हिंसा का आदेश दिया और मेरे लिए तो बुद्ध की अहिंसा प्राण है। अतएव उसे मैं कहाँ से पसंद करूँ? हाँ, कृष्ण का महत्व इतना ही है कि महापुरुष होकर भी—राजवंशी होकर भी—उन्होंने बंदीगृह में जन्म लिया, अहीर के घर में पले। मुझे यहाँ वह सामान्य भूमि पर उतरते प्रतीत होते हैं।'

बौद्ध-धर्म से भी वह प्रभावित हुई हैं। उन्होंने कहा है—'इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उसकी संसार को दुःखात्मक समझनेवाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।'

किन्तु बौद्धों के संघात या नैराश्यवाद में उनका विश्वास नहीं है।

रहस्याच्छादित होने से उनकी कविता में दुरूहता आना स्वाभाविक है। उन्होंने एक नवीनता की ओर अपनी कविता को बढ़ाया है। इससे अनेक आलोचकों ने अनेक आक्षेप उठाये हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने इस सम्बन्ध में लिखा है—'वे मानती हैं कि उनकी कविता जिस नवीनता की ओर गयी, उसने अस्पष्टता, सूक्ष्म की अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव, यथार्थ से पलायनवृति आदि बताकर अतीत और वर्त्तमान से सम्बन्धहीन एक आकस्मिक, आकाशचारी अस्तित्व देने का प्रयत्न किया गया है। पर वे इन आक्षेपों का कुछ उत्तर देने के बजाय इतना कहकर संतोष कर लेती हैं कि 'इन आक्षेपों की अभी

जीवन में परीक्षा नहीं हो सकती है, अतः ये हमारे मानसिक-जगत में विशेष मूल्य रखते हैं।'

महादेवी के काव्य में वेदना का भव्य रूप

वेदना का अस्तित्व मानव के अस्तित्व के साथ सदा जुड़ा रहता है। सुख और हास्य से अधिक वेदना और अश्रु ही इस संसार में व्यापक है। व्यक्तिगत या पारिवारिक वेदना से किसी का छुटकारा नहीं। पर जब मनुष्य का अधिक आत्मिक विकास हो जाता है, मानवता की उसमें वृद्धि होती है, विश्व-बन्धुत्व की भावना का उसमें प्रसार होता है तो व्यक्तिगत वेदना या पारिवारिक वेदना से अधिक महत्व उसके लिये सामाजिक तथा लोकव्यापी वेदना का होता है। मानव-मात्र की वेदना जब चिंतन का पुट लेकर हमारे समक्ष आती है तो उसमें आध्यात्मिकता निहित होती है। कवि उस मानवीय वेदना को राग और रूप देकर जब हमारे सामने कविता के रूप में रखता है तो वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक होती है।

महादेवी ने स्वयं कहा है कि उन्हें सांसारिक अभाव या वेदना अधिक नहीं मिली। संभवतः यह उसी की प्रतिक्रिया है कि उनकी कविता में आध्यात्मिक वेदना का इतना भव्य रूप हमें मिलता है।

छायावादी कवियों की कविता में वेदना-भाव एक अनिवार्य तत्व है। वेदना-भाव की स्थिति तो सदा से ही हिंदी-काव्य में रही है। यद्यपि इसे अनिवार्य तत्व के रूप में छायावादी कवियों ने ही ग्रहण किया। अतः छायावादी कवयित्री महादेवी की कविता में वेदना का व्यापक और मार्मिक रूप पाया जाना स्वाभाविक ही है। उसकी वेदना का कारण लौकिक असफलता न होकर आध्यात्मिकता है। हाँ उनकी कुछ कविताओं में पीड़ित मानवता के प्रति भी वेदना लौकिक रूप में आई है। उनकी आत्माभिव्यक्ति उनकी आध्यात्मिक वेदना की परिचायक है। अध्यातमपरक वेदना का कारण है जीव का ब्रह्म से

वियोग । आत्मा, परमात्मा से अलग हो जाने के कारण वियोग-जन्य पीड़ा से ओत-प्रोत हैं जिसका अंत आत्मा और परमात्मा का फिर एक में मिल जाने पर ही सम्भव होगा । अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि सिद्धान्त इसी आत्मा-परमात्मा के अलगाव पर प्रकाश डालते हैं । रहस्यवादी सिद्धान्तों के आधार पर भी इस वियोग जन्य-पीड़ा पर प्रकाश पड़ता है । कवयित्री ने रहस्यवादी सिद्धान्तों को अपना कर अपनी आध्यात्मिक पीड़ा को हमारे समक्ष रखा है । ब्रह्म के विरह में आत्मा की विकलता का विस्तृत, भव्य और मर्मस्पर्शी वर्णन महादेवी ने अपने काव्य द्वारा किया है । ऐसा उन्होंने दो रूप से किया है । एक तो आत्म-वेदना का स्पष्ट वर्णन उन्होंने किया है और दूसरे प्राकृतिक तत्वों को प्रतीक रूप में उन्होंने ग्रहण करके उनके माध्यम से अपनी पीड़ा को हमारे समक्ष रखा है । दोनों ही वर्णन-प्रणालियों में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है ।

उनकी कविता में समाज-परक वेदना के भी भव्य दर्शन होते हैं, यद्यपि ऐसी वेदना का अधिक चित्रण नहीं हुआ है । लौकिक दुखों में लीन समाज की करुण परिस्थितियों पर उन्होंने ध्यान दिया है, चिंतन किया है । उनकी सच्ची अनुभूति के दर्शन हमें होते हैं । जीवन में सर्वत्र असमानताएँ तथा विषमताएँ हैं और इसमें जग का साधारण प्राणी न उबर पाता है और न अपना मार्ग खोज पाता है । ऐसे पीड़ितों के प्रति महादेवी की पूर्ण सहानुभूति है । इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण मानव जीवन पर भी उन्होंने दार्शनिक चिंतन किया है । फल-स्वरूप कुछ कविताओं में जीवन-व्यापी-वेदनाओं का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है । प्रकृति-चित्रण करते हुए प्राकृतिक तत्वों को प्रतीक रूप में ग्रहण करते हुए उनके माध्यम से भी उन्होंने मानवीय वेदनाओं का रूप हमारे समक्ष रखा है । पुष्प के पराग तथा सुगन्ध-रहित होकर मुरझा जाने में उन्हें पीड़ित मानवता के दुखों का दर्शन हुआ है । उनकी यह प्रतीक-पद्धति अत्यन्त सफल और मार्मिक हुई है । यद्यपि मानव-वेदना कभी-कभी

ऐसे रूप में भी उनके सामने आई है जिसके समक्ष कि प्रकृति-सौंदर्य तथा वैभव भी अपना आकर्षण उनके लिए खो बैठता है। देखिये :—

"मृदु रजत रश्मियाँ देखूँ—उलझी निद्रा पंखों में,
या निर्निमेष पुलकों में—चिंता का अभिनय देखूँ।
तुझमें अम्लान हँसी है—इसमें अजस्र आँसू जल,
तेरा वैभव देखूँ या—जीवन का क्रंदन देखूँ।"

"भौतिक, दैहिक, दैविक तापा" प्रसिद्ध ही है। लौकिक श्रेय में असफलता या अभाव के परिणाम-स्वरूप जो ताप होता है वह हमें महादेवी में नहीं मिलता। हाँ, आध्यात्मिक पीड़ा तथा समाज और संसार द्वारा शोषक, उपेक्षा तथा विषमताओं के फल-स्वरूप जो पीड़ा होती है वह अवश्य महादेवी के काव्य में मिलती है। उनकी आध्यात्मिक पीड़ा श्रृंगार रस के आवरण में सामने आई है। विप्रलम्भ श्रृंगार की ही प्रधानता उनके काव्य में है। ब्रह्म को उन्होंने प्रियतम के रूप में तथा अपने को प्रेयसि के रूप में मानकर काव्य-रचना की है। उनकी आत्माभिव्यक्ति में उनकी अपने प्रेम के प्रति अटल निष्ठा और आत्म-विश्वास झलकता है। कहीं-कहीं ही और वह भी संकेत रूप में ही उनकी अपने प्रियतम से संयोग की झलक-मात्र हमें दिखाई देती है। अन्यथा प्रियतम के वियोग में उनकी आत्मा की व्याकुलता, तड़पन, साधना के ही हमें दर्शन सर्वत्र होते हैं। उनकी पीड़ा में तीव्रता है, गम्भीरता है। नारी होने के कारण वह ऐसा कर सकने में अधिक सफल हो सकी हैं। अपनी वेदना को बिना तनिक भी छिपाये उन्होंने व्यक्त किया है—स्पष्ट रूप में। प्राकृतिक प्रतीकों द्वारा भी यह अभिव्यक्त हुई हैं। उनके काव्य में मिलने के पूर्व की विरह-स्थिति और क्षणिक संयोग के बाद का दीर्घ विरह-वियोग दोनों ही मिलता है। पीड़ा के आधिक्य के फल-स्वरूप करुण रस का भी भव्य रूप हमें उनकी कविता में मिलता है। शान्त रस को भी पर्याप्त स्थान उनकी कविता में मिलता है। ईश्वरीय रहस्य के उद्घाटन में सांसारिक आकर्षणों की

असारता और क्षणभंगुरता की ओर जहाँ-जहाँ उनका ध्यान गया है वहाँ-वहाँ शान्त रस का प्रादुर्भाव हुआ है। सुख-संचय उनका ध्येय ही नहीं है। पीड़ा ही उनकी सर्वस्व है। उन्होंने सदा पीड़ा का ही वरदान माँगा है।

सभी छायावादी प्रकृति का मानवीकरण करते हैं। महादेवी ने भी प्रकृति के विविध अंगों को पीड़ा में निमज्जित दिखाया है। प्रकृति के तत्वों का घनिष्ठ सम्बन्ध मानव-जीवन से सदा रहा है। पुष्प, कली, पल्लव आदि के करुण अन्त में महादेवी ने सार निकाला है और मानव जीवन पर उसे घटाया है। प्रकृति का यह करुण रूप अत्यन्त मार्मिक होकर अनेक स्थलों पर सामने आता है।

करुण-रस का प्रादुर्भाव महादेवी के काव्य में मानवीय वेदना के स्वरूप को लेकर भी हुआ है। समाज की विषमताओं से पीड़ित, उनके व्यवहार से पीड़ित तथा अभावों से पीड़ित होने के कारण मानव की दशा तथा स्थिति अत्यन्त करुण हो गई है और उस स्थिति से प्रेरणा पाकर महादेवी ने अपने काव्य में करुण रस का सृजन किया है जो अत्यन्त मार्मिक है। जीवन की करुणा का चित्रण प्रकृति-तत्वों की आड़ में इन्होंने किया है। इस दिशा में यह अत्यन्त सफल रही हैं।

आध्यात्मिक वेदना की पराकष्ठा होने पर भी साधक की दशा करुणाजनक हो जाती है। ब्रह्म के विरह में आतमा की व्याकुलता का चित्रण इनके काव्य का विषय है। संयोग की शीघ्र आशा भी नहीं है, यद्यपि आतमा परमातमा से सन्निद्ध के लिए सतत् प्रयत्नरत है। ऐसी निराशाजनक स्थिति करुणा का जन्म देती है। करुणापूर्ण वेदना से वह आच्छादित ऐसे स्थलों पर हो जाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महादेवी ने वेदना को ही प्रमुख स्थान अपने काव्य में दिया है। वेदना की अभिव्यक्ति में जितना ही कौशल होगा उतनी ही वह पाठकों के लिए मार्मिक सिद्ध होगी। महा-

देवी कला-शिल्पी तो हैं ही। साथ ही गहरी अनुभूति का होना भी कवि के लिए आवश्यक होता है। अनुभूति और चितन दोनों तत्वों की आवश्यकता वेदना के लिए आवश्यक है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए अभिव्यक्ति-कौशल की भी। उनकी अनुभूतियाँ सामाजिक भी हैं और आध्यात्मिक भी। वे अत्यन्त मार्मिक हैं और उनमें हृदय को हिला देने की सामर्थ्य है।

हृदय-गत अनुभूतियों के वाद तत्सम्बन्धी चिंतन का महत्व है। कवयित्री महादेवी का चिंतन वैयक्तिक होते हुए भी सर्वाङ्गीण है, सर्व-व्यापी है। उसकी वैयक्तिक वेदना में हमें सामाजिक तथा आध्यात्मिक वेदनाओं के पूर्ण स्वरूप दिखाई देते हैं। आपने इसी चिंतन के बल पर वह अपनी वेदना को घनीभूत करने में सफल हुई हैं। इसी चिंतन का फल यह हुआ है कि वेदना की तीव्रता के पश्चात् भी वह नितांत निराश नहीं होतीं। उनका चिंतन उनकी निराशा की भावना पर विजय प्राप्त करता है, प्रेरणा देता है। यह है उनके काव्य की विशेषता।

अपनी वेदना के प्रकटीकरण के लिए उन्होंने प्रतीक-योजना को भी अपनाया है। इन प्रतीकात्मक कविताओं की सहायता से मानवीय वेदना का स्वरूप और भी स्पष्ट हो जाता है। दीपक, पुष्प, कली, रात्रि आदि का प्रतीकवत् उन्होंने प्रयोग किया है। एक उदाहरण लें—दीपक की पीड़ा को दिखाकर इस व्याज से उन्होंने अपने प्रेम की अनुभूति का वेदनामय रूप हमारे सामने रखा है :—

"मूक करके मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद,
जलाते प्राणों को चुपचाप
छिपाए रोता अन्तर्नाद।
कहाँ सीखी यह अद्भुत प्रीत ?
मुग्ध हे मेरे छोटे दीप।"

वेदना के स्वरूप से स्पष्टीकरण में इनको अश्रुओं का योग मिला है। जीवन से वेदना का प्रतीक अश्रु होते हैं। उनके काव्य में केवल उन्हींके अश्रुओं का कथन नहीं है। रात्रि तथा नभ भी अर्थात् प्रकृति-तत्व भी पीड़ा से व्याकुल हैं और ओस या जलबिन्दु के रूप में अश्रु-मोचन करते हैं। अश्रुपूर्ण पलकों तथा नेत्रों का भी वर्णन किया गया है। हृदय की वेदना नेत्रों से झाँकती ही रहती है। वह अपने समस्त अंगों को भी वेदनापूर्ण नेत्रों से परिवर्तित कर देने की आपने आराध्य से प्रार्थना करती है :—

"आज आए हो हे करुणेश ! इन्हें जो तुम देते वरदान,
गला कर मेरे सारे अंग, करो दो आँखों का निर्माण!"

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि महादेवी वियोग, पीड़ा, वेदना और अश्रु ही की कवयित्री हैं। वेदना उन्हें अत्यन्त प्रिय है। साधक के लिए वेदना का हृदय में होना वह अनिवार्य मानती हैं। आत्मा का जब तक परमात्मा से साक्षात्कार नहीं हो जाता वह वेदनामय विरह के कारण रहेगी ही। और दूसरे सामाजिक विषमताओं के कारण मानवीय वेदना का बोलबाला यहाँ रहेगा ही। महादेवी के काव्य का आधार-स्तम्भ यही वेदना है। और इस दृष्टिकोण से उनका काव्य अपनी एक अलौकिक विशिष्टता रखता है।

महादेवी का प्रकृति-वर्णन

महादेवी ने प्रकृति के प्रति अत्यन्त सहानुभूति पूर्ण दृष्टि रखी है। रहस्यवादी कवियों को प्रकृति के माध्यम ही से उस अलक्ष्य सत्ता के दर्शन होते हैं अत: प्रकृति के प्रति उनका अनुराग होना स्वाभाविक ही है। और फिर प्रकृति सदा से उद्दीपन विभव के रूप से कवि अपनाते रहे हैं। वन-पक्षियों का कलरव, कोकिक की कूक, पपीहे की पुकार,

पलाश के फूल, मलयानिल आदि कोई प्रिय के मधुर स्वर की स्मृति कराती, कोई हृदय में करुणा की हूक उठाती, कोई पीड़ा को तीव्रतर करती, कोई उनके हृदय में आग लगाती और कोई वस्तु उसे शीतलता प्रदान करती है। जैसी नायिका की स्थिति होती है उसी के अनुसार प्रकृति उसे सुखदायी या दुखदायी दिखाई देती है।

प्रकृति में कवयित्री ने अपने व्यक्तित्व को समाहित कर दिया है—

> 'फैलते हैं सांध्य-नभ में भाव ही मेरे रंगीले,
> तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले।'

उनका प्रकृति-वर्णन अत्यन्त सजीव और हृदय स्पर्शी है। देखिए, चित्र-सा खींच दिया है:—

> 'तू भू के प्राणों के शतदल!
> सित क्षीरफेन हीरक रज से
> जो हुए चाँदनी में निर्मित,
> पारद की रेखाओं में चिर
> चाँदी के रंगों से चित्रित
> खुल रहे दलों पर दल झलमल!
> सीपी से नीलम से द्युतिमय
> कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
> कुछ सुख-चंचल कुछ दुख-मंथर
> फैले तुम से कुछ तूल-विरल,
> मँडराते शत-शत अलि-बादल।'

रजनी, प्रभात, संध्या, वर्षा, बादल आदि प्राकृतिक वस्तुओं के उन्होंने पूर्ण चित्र प्रस्तुत किये हैं। देखिए, पावस का कितना हृदयग्राही चित्र है:—

'रूपसि तेरा धन केश पाश,
श्यामल - श्यामल कोमल - कोमल,
लहराता सुरभित केश - पास।
नभगंगा की रजत धार में
धो आई क्यों इन्हें रात ?
कंपित हैं तेरे सजल अंग
सिहरा - सा तन है सद्य - स्नात।
भीगी अलकों के छोरों से
चूती बूँदें कर विविध लास !
रूपसि तेरा घन केश - पास।'

अनेक रूप-रेखाओं से यह चित्र पुष्ट है :—

'सौरभ—भीना झीना गीला,
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल;
चल अंचल से झरझर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण - फूल !
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है,
बक - पातों का अरविंद - हार—'

महादेवी जी की 'प्रकृति' अत्यन्त ऐश्वर्यमयी तथा महत् है। किन्तु बाज दफा तो प्रियतम से साक्षात्कार की उत्सुकता की अधिकता से वह प्रकृति के बन्धनों को तोड़ डालने की बात कहती हैं :—

'तोड़ दो वह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस पार क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?'

किन्तु यह बात हम महादेवी जी के काव्य में विशेष रूप से पाते हैं। प्रकृति के दृश्यों का उपयोग जहाँ उन्होंने आलङ्कारिक रूप में भी किया है, वहाँ भी किसी रहस्य-भाव के ही संबंध से।

कवयित्री ने अपने काव्य में प्रकृति को उचित स्थान प्रदान किया

है। उनकी साधना के मार्ग, उस अलक्ष्य सत्ता पर पहुँचने के लिए प्रकृति सदा सहायक के रूप में उनके साथ रही है। छायावादी कवि प्रकृति को प्रधानता क्यों देते हैं, इस संबंध में उन्होंने लिखा है—

'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दु:ख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अत: अब मनुष्य के अश्रु-मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके समीप हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।'

आपके प्राकृतिक-चित्र विस्तृत तम के पट-रूप में हमें दिखाई देते हैं जिसमें झिलमिलाते तारे हैं। इन दीपों से आपका लगाव है। आपको अंधकार ही प्रिय है क्योंकि—

'करुणामय को भाता है
तम के पर्दे पर आना,
ए नभ की दीपावलियों !
तुम क्षण भर को बुझ जाना।'

और आप कहती हैं:—

'तमसय तुषारमय कोने में
छेड़ा जब दीपक-राग एक
प्राणों-प्राणों के मन्दिर में
जल उठे बुझे दीपक अनेक !'

प्रकृति में कवयित्री को अपने मनोभावों की भी छाया दिखाई देती है और उस अलक्ष्य ब्रह्म की भी। कभी-कभी उनके कवि की आत्मा स्वयं प्रकृति को सौन्दर्य और सुषमा प्रदान करती है। कवि-आत्मा, प्रकृति से अधिक सुखमय तथा ऐश्वर्यमय है :—

'जग करुण-करुण, मैं मधुर-मधुर
दोनों मिलकर देते रजगण
चिर करुण मधुर सुन्दर-सुन्दर
जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिय जल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल-डाल
सुन फूल-फूल उठते पल-पल।
सुख-दुख मंजरियों के अंकुर !'

प्रकृति का मानवीकरण करके भी उसका प्रयोग यह समस्त आधुनिक छायावादी तथा रहस्यवादी करते आये हैं। महादेवी ने भी ऐसा ही किया है। अलक्ष्य विराट सत्ता को एक अप्सरा का रूप दिया है :—

'लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मँजीर,
उड़ता झंझा में अलक जाल;
मेघों में मुखरित किंकिण स्वर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।

रवि शशि तेरे अवतंश लोल,
सीमान्त जटिल तारक अमोल,
चपला विभ्रम स्मिति इन्द्र-धनुष,
हिम कण बन झरते स्वेद निकर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।'

इसमें प्रकाश और अन्धकार उसके श्वेत और काले वस्त्र हैं, साग गर्जन ही मँजीरों की रुनझुन है। झंझा ही अलक-जाल है, मेघों ध्वनि किंकिणी की ध्वनि है। रवि-शशि ही चंचल कुण्डल हैं, तारे माँग के अमूल्य मोती हैं, चपला को विभ्रम कहा है, इन्द्रधनुष स्मिति और हिमकणों को स्वेत बिन्दु का रूप दिया गया है।

प्रकृति के अनेक अनुपम रेखाचित्र आपने खींचे हैं। देखिये :—

'कनक से दिन, मोती सी रात,
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात;
मिटाता, रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?
शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन,
बुझा क्यों उनको जाती मूक
भोर ही उजियाले की फूँक ?
गुलाबों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग;
उसे तम की बढ़ एक झकोर,
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?'

कहीं-कहीं महादेवी जी ने अपना अंग भी प्रकृति को कहा है :—

'मेरी निश्वासों से बहती रहती झंझावात,
आँसू में दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात
कसक में विद्यु त अन्तर्ध्यान।'

अधिकतर प्रकृति के चित्र उनके निजी भावों के ही प्रतिबिम्ब हैं। पर कहीं-कहीं उन्होंने स्वतन्त्र प्राकृतिक दृश्यों के चित्र उपस्थित किए हैं। उदाहरणार्थ 'हिमालय' कविता देखिए—

'तू भू के प्राणों का शत दल,
सित क्षीर-फेन हीरक रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित,
पारद की रेखाओं में चिर
चाँदी के रंगों से चित्रित,
खुल रहे दलों पर दल झलमल।
सीपी से नीलम से द्यु तिमय,
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल,
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर,
फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मँडराते शत-शत अलि, बादल'

महादेवी जी के लिए प्रकृति सर्वस्व है। उनके शृंगार की वस्तु, आत्मा तथा स्वयं ब्रह्म की छाया तथा प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है। संक्षेप में, प्रकृति उनके जीवन का अपरिहार्य अंश और अंग है। प्रकृति से उनका प्रगाढ़ परिचय है। उन्होंने इस बात को स्वयं स्पष्ट कर दिया है—'जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन-जड़ के बिना आकाश शून्य। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी 'वाद' के अन्तर्गत, चाहे उनमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो चाहे अपार्थिव की, और चाहे दोनों के अविछिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है।'

प्रकृति से उन्हें सदा प्रेरणा मिली है। डा० श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने लिखा है—'इस प्रकार प्रकृति ने उनके भाव-पक्ष का ही नहीं कला-पक्ष का भी शृंगार किया। प्रतीकों द्वारा व्यजंना तो और कवियों ने भी की है, पर उसे अपने जीवन-दर्शन—ससीम का असीम से तादात्म्य—के लिए प्रकृति को माध्यम बनाना उनकी अपनी विशेषता है। उनके काव्य में प्रकृति इतनी घुल-मिल गई है कि उसे विश्लेषण के लिए अलग करके देखना भी कठिन है। हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी ने प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूर्ण अभिव्यक्ति दी है और विराट की प्रेमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है। यही उनके लिए प्रकृति की सबसे बड़ी देन है।'

महादेवी ने प्रकृति में मातृत्व के दर्शन किए हैं। प्रकृति की गोद में विश्व-रूपी शिशु है कितना हृदयस्पर्शी वर्णन है :—

'इस स्निग्ध करों से छा दे तन
पुलकित अंगों में भर विशाल;
झुक सस्मित शीतल चन्दन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा देना बहका देना,
यह तेरा शिशु जग है उदास।'

उनका प्रकृति-वर्णन अपूर्व है। पावस का वर्णन करती हुई वे कहती हैं :—

मिट चली घटा अधीर!
चितवन - तम श्याम रंग
इन्द्र - धनुष भृकुटि भंग
विद्युत का अंग - राग
दीपित मृदु अंग - अंग
उड़ता नभ में अछोर तेरा नव नील चीर।

अविरत गायक विहंग,
लास - निरत पर किरन संग,
पग - पग पर उठते बज
चापों के जल - तरंग,
आई किसकी पुकार लय का आवरण चीर।'

डा० रामरतन भटनागर ने लिखा है:—'प्रकृति की यह वर्ण-कवयित्री-माधुरी महादेवी के काव्य को सम-सामयिक कवियों की रचना से अलग कर देती है। परन्तु यह वर्ण-माधुरी, प्रकृति की यह अनुपम छटा कवयित्री को इसलिए आकर्षित करती है कि उसके द्वारा वे परोक्ष का इंगित देने में समर्थ हो जाती हैं। सायं-प्रातः वर्षा के श्यामल मेघ और शरद के हिम-उज्ज्वल बादल, चातक, पपीहा, कोयल, इन्द्र-धनुष, विद्युत और नक्षत्र उनके काव्य में अपने सामान्य अर्थों को खोलकर अपने नये अर्थों की सृष्टि करते हैं। प्रकृति के सारे उपकरण महादेवी के काव्य में प्रतीक बनकर आते हैं। इसीसे उनके चित्रों में चित्रों से पार की अनुभूति और साधना की भूमि का परिचय रहता है। कदाचित् परोक्ष का संकेत देने के लिए प्रकृति का इतना व्यापक, चित्र-विचित्र और सुन्दर प्रयोग किसी भी भारतीय कवि में नहीं मिलेगा। प्रकृति के चिर-परिचित रूप भी महादेवी के काव्य में नव-नव रूप-माधुरी लेकर आते हैं। प्रकृति उनके रहस्यवादी काव्य की वीथिका-मात्र नहीं है। वह कहीं उन्हीं की भाँति प्रिय-विरह में तपती हुई साधिका है, कहीं पथ की संगिनी, कहीं वह स्वयं इस चिन्मय सत्ता का रूप ग्रहण कर लेती है।'

संक्षेप में यही कहा जा सकता है हिन्दी-साहित्य में महादेवी का प्रकृति-वर्णन अपने ढंग का अकेला और अनोखा है।

तुलनात्मक अध्ययन

दो कवियों के काव्य की तुलनात्मक-आलोचना और अध्ययन तभी करना ठीक होता है जब उनकी रचनाओं की आधार-भूमि में समानता

हो। या तो उन दो कवियों की कविताओं के कुछ अंशों या विशिष्ट भागों में समानता मिले और या फिर दोनों के समय काव्य में कोई समानता की बात हो—तभी तुलनात्मक अध्ययन अधिक सफल होगा। उदाहरणार्थ कबीर और जायसी रहस्यवादी कवि थे। जायसी के रहस्य-वाद में भारतीय वेदान्त की आत्मा को इस्लामी चोला दिया गया था। कबीर का रहस्यवाद भारतीय संस्कृति के अधिक निकट था। अतः यदि हम कबीर और महादेवी के काव्य की तुलना करें तो कर सकते हैं। जायसी ने गीति-काव्य नहीं लिखा है, जब कि कबीर ने गीति-काव्य का सृजन किया है। वैसे ही मीरा की कविता से भी महादेवी की तुलना की जा सकती है। अपने-अपने प्रियतम (ब्रह्म) को आधार बनाकर दोनों ने कविता की है। वियोग-जन्य पीड़ा से दोनों ही ओत-प्रोत हैं। वैसे ही वर्तमान युग के रहस्यवादी कवि प्रसाद, पंत, निराला से भी सरलतापूर्वक महादेवी की कविता की तुलना की जा सकती है।

समग्रतामूलक तुलनात्मक अध्ययन करना तो संभव और सहज नहीं होता क्योंकि दो कवियों की अनुभूतियों और अभिव्यक्ति के ढंग में अंतर होना स्वाभाविक ही है। दो कवियों की विचार-धाराओं, अनुभवों, मान्यताओं और शैली में भेद होता ही है। किन्तु विशिष्ट काव्यांगों की तुलना अवश्य दो कवियों की सरलता, सफलता और सुविधापूर्वक की जा सकती है। समान स्तर पर विविध कवियों की विशिष्ट काव्यांगों की तुलना उपयोगी भी होती है। इससे विशिष्ट भावों के अध्ययन में बड़ी सहायता और स्पष्टता मिलती है। कभी-कभी कवियों की रचनाओं में भाव-साम्य इतने स्पष्ट रूप से मिलता है कि उनकी भावनाओं, अनुभूतियों और उनके व्यक्त करने की शैली का तुलनात्मक अध्ययन उचित और वांछनीय होता है। हाँ इस बात का विशेष ध्यान रहे कि तुलना पक्षपातरहित हो। यद्यपि यह कार्य इतना सरल नहीं है क्योंकि आलोचक का केवल अपना विशिष्ट दृष्टिकोण ही नहीं होता, किसी कवि के प्रति उसे अत्यधिक श्रद्धा या रुचि

हो सकती है, और प्रत्यक्ष रूप से नहीं, जान-बूझकर नहीं तो भी अप्रत्यक्ष रूप से, अनजाने में कुछ पक्षपात हो ही जाता है। संक्षेप में कहने का अर्थ यही है कि तुलनात्मक आलोचना का काम बहुत दुरूह और उत्तरदायित्व पूर्ण है।

किन्तु प्राचीन काल से ऐसी आलोचना होती ही आई है। वर्तमान युग में तो इस प्रकार की आलोचना पर्याप्त मात्रा में होने लगी है, और यह आवश्यक भी है। अपने आलोच्य कवि की आलोचना के लिए जो तुल्य कवि आलोचक सामने लाते हैं वह केवल हिन्दी का ही कवि हो, यह सीमा नहीं रह गई है। भारत की प्रान्तीय भाषायें ही नहीं विदेशी भाषाओं के कवियों से भी आलोचक कवि की तुलना आजकल खुलकर की जाने लगी है। इससे हमारा आलोचनात्मक ज्ञान बढ़ता है।

दो युग एक समान नहीं होते। प्रत्येक युग की कुछ विशेषताएँ होती हैं। कबीर और महादेवी दो युगों के अलग-अलग प्रतिनिधि हैं। उनके काव्य का विषय भी पूर्णतया एक नहीं है। पर दोनों रहस्यवादी कवि हैं—यह समानता तो दोनों में है ही। कबीर में कलापक्ष का हम वह विकसित और सुन्दर रूप नहीं पाते। उस काल में भावों को ही प्रधानता दी जाती थो। आज के छायावादी युग में भावों की उत्कृष्टता के साथ काव्य में कलापक्ष का भी सुन्दर विकास हुआ है। महादेवी में शिल्प-सौंदर्य भी है और भावोत्परता भी। अतः कबीर और महादेवी के भावतत्वों की तुलना ही उचित है। महादेवी काव्य-शिल्प का सज्जित रूप हमारे सम्मुख रखने में सदा सजग रही हैं। कबीर ने काव्य-शिल्प के आयोजन की ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह सधुक्कड़ी भाषा में रचनाएँ कर गए हैं। महादेवी की भाषा सुस्थिर, सरल और माधुर्यपूर्ण है। कबीर ने समाज-चित्रण बहुत किया है। महादेवी के काव्य में अवश्य ही यह कार्य नहीं किया गया—उनके गद्य को छोड़ दीजिए। हाँ दोनों का काव्य रहस्याच्छादित है। कबीर संत साधक थे। अतः उनके काव्य में साधनात्मक और भावनात्मक दोनों रूप मिलते हैं, जब कि

महादेवी के काव्य में केवल भावनात्मक रूप । अतः निश्चयतया कबीर का रहस्यवादी काव्य अधिक व्यापक रूप में है । साधनात्मक रहस्यवाद में जितनी सफलता जायसी को मिली है उतनी कबीर को नहीं । कबीर का भावनात्मक-रहस्यवाद अवश्य स्तुत्य और प्रचुर मात्रा में है । कबीर और महादेवी दोनों ही ने इस काव्य को गद्य-काव्य का रूप दिया है । पर प्राचीन युग के और वर्तमान युग के गीत-काव्य में क्या अन्तर है यह अन्यत्र बताया ही जा चुका है । कबीर की आत्मानुभूति महादेवी की आत्मानुभूति से अधिक सुस्पष्ट, तीव्र और प्रभावोत्पादक है । महादेवी की आत्माभिव्यक्ति में हृदय-तत्व की प्रधानता होते हुये भी उसमें कहीं-कहीं अपूर्णता है, अस्पष्टता है । महादेवी ने अपनी भावनाओं को, अनुभूतियों को छायावादी प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है जबकि कबीर ने ऐसा सहज रूप में किया है । अतः सहज प्रतिपादन की दृष्टि से कबीर का रहस्यवादी काव्य महादेवी के काव्य से अधिक श्रेष्ठ है ।

मीरा तथा महादेवी के काव्यों पर उनके युगों का प्रभाव पड़ा है । उन दोनों के विषय तथा शैली में भी अन्तर है । किन्तु उनके काव्यों में विभिन्नता होते हुए भी एक समानता मिलती है । मीरा और महादेवी दोनों के काव्य-भावों का सम्बंध आत्मा और परमात्मा का रहा है । आध्यात्मिक विषय की समानता अवश्य है पर मीरा सगुण भक्ति की आराधक थीं और महादेवी निर्गुण-भक्ति की । किन्तु दोनों ने अपने आराध्य देव के प्रति भावाभिव्यक्ति विरह-दशा में की है । प्राकृतिक प्रतीकों की सहायता दोनों ने ली है किन्तु महादेवी ने बहुत तथा व्यापक रूप में । नारी-हृदय की अनुभूतियों और विरह-जन्य-भावनाओं को दोनों ने लौकिक प्रेम की छाया में हमारे समक्ष रखा है यद्यपि ऐसा करके भी वे अपने काव्य में आध्यात्मिकता का निर्वाह कर सकी हैं । मीरा की भक्ति मधुर-भाव की थी । वह सगुण भक्त थीं । कृष्ण को उन्होंने पति माना । मधुर भाव की भक्ति महादेवी की भी है, निर्गुण परब्रह्म को पति-रूप में उन्होंने भी माना है । पर जहाँ मीरा ने अपने

निजत्व को पूर्णतया कृष्णमय कर दिया है, अपना अस्तित्व ही कृष्ण में समाप्त कर दिया है, वहाँ महादेवी अपना निजी अस्तित्व भी बनाए रखे हैं। स्वाभाविक ही है कि ब्रह्म को जिस आत्मीयता के साथ मीरा ग्रहण कर सकी हैं महादेवी नहीं।

दोनों की कविताओं में वेदना को प्रमुख स्थान मिला है। पर मीरा की वेदना का स्वरूप शुद्ध आध्यात्मिक है। महादेवी की आध्यात्मिक-वेदना में कहीं-कहीं लौकिक-वेदना का भी मेल है—या यों कहें कि आध्यात्मिक-वेदना के अतिरिक्त लौकिक वेदना-रूप हमें महादेवी में मिलता है। अपेक्षा-कृत करुणभाव महादेवी के काव्य में अधिक है।

मीरा के काव्य में भी कला पक्ष का वह निखरा रूप नहीं है जो महादेवी में। कारण पहले बताया ही जा चुका है। जहाँ मीरा के काव्य में भाव-व्यक्ति में क्षनुभूति की गहराई और मार्मिकता अधिक व्यापक है, वहाँ कला-सौष्ठव की दृष्टि से महादेवी की कविता अधिक श्रेष्ठ है।

महादेवी की तुलना वर्तमान युग के प्रसाद, पन्त तथा निराला से की जा सकती है। यह चारों ही छायावादी युग की उपज हैं। अतः छायावाद की विशेषताओं तथा सौन्दर्य-चेतना की अभिव्यक्ति की ओर समान रूप से सब बड़े हैं। छायावाद के दृष्टिकोण से प्रसाद जी का काव्य महादेवी के काव्य से अधिक श्रेष्ठ है किन्तु रहस्यवाद के निरूपण में महादेवी ने अधिक मार्मिकता और व्यापकता का परिचय अपने गीत-काव्य में दिया है। प्रसाद भी आँसू और आह के कवि हैं किन्तु वह आनन्दवाद के पोषक हैं। यद्यपि दोनों ही ने आध्यात्मिक वेदना का चित्रण किया है। पर अलौकिक के साथ लौकिक वेदना के रूप भी दोनों में मिलते हैं। दोनों के विषय-प्रतिपादन में समानता है पर दोनों के काव्य में अन्तर भी स्पष्ट है।

महादेवी निराला जी की परम भक्त हैं। निराला की कविता में भी रहस्यवाद तत्व का अच्छा निरूपण है किन्तु दोनों की अभिव्यक्ति-शैली

में पर्याप्त भेद है। दार्शनिक-चित्रण निराला में हमें अधिक मिलता है। अतः उनका काव्य अधिक दुरूह हो गया है। महादेवी का काव्य अपेक्षाकृत कम दुरूह है। उनके भावों की स्पष्टता पाठक को शीघ्र ज्ञात हो जाती है। गीत-काव्य दोनों ने लिखा है, पर निराला ने छन्द-काव्य भी। निश्चय ही निराला की अपेक्षा महादेवी में माधुर्य अधिक है। निराला में ओज गुण की प्रधानता है। उनकी कविता में शृंगारिक-चेतना की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक है। महादेवी के भावों में माधुर्य अधिक है।

सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का आधार भी छायावादी दिग्दर्शन ही रहा है। भावक्षेत्र तथा कलाक्षेत्र दोनों में ही उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र में भी निश्चय ही पंत महादेवी की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य-ग्रहणता तथा व्यापकता को अपनाते हम पाते हैं। यद्यपि प्रकृति-चित्रण में महादेवी ने भी प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से रहस्यात्मक भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। महादेवी का प्रकृति-चित्रण बहुत सजीव, मार्मिक और मधुर हुआ है। प्रकृति-चित्रण की छाया में महादेवी की रहस्योन्मुख भावनाओं के प्रकटीकरण में पंत को अपेक्षा-कृत अधिक सफलता मिली है। कलापक्ष के दृष्टिकोण से छायावादी उपकरणों को दोनों कवियों ने समान रूप से अपनाया, सजाया, सँवारा है। माधुर्य गुण भी समान रूप से दोनों में पाया जाता है। वेदना का स्वर निश्चय ही महादेवी का प्रसाद, पंत, निराला सबसे अधिक मर्मस्पर्शी है। छायावादिता के निर्वाह में जहाँ पंत को अधिक सफलता मिली है वहाँ रहस्योन्मुख भावनाओं की अभिव्यक्ति में निश्चय ही महादेवी अधिक सफल रही हैं। यह सत्य है कि अध्यात्मिक काव्य का सृजन दोनों ने किया है किन्तु दोनों की दिशाएँ पर्याप्त भिन्न हैं। गद्य-काव्य भी पंत ने लिखा है और छंद-बद्ध काव्य भी।

रहस्यवादी कविता का अत्यन्त सफल, सरस, सरल और मार्मिक

रूप हम महादेवी के गीत-काव्य में पाते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महादेवी, प्रसाद, पंत, निराला वर्तमान युग के सर्व-श्रेष्ठ रहस्य-पूर्ण तथा छायावादी कवि हैं और अपने-अपने क्षेत्र में सभी का महत्व-पूर्ण तथा उच्च स्थान है। वर्तमान युग की तो महादेवी सर्व-श्रेष्ठ कवयित्री हैं ही।

रहस्यवादी कविता में प्रयुक्त कुछ महत्वपूर्ण शब्द :—

शब्द	अर्थ
कुम्हार, कर्तार, प्रियतम, अज्ञात	ब्रह्म
सागर	संसार
तम, रात्रि, अंधकार	अज्ञान, दुख
प्रकाश	ज्ञान, आशा
गायक	साधक
वीणा, मुरली	शरीर, आत्मा, हृदय
प्रभात, प्रात, उषा	आनन्द, जीवन का प्रारंभ
तरी	शरीर
मधु, मधुमास, वसंत	आनंद, यौवन-काल, मिलन
शुक	नासिका
चंद्र	मुख
सर्प	वेणी
कमल	नेत्र, मुख
मनि	नेत्र
सुहाग-रेखा	मिलन-सुख
वारिकण, नीरद माला, मोती	अश्रु

शब्द	अर्थ
मलय	भावोत्तेजना
पतझाड़, निदाघ	दुख, वियोग
झंझा	लोभ, संघर्ष
संगीत, तान	भावधारा, अन्तर्नाद
कुंद, मोती, रजत	शुभ्रता
मधुप	प्रेमी
चंद्रिका, ज्योत्सना	शांति
बिजली	वेदना
मधु	माधुर्य
निर्वाण	मृत्यु, मुक्ति
स्वर्ण-देश, सपनों का देश उस पार, सोने का संसार	ब्रह्मलोक
पतवार	साधना, साहस
नक्षत्र	आशा
कर्णधार	गुरू
तट	जीवन
कलियाँ	सुख, आशा
प्याली	शरीर
हाला, मधु, मदिरा	प्रेम
पथ	साधना
जलना	साधना
मिटना	ब्रह्म में लीन होना
कंप, पुलक	सिहरन, अनुभूति
प्यास	आकांक्षा

———————

आधुनिक कवि (महादेवी)

टीका तथा व्याख्या

गीत १ (निशा को धो देता राकेश)

शब्दार्थ—राकेश—चंद्रमा ; तुहिन कण—ओस की बूँदें; निर्वाण—बुझना ।

भावार्थ—कितना सुन्दर दृश्य था, जब तुम स्वयं प्रेम का वरदान देने आये; मेरे प्रियतम होकर, स्वयं मुझे खोजने आये । उस समय प्रकृति के प्रांगण में मिलन का मेला सा लगा था । चंद्रमा अपनी प्रेयसी निशा के काले बालों को धवल ज्योत्स्ना में धोकर अपना प्रेम प्रकट कर रहा था ; बसंत कलिका के निकट आकर उसकी मधुरता का मूल्य पूछकर अपना प्रेम व्यक्त कर रहा था ; प्रेम में पागल वायु इधर-उधर दौड़ता घूम रहा था और उसके स्पर्श से ओस-बिन्दुएँ धूल में बिखर जाती थीं ; ऐसी मधुमय वेला में, तुम मुझे जीवन का संगीत-प्रेम सिखाने आये । तुम्हारी दृष्टि में मेरे प्रति, करुणा (दया) थी उसे देखकर मेरे मन में अनेक कामनायें स्वप्न के समान उदय हुईं और तुम्हारी अधरों की मुस्कान ने तो मुझे प्रेमाकुल बना दिया । प्रेम में विह्वल होने के कारण जिन गीतों को गाकर मैं तुम्हें रिझाना चाहती थी, वही मैं भूलने लगी । परन्तु ऐ करुणेश, तुम मेरी उन भूलों को क्षमा कर देते थे । तुम, मुझे प्रेम करने का बार-बार अवसर देते थे, परन्तु कितनी रातें बीत जाने पर भी (कितने दीपक निर्वाण का अर्थ है अनेक रात्रियों का आना) मैं तुम्हें न प्राप्त कर सकी।

मेरे स्वरों में शक्ति न आ सकी और मेरी वीणा से वे गीत न निकल सके, जो तुम्हें रिझा सकते। प्रयत्न करते-करते मैं हार गई। कृपा करके मेरे स्वरों को अपनी वीणा के विश्वव्यापी स्वरों में आत्मसात् कर लो।

विशेष—कवयित्री ने लौकिक प्रतीकों की सहायता से आत्मा और ब्रह्म के तादाम्य की अवस्था और उसके बीच आनेवाली कठिनाइयों का चित्रण किया है। आत्मा को अपने में मिलाने के लिए ब्रह्म स्वयं उत्सुक है; ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर 'आत्मा' निर्बलता के कारण उसे प्राप्त नहीं कर पाती। अनेक दीपक निर्वाण को प्राप्त हुए अर्थात् कितने ही जन्म-जन्मांतर बाद भी आत्मा उस विराट शक्ति में लीन न हो सकी। अत: स्पष्ट है कि उद्धार होने का अवसर तो उसी महान ब्रह्म के हाथ में है।

गीत २ (रजतकरों की मृदुल तूलिका)

शब्दार्थ—रजतकरों—सूर्य की किरणों; तरल हृदय—दुखी मन; विधुर—जिसकी पत्नी की मृत्यु हो गई हो; आह्वान—बुलावा; निर्निमेष—अपलक।

भावार्थ—प्रात:काल के समय ओस से भीगी हुई कलियों पर सूर्य की किरणें खेल रही थीं मानों किरणरूपी लेखनी से, ओस-रूपी मसि (स्याही) की सहायता से प्रकृति अपनी करुण-कथा लिख रही थी (प्रकृति के दुख का कारण है, ईश्वर से वियोग)। बादल, जिनमें पानी भरा था, मानों आहें भर रहे थे अर्थात् पानी बरसने लगता था और संध्याकाल में दिन के अन्त होते समय कालिमा फैलने लगी थी मानों अंधकार चारों ओर काले रंग की वर्षा कर रहा था।

आकाश में झिलमिलाते हुए तारे अमृतरूपी जल में उत्पन्न होनेवाले फूल के सदृश प्रतीत होते थे। जिस प्रकार दिवंगता

पत्नी के वियोग में पति के हृदय में कम्पन होने लगता है, उसी प्रकार नदी के किनारों से लहरें उमड़ी पड़ती थीं। चारों ओर प्रकृति में वियोग का भाव ही दृष्टिगोचर होता था। इसी अवसर पर मेरे प्रियतम व्यथा-पीड़ित हृदय से अपना प्रेम प्रकट करने के लिए मानों स्वप्न-लोक से आकर प्रकट हुए और वे प्रेम-संगीत अत्यन्त मधुर स्वरों में सुनाने लगे।

प्रियतम ने मुझे दर्शन दिया। उनकी चंचल चितवन से ही उनके रहस्य अर्थात् निगूढ़ प्रेम का पता चलता था। मैं उनकी ओर अपलक दृष्टि से देखती रही। उस क्षण से न जाने क्यों मेरे हृदय में इतना घोर अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो गया है। उस समय से ही यह जीवन मुझे एक पागलपन ही प्रतीत होता है और सांसारिक वैभव मुझे कष्टों का कारण प्रतीत होता है। जिस प्रकार शराबी नशे में अधिक से अधिक मदिरा पीना चाहता है उसी प्रकार मैं प्रेम में विह्वल होकर अधिक से अधिक अपने प्रियतम के विरह में मस्त रहना चाहती हूँ।

जिस दिन प्रियतम ने मुझे दर्शन दिया और चले गये, उस समय से मेरा मन अत्यधिक व्यथा से भर रहा है। तब से मैं रुदन करती हुई पहरेदार की भाँति सजग रहती हूँ और मेरे लिए मुक्ति का कोई अर्थ नहीं रह गया है। हे सखि, तुम मुझे सान्त्वना देना चाहती हो, यह कहकर कि मैं स्वप्न की तरह उस मधुर मिलन को भूल जाऊँ, उसे व्यर्थ समझूँ परन्तु वह मिलन ही तो स्मरण रखने-योग्य मेरी पूँजी है। वही वास्तविकता है, सत्य है क्योंकि उसका प्रभाव अभी तक स्थायी है। मेरे प्रियतम के आगमन से समस्त प्रकृति में, 'हास', एक प्रफुल्लता-सी भर गई है और मैं उनके विरह में निरंतर रुदन करती रहती हूँ।

विशेष—लौकिक प्रतीकों की सहायता से कवयित्री ने आत्मा के मिलन का चित्र खींचा है। एक बार ब्रह्म से साक्षात्कार

हो जाने पर, कितना आनंद प्राप्त होता है और फिर जीवन में कितना परिवर्तन हो जाता है, उसका वर्णन काव्यमय भाषा में बड़ी सफलता से किया गया है।

गीत—३ (निश्वासों की नीड़ निशा का)

शब्दार्थ—निश्वास—उच्छ्वास। नीड़—घोंसला। शयनागार—सोने का स्थान। बन्दनवार—झालर। विछलन—चिकनापन। मर्मर—खड़खड़ाने या टूटने या चरचराने का शब्द।

भावार्थ—जैसे चिड़िया घोंसले में विश्राम करती है, उसी प्रकार उच्छ्वसित प्रकृति के प्रांगण में रात्रि विश्राम कर रही है। रात्रि का सो जाना ही प्रातःकाल का प्रारंभ है; रात्रि के निष्क्रिय होने पर दिन निकलता है। प्रातःकाल के समय ताराओं की पक्तियाँ विलीन हो जाती हैं, मानो मोतियों की लड़ियाँ टूट कर बिखर रही हों। अस्त होने वाले तारे मानो रुदन कर रहे हैं और उनके आँसू ही ओस कणों के रूप में चारों ओर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन ओस-कणों में यह लिखा हुआ है कि संसार नश्वर है। (परिवर्तनशील प्रकृति को देख कर कवयित्री को जगत की नश्वरता का ज्ञान प्राप्त होता है।)

एक दूसरे दृश्य को देखकर कवियित्री को संसार की मादकता और उसके आकर्षण का अनुभव होता है। प्रातःकाल ऊषा की लालिमा चारों ओर छा जाती है। सूर्य की किरणें जब चपल लहरों पर पड़ती हैं, तो ऐसा जान पड़ता है, वे बिछल जाती हैं। चारों ओर कलियाँ खिल जाती हैं, उन पर ओस-कण गिरते हैं। कलियाँ मानो यह संदेश देती हैं कि यह संसार आकर्षक और मादक है।

तीसरे दृश्य को देखकर कवयित्री को संसार की निष्ठुरता और असारता का अनुभव होता है। खिले हुए फूल अपनी सुगंध वायु को प्रदान करते हैं। परन्तु जब वे मुरझा जाते हैं

तो वही वायु उन फूलों पर धूल उड़ाता है (अर्थात् यहाँ प्रेम का प्रतिदान नहीं मिलता) उन मुरझाये हुए फूलों के निकट आकर कहते हैं, यह फूल मधुहीन है। उस समय फूल रुदन करते हुए सोचते हैं—यह संसार कितना निष्ठुर है और स्वार्थी है।

संध्या का दृश्य देखकर कवयित्री के मन में दूसरे भाव उठते हैं। संध्या के समय अस्त होता हुआ सूर्य अपने सुनहले रंग से अपनी पराजय की कथा लिख देता है अर्थात् इतने प्रकाशवान सूर्य का भी पराभव हो जाता है। गोधूली (संध्या) के प्रारंभ होते ही आकाश में अनेक तारारूपी दीपक जल उठते हैं। अंधकार रूपी समुद्र अपनी उत्ताल तरंगों से सृष्टि को डुबाता हुआ आगे बढ़ता जाता है और यह संदेश देता है कि कितना समय बीत चुका है। परन्तु अब तक संसार का खेल वैसे ही चलता जा रहा है।

इन अनेक दृश्यों को देखकर कवयित्री के मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उठने लगती हैं। वह कहती है—जब मैं इन विचित्र कल्पनाओं में खो जाती हूँ, तो यही समझने लगती हूँ कि मेरा संसार शाश्वत है। यह दृश्य-जगत् सदैव बना रहेगा; परन्तु दूसरे ही क्षण किसी से एक अज्ञात संदेश मुझे प्राप्त होता है। उस संदेश में करुणा भरी होती है। इसलिए कि मनुष्य इस नाशवान् संसार की माया में पड़कर उसे भ्रमवश सत्य मानता है और मैं भी उसे सत्य मान बैठी हूँ। मुझे वह चेतावनी देता है कि यह संसार पागल है, भ्रमवश इस जीवन को वह सत्य समझ बैठा है।

विशेष—प्रकृति के विभिन्न दृश्यों को देखकर कवयित्री के मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। कभी वह सोचती है कि संसार अनस्थिर है और त्याज्य है, तो कभी वह उसे

उपयोग के योग्य समझती है परन्तु अन्त में उसे सच्चा तत्वज्ञान प्राप्त होता है। एक दैवी-शक्ति उसे वास्तविकता का आभास कराती है। गीत की अंतिम पंक्तियों में इसी ओर संकेत किया गया है। उसे निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि इस लौकिक जीवन को शाश्वत समझना पागलपन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

गीत—४ (रजनी ओढ़े जाती थी)

शब्दार्थ—तटनी— नदी। अवनी—पृथ्वी। रीते—खाली। निर्मम—निष्ठुर। प्रात-चितेरा—प्रात:कालीन सूर्य। व्रीड़ा—लज्जा।

भावार्थ—रात्रि का समय था आकाश में तारे छिटके हुए थे मानो रात्रि तारों से सुसज्जित चादर ओढ़े हुए जा रही थी। उसके इस सौन्दर्य पर चाँदनी ईर्ष्या करती हुई रो रही थी। अर्थात् वह अँधेरी रात चाँदनी से भी अधिक सुन्दर थी। नदी की लहरें तट का चुम्बन करती हुई, चंद्रमा को पाने के लिए दौड़ रही थीं। आत्मविस्मृत होकर वह नदी अन्धकार का आलिंगन कर रही थी अर्थात् चारों ओर अन्धकार व्याप्त था।

मलयानिल ओस-विन्दुओं को सूखी हुई पृथ्वी पर बिखेर रहा था मानों विरही बनकर वह अपनी करुण कथा सुना रहा हो और ओस के विन्दु उसके आँसू हों। पादपों की डालियाँ हिंडोले की भाँति झूल रही थीं। कलियों में सुगंधि भरी हुई थी क्योंकि वे अभी मुकुलित अवस्था में थीं। (कवयित्री ने इस सुगंधि को कलियों में सोना माना है।) मधुपूर्ण वृक्षों के बीच में घुसकर आती हुई किरणें मधु से सन कर आ रही थीं। (कवयित्री ने किरणों को अभिसारिका के रूप में माना है, जो छिपकर प्रेमी की गली में उससे मिलने जाती है)।

प्रात:काल निकट आने पर चन्द्रमा का प्रकाशपूर्ण मुख मलिन होकर पीला पड़ने लगा ; कारण उसे रात भर जागना पड़ा था। धीरे-धीरे चन्द्रमा अस्त होने लगा और सूर्य के उदय होने का समय आ गया। पूर्व में उदित होकर चित्रकार की भाँति सूर्य नया चित्र तैयार करने लगा। ऊषाकाल में सृष्टि का कण-कण लालिमा से रँग गया। चारों ओर नवयौवन की चेतना भर रही थी। उसी समय मैं अपने प्रियतम के स्वागत के लिए अनेक कल्पनाओं और कामनाओं में उलझी हुई आगे बढ़ी।

मेरे प्रियतम के चरणों के नाखून हीरों से कहीं अधिक सुन्दर थे मैं उन चरणों पर अपने आँसू बहाने लगी। प्रथम-मिलन में लज्जा और संकोच के कारण मेरी आँखों में लज्जा थी यद्यपि उन्हें देखने के लिए मेरा मन लालायित था। उन्होंने मेरी ओर देखा तभी से मेरे मन में प्रेम की पीड़ा भर गई। (कवयित्री ने 'मुग्धा-नायिका' का सुन्दर चित्र खींचा है जो अपने प्रिय से मिलने के लिए उत्सुक रहती है परन्तु लज्जा के कारण अपना प्रेम प्रकट नहीं कर पाती)।

वह मधुर मिलन स्वप्न के समान मधुर प्रतीत हुआ। उसके बाद कितना ही समय व्यतीत हो गया। उनके वियोग में रोते-रोते आँखों में अब आँसू भी न रहे, दुख की चरम सीमा आ गई। मेरा जीवन शून्य और एकाकी है परन्तु मैं अपनी स्थिति में मस्त हूँ और उनके प्रेम में अपने प्राणों को जलाती हुई अपने जीवन को प्रकाशित करती रहती हूँ। (संसार को त्याग करके एकान्त में रहता हुआ भक्त उस स्थिति में ही अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है)।

प्रियतम के वियोग में मेरा मन व्याकुल है। उच्छ्वासों को मैं रोके रहती हूँ। (संयम का अपूर्व चित्र है।) मेरी इस

मर्मान्तक व्यथा में ही मेरी सारी पूँजी है। अर्थात् प्रियतम का स्मरण दुखदायी होते हुये भी मेरे लिए अत्यन्त मूल्य की वस्तु है। ऐ निठुर, मेरा प्राणान्त हो जाय, इसकी तनिक भी चिंता नहीं। मेरी मृत्यु से तेरी हानि होगी क्योंकि तेरे प्रेम में घुल-घुल कर मरने वाला कोई न रहेगा।)

विशेष—कवयित्री शुद्ध प्रेम द्वारा 'ब्रह्म-प्राप्ति' का उपाय बताती है। वह सच्चे भक्त के रूप में अपना दैन्य-भाव (निर्धनता) प्रदर्शित करती है। उसे ब्रह्म का दर्शन होता है और तभी से वह व्याकुल है। उस प्रथम दर्शन का स्मरण और प्रियतम का निरंतर स्मरण ही उसकी जीवन-निधि है।

गीत—५ (मिल जाता काले अंजन में)

शब्दार्थ—अंजन—कालिमा। विद्युत—बिजली। पातें—पंक्तियाँ। सिहराई—हल्का कम्पन। नीरव—चुपचाप।

भावार्थ—सांध्यकालीन लालिमा धीरे-धीरे गहन कालिमा में परिणत हो जाती है और आकाश में तारे इधर-उधर निकल आते हैं। स्वयं आकाश मानों किसी के प्रेम में खोया हुआ प्रतीत होता है क्योंकि वह तारे गिन-गिन कर रात काट रहा है। रात्रि स्तब्ध है मानों आकाश अपनी विरह-वेदना व्यक्त करने में असमर्थ है।

आकाश में जल से भरे हुए बादल छाये हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानों मेघ वेदना की मदिरा-पान करके मस्त होकर झूम रहे हों। (बादलों को भी विरह में दुखी माना गया है।) रुक-रुक कर वायु के झोंके आते हैं, और उनके साथ बादल आ जाते हैं। वे बादल मानो किसी रुँधे हुए उच्छ्वास का प्रतिरूप हैं। धीरे-धीरे पानी का बरसना किसी विरही का रुदन है। बादलों के बीच में, बिजली चमक कर विलुप्त हो जाती है।

मेरे सूने आँगन में रात्रि ओस कणों के रूप में मानों मोतियों की वर्षा कर जाती है। उन ओस कणों में रात की ठंडी स्वासों के कारण शीतलता आ जाती है। उन बूँदों पर किरणें पड़ती हैं, उस समय वे बूँदें कुछ सिहर उठती हैं मानों किरणों के चुंबन से वे कम्पित हो उठती हों।

उद्यान में फूल मुरझाये से आँखें बन्द किए खड़े हैं। मन्द समीर उनका स्पर्श करके उन्हें गत-जीवन का सन्देश देता है। वे एक बार समीर के स्पर्श से तनिक सचेत हो उठते हैं परन्तु वह सचेतनता क्षणिक होती है और वे फिर मुरझाकर गिर जाते हैं।

मनुष्य प्रेम-याचना करता है परन्तु निष्फल; अश्रु बहाता है परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं; वह हँसता है परन्तु उसमें पीड़ा होती है; वह त्याग करता है परन्तु निष्फल। अत: ऐ निष्ठुर, मैं सर्वत्र देखती हूँ कि प्रकृति का कण-कण मेरे मन की भाँति सूना है।

विशेष—कवयित्री प्रकृति के कण-कण में और मानव-जीवन में एक नैराश्य का अनुभव करती है। इस निराशा और उदासीनता का कारण है 'वियोग'। प्रियतम के अभाव में, रात्रि, फूल, समीर और मेघ तथा स्वयं कवयित्री को एक विचित्र शून्यता का अनुभव होता है।

गीत—६ (मैं अनन्त पथ में लिखती)

शब्दार्थ—अनन्त-पथ—प्रेम-साधना। सपनों की बातें—प्रेम के काल्पनिक तथ्य। अभिषेक—स्नान। प्रतिबिम्बित—परछाईं पड़ना। वीणा—शरीर; बजाने वाला—आत्मा; विस्मृति—मृत्यु; निर्वाण—मोक्ष; असीम—ब्रह्म; अमरता—देवता; मिटने का खेल—नश्वर शरीर धारण करना।

भावार्थ—**मैंने अनन्त प्रेम का मार्ग अपना लिया है और जिन प्रेम सिद्धान्तों को मैंने स्थिर करके अंकित कर लिया है, वे शाश्वत**

हैं। अत्यन्त वियोग-दुख पाने पर भी मैं अडिग रहूँगी। चाहे कितनी रातें, मुझे यों ही वियोग में घुल-घुल कर बितानी पड़ें परन्तु मैं अपने प्रेम में स्थिर रहूँगी।

मेरे प्रियतम के वियोग में मुझे जो पीड़ा प्राप्त हुई है, उसका इतिहास अक्षुण्ण रहेगा। आकाश में उड़कर छाने वाली धूल के अंचल पर वह इतिहास सदैव वर्तमान रहेगा।

रात्रि के समय उदय होने वाले अनेक तारों के रूप में मानों मैं अनेक रूप धारण करके अनेक आँखों से प्रियतम का दर्शन करूँगी। मेरी प्रेम-साधना इस लौकिक जगत तक ही न सीमित रहेगी, वरन् वह विश्वव्यापी रूप धारण कर लेगी।

हो सकता है, मेरा वीणा रूपी शरीर नष्ट हो जाय और प्राण चल बसें परन्तु शुद्ध प्रेम-साधना के फलस्वरूप होनेवाली मेरी वह मृत्यु सैकड़ों बार के मोक्ष से कई गुना श्रेष्ठ सिद्ध होगी।

मेरी इस प्रेम-साधना के फलस्वरूप जब उस परब्रह्म से मेरी आत्मा मिलकर एकाकार हो जायगी और मेरा अस्तित्व उस विश्वव्यापी शक्ति में लीन हो जायगा, तो देवता भी मुझसे ईर्ष्या करने लगेंगे और वे भी नश्वर शरीर धारण करके यही पद पाने की चेष्टा करेंगे। ('अमरता मिटने का खेल खेलेगी' से तात्पर्य यह है कि जो मुक्त होकर अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं, वे फिर शरीर धारण करना चाहेंगे क्योंकि बिना शरीर धारण किये हुए शुद्ध प्रेम करना सम्भव नहीं है।)

विशेष—'छायावाद' और 'रहस्यवाद' के बीच सीमा निर्धारित करनेवाली विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है। इस गीत में कवयित्री 'छायावाद' से हट कर स्पष्ट रूप से रहस्यवाद के क्षेत्र में आ जाती है। अतः प्रतीकात्मकता का प्राधान्य हो जाना अवश्यम्भावी था। वह अपने को सच्चे साधक-भक्त के रूप में प्रस्तुत करती है। उसे अपनी प्रेम साधना पर अटूट विश्वास है।

वह ब्रह्म को शाश्वत मानती है और उसके लिए लौकिक अस्तित्व का होना आवश्यक समझती है। अमरों को भी साधना के लिए शरीर धारण करना पड़ेगा। 'ब्रह्म' की तुलना में मोक्ष भी तुच्छ है। अंतिम दो पदों में 'वीणा' 'बजानेवाला' विस्मृति' 'असीम', 'अमरता' और 'खेल' आदि प्रतीकात्मक प्रयोग हैं।

गीत ७ (छाया की आँख मिचौनी)

शब्दार्थ—आँखमिचौनी—चाँद का मेघों से निकलना और फिर छिपना ; श्रम के कण—पसीने की बूदें, ओस बिन्दुओं के रूप में ; दीपावलियाँ—तारे ; विधु— चंद्रमा ; मकरन्द—पराग ; मरकत—पन्ना (पीले रंग का) ; दिव्यलोक—स्वर्ग ।

भावार्थ—आकाश में चंद्र उदित हुआ परन्तु मेघों में वह कभी छिपता और कभी निकलता था। मेघों में एक प्रकार की मस्ती दृष्टिगोचर होती थी। रात्रि का समय था और ओस गिर रही थी। (ओस की बूँदों को कवयित्री ने पसीने की बूँदें माना है। इस उद्भावना का एक व्यंजित अर्थ है। रात्रि एक नायिका के रूप में मानी गई है और उसके कपोलों पर छलकनेवाले श्रम-कण रतिकाल में उत्पन्न थकावट के कारण निकल आये हैं।)

कुछ फूल खिल गये हैं और मानों अपनी मादक दृष्टि से वे ताक रहे हैं और आकाश में तारों के रूप में असंख्य दीप जल रहे हैं। संध्या के समय आकाश पीतवर्ण का हो गया है और किरणें केवल फुलझड़ी के समान साधारण प्रकाशवाली प्रतीत होती हैं।

आकाश में निकला हुआ चंद्रमा, परागपूर्ण थाली के समान प्रतीत होता है। चारों ओर छिटकी हुई चाँदनी में मानों मिसरी घुली हो क्योंकि वातावरण में अपूर्व मिठास जान पड़ती है।

जब तुम प्रेम का कोष लेकर आओगे और मुझ भिक्षुक को न दे सकोगे, उस समय तुम्हें अनुभव होगा कि मुझ जैसे याचक

को निराश करने में तुमने कितनी बड़ी भूल की है। (कवयित्री को अपने प्रेम पर गर्व है। वह ब्रह्म-पद प्राप्ति के लिए साधना करती है परन्तु उसके मत में इस तादात्म्यता के लिए ब्रह्म को भी प्रयत्न करना चाहिए)।

तुम आज मुझे अपना मूल्य सिंहासन प्रदान कर रहे हो परन्तु मेरी नजरों में यह तुच्छ है। मेरे हृदय-रूपी मरुस्थल की बालू के एक कण के समान भी इसका मूल्य नहीं है अर्थात् मैं अपनी विरह-वेदना की तुलना में ऐश्वर्य को तुच्छ समझती हूँ।

मेरी प्रेम-साधना अनन्त है और अमर दीपक के प्रकाश की भाँति वह सदैव स्थायी रहेगी। सम्भव है, सूर्य का प्रकाश समाप्त हो जाय, तारे नष्ट हो जायँ परन्तु मेरा प्रेम-दीपक जलता ही रहेगा।

दुख एक विशाल तरु के समान है और सारा संसार उसकी छाया में सोता है अर्थात् सारा संसार दुख से परेशान है परन्तु मेरी आँखों का एक अश्रु-बिन्दु उस सारे दुख से कहीं बड़ा है। मेरी आँखों में वह समस्त दुख भरा हुआ है।

यह संसार मेरी साधना का कुछ भी मूल्य नहीं समझता और वह समझता है कि मेरी आँखों में आँसू नहीं रहे परन्तु अब तक जितने आँसू मैं बहा चुकी हूँ उसी का मूल्य कोई नहीं आँक सका।

देवलोकवासी देवतागण मेरे इस तुच्छ जीवन को हेय दृष्टि से देखते हैं परन्तु जिस प्रेम-वेदना को मैं सहन कर रही हूँ उसे सँभाल सकने में वे देवता असमर्थ हैं। उनमें इतनी शक्ति नहीं कि मेरे समान वे प्रेम-साधना कर सकें।

अतः भिक्षुक के जीवन के समान मेरा यह जीवन कैसे तुच्छ हो सकता है (अर्थात् मेरा यह जीवन अमरत्व से कहीं श्रेष्ठ है।) दैवी जीवन में भले ही करुणा-दया आदि की विशेषता हो परन्तु

मेरे जीवन के समान शून्यता उनमें कहाँ मिलेगी। (यहाँ 'सूनापन' से निराशा का अर्थ नहीं वरन् 'वैराग्य' से है।) देवों में इतनी निर्मल साधना का भाव कहाँ से आ सकता है।

विशेष—कवयित्री को अपनी प्रेम-साधना पर गर्व है। उसने इस जीवन को मोक्ष की अवस्था से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। कहा भी गया है—'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् शरीर के बिना धर्म की साधना नहीं हो सकती।

गीत ८ (घोर तम छाया चारों ओर)

शब्दार्थ—मारुत—वायु; प्रतिकूल—विरुद्ध; तरी—नाव; उत्ताल—ऊँची; रैन—रात; कृष्णादुकूल—काली साड़ी; विसर्जन—छोड़ना; सोने का संसार—ब्रह्मानंद; विहग—पक्षी, मुक्त आत्माएँ; विसर्जन—तल्लीनता, आत्मविस्मृति।

भावार्थ—आधे गीत में, कवयित्री ने ब्रह्मानंद-प्राप्ति की साधना के मार्ग में आने वाली अनेक कठिनाइयों का वर्णन किया है। यह वर्णन भी प्रतीकात्मक है और उसमें कोई विशेष नवीनता नहीं है। सूर, तुलसी और कबीर के पदों में ऐसे भावों की बार-बार आवृत्ति हुई है। कवयित्री एक समुद्र-यात्री की भाँति साधना के मार्ग पर चल पड़ती है। अनेक बाधायें उसके मार्ग को अवरुद्ध करती हैं। वह कहती हैं—चारों ओर घटायें (निराशा) उमड़ पड़ी हैं और अंधकार (अज्ञान) छा गया है। वायु का प्रवाह (इच्छाएँ, तृष्णाएँ) प्रतिकूल है, और उसका वेग इतना अधिक है कि बड़े-बड़े पर्वत (श्रेष्ठ साधक) भी जड़ से हिले जाते हैं। सागर (संसार) गरज रहा है, न जाने कौन मुझे उस पार लगाएगा। (कवयित्री को उस ईश्वर का एकमात्र सहारा है।) पर्वत के समान ऊँची तरंगें (चित्त की चंचलता) हाहाकार करती हुई उठ रही हैं और भयंकरता का आभास उस पर उफनाते हुए फेने से मिलता है। ऐसा जान पड़ता है मानो वे मेरी नाव (साधन

जिनके सहारे साधक आगे बढ़ता है) को वे निगल जायँगी। असमर्थता के कारण मेरे हाथ से पतवार छूट गई। मैं कैसे पार पहुँचूँगी। समुद्र में मेरी नाव को निगल जाने के लिए अनेक मगर और घड़ियाल जैसे भयानक जलचर (लोभ, मोह, क्रोध, और काम) दौड़ रहे हैं। समुद्र की अनन्तता देखकर मेरा धैर्य टूट रहा है। इन तरंगों को मैं कैसे पार कर सकूँगी। मेरा पथ प्रदर्शन करने वाला एक मात्र तारा (आशा) भी लुप्त हो गया। इसी समय काले वस्त्र धारण क़िए हुए रात्रि आयी। उसने कहा कि तू अपने सारे मनोरथ त्याग दे। तेरे पार पहुँचने की कोई आशा नहीं। तू साथ में कोई खेनेवाला माँझी (गुरु) भी न लायी, पार कैसे पहुँचेगी ?

इस अपार संकट में कवयित्री को उस संसार का ध्यान आ जाता है, जहाँ पहुँचने पर उसके सारे दुख और भय नष्ट हो जायँगे। अतः उसे साहस होने लगता है। वह सोचती है—मैंने सुना था कि इस समुद्र को पार कर लेने पर एक ऐसा संसार देखने को मिलेगा जो अत्यन्त सुनहला है। वहाँ के पक्षी (निवासी आत्मा) मृत्यु की हँसी उड़ाते हैं अर्थात् वहाँ अमरत्व है। वहाँ की पृथ्वी की शोभा अपूर्व है। हाय मैं उस लोक में कैसे पहुँच सकूँगी। उस लोक में बहने वाले झरने शांतिपूर्ण गीत गाते हैं और उनका जल पीते ही अमरत्व प्राप्त होता है। वहाँ के आकाश में दिव्य संगीत गरजता रहता है जिसे सुनकर हृदय में अपूर्व सिहरन उत्पन्न होती है। उस संगीत में असीम प्रेम का संदेश भरा है। मुझे उस लोक तक कौन पहुँचायेगा ? उस दिव्य-लोक के फूल कभी मुरझाते नहीं और वायु सदैव त्याग के आदर्श गीत गाता रहता है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु में दिव्य प्रकाश प्रतिभाषित होता है परन्तु वह संसार तो दूर है और मुझे वहाँ तक कौन पहुँचायेगा।

कवयित्री इस प्रकार चिंतित थी। इसी बीच में किसी ने अत्यन्त मनमोहक स्वरों में एक गीत गाकर सुनाया और उसे एक मार्ग का बोध कराया। उसने कहा—तू अपनी नाव को बीच मँझधार में ले जाकर डुबा दे। अपने अस्तित्व को खो देना ही पार जाने का अचूक साधन है और उसकी सहायता से उस पार पहुँचा जा सकता है। (यहाँ पर कवयित्री ने साधना के मार्ग में तन्मयता को श्रेष्ठ माना है।)

गीत—९ (थकी पलकें सपनों पर डाल)

शब्दार्थ—अवसाद—दुख। शून्य—आकाश। दिनमान—सूर्य। अनुराग—प्रेम, लालिमा सुभग—सुन्दर। पारावार—समुद्र।

भावार्थ—प्रकृति के कण-कण में कवयित्री को उस महान शक्ति के दर्शन होते हैं अतः वह प्रकृति के साथ एकाकार हो जाना चाहती है।

व्यथा-पीड़ित आकाश जब थक कर आँखें बन्द किये हुए सो रहा हो और स्वप्न देख रहा हो (अर्थात् आकाश जब पूर्णतया स्तब्ध हो) और बादल धीरे-धीरे अश्रुमोचन करके अपनी व्यथा शांत कर रहे हों (वर्षा हो रही हो); जब आकाश अपना शांति-पूर्ण गीत, वेदना की वीणा को बजा कर गा रहा हो और रात्रि वायु रूपी तार में तारे रूपी फूलों को गूँथकर माला तैयार कर रही हो तभी उन तारों के साथ मेरे तुच्छ प्राण-पुष्प भी गूँथ देना (कवयित्री अपने प्राणों को तुच्छ समझते हुए भी 'हठीले' अर्थात् साधना में अटल मानती है)।

प्रातःकाल का समय हो जिसे देखकर किसी जीवन (पूर्व-जीवन जब ब्रह्म और आत्मा एक थे) की याद आ जाती है, और जब कलियाँ खिल रही हों मानो अभी स्वप्न देखकर उठी हों तथा आलस्यपूर्ण दृष्टि से देख रही हों (कली भी इसके उस महान शक्ति से मानों मिल चुकी हो और अपने अनुभव बताना चाहती

हो), जब मलयानिल भी मानों अपनी उस खोयी मस्ती को (जिसका अनुभव ब्रह्म-मिलन के समय उसने किया था) दीर्घ श्वासें लेता हुआ इधर-उधर खोज रहा हो; जब चुप खड़े हुए पुष्प भी अपनी पिपासा बुझाने के लिए ओस बिन्दुओं की याचना कर रहे हों, तो हे भगवान् , तुम मेरे कोमल अश्रुओं को ही उन पुष्पों को पिला देना।

जब सूर्य की किरणें चंचल लहरों से खेल रही हों और किसी का (उस ब्रह्म से) शीतल स्पर्श करके जब लहरें कम्पित हो उठती हों; एकान्त में संसार जब अपनी मनोव्यथाओं को दुहरा रहा हो जब सूर्य आकाश की सुनहरी प्याली में किसी (ब्रह्म) की प्रेम-मदिरा पान कर रहा हो, तभी, ऐ देव, मैंने युग-युग से जो अपनी मादक प्रेम-मदिरा संचित की, उसी प्याली में उसे चुपके से ढाल देना ताकि सूर्य उसका पान कर सके।

जब विस्तृत समुद्र स्वप्नमयी मदिरा का पान कर स्थायी रूपसे महानिद्रा में लीन हो अर्थात् समुद्र जब शांत हो; अदम्य गति से बहता हुआ तूफान जब समुद्र की धड़कन से अपना स्वर मिला रहा हो अर्थात् जब तूफा का शब्द समुद्र की लहरों के शब्द से मिल रहा हो; जब वृक्षों की छाया वायु के झकोरों से मूक संदेश कह रही हो और दुखी शांत वायु विषादपूर्ण स्वरों में किसी के आगमन के विषय में पूछ रही हो, तभी ऐ देव, तुम आकर मेरे इस फूलरूपी दुर्बल शरीर को विसर्जित कर देना।

विशेष—सम्पूर्ण गीत कवयित्री की रहस्यवादी भावना का परिचायक है। वह अपने आपको उस महान शक्ति के साथ लय कर देना चाहती है, जो प्रकृति के अंग-अंग में व्याप्त है।

गीत—१० (जो मुखरित कर जाती थी)

शब्दार्थ—मुखरित—स्पष्ट। आवाहन—निमंत्रण। निस्पंद—शांत। निर्घोष—शब्दरहित। चपला—बिजली।

भावार्थ—एक दिन मुझमें भारी दुर्बलता थी, रह-रह कर मेरा मन अपने प्रियतम (ईश्वर) से मिलने के लिए आतुर हो उठता था और मैं उन्हें बार-बार आमंत्रित करती थी। मैं निष्काम भाव से उन्हें प्रेम न करती थी। अब मैंने उस दुर्बलता को दूर कर दिया है (अब मुझमें संयम आ गया है।) जिन आँखों में पहले चंचलता थी (पुतली का थिरकना चंचलता का द्योतक है;) आज उनमें साधना का संयम है; जिन आँखों से पहले आँसू बहा करते थे, वे भी अब शांत हैं। लौकिक दृष्टि से मेरा जीवन सफल न कहा जाय परन्तु मैंने सच्चा मार्ग जान लिया है। आज मेरा शरीर-दीपक सारी कामनाएँ नष्ट करके बुझा चाहता है अर्थात् मैं मोक्ष प्राप्त करने लगी हूँ। मेरी यह साधना देखकर प्रकृति भी सीख रही है बादलों में निरंतर चमकने वाली बिजली शांत होने लगी है और तीव्रगति से बहने वाली वायु भी बेसुध-सी ठहर गयी है। ईश्वर का मिलन एकान्त में ही संभव है, रात्रि का घोर अंधकार मिलने के लिए उपयुक्त साधन है, अतः तारागणों का प्रकाश भी यदि लुप्त हो जाय तो अच्छा है।

विशेष—चंचलता, अस्थिरता, प्रकाश और अशांति आदि मिलन में बाधक सिद्ध होते हैं, अतः कवयित्री इन पर विजय प्राप्त करना चाहती है। इस गीत द्वारा कवयित्री को साधन के मार्ग में कितनी सफलता मिलती है, इसका अनुमान हम लगा सकते हैं।

गीत—११ (स्वर्ग काव्य नीरव उच्छ्वास)

शब्दार्थ—क्षणभंगुर—विनाशशील। क्षीरनिधि—दुग्ध-समुद्र। निर्मेघ—ओलों से रहित। अलक्षित बिना देखे हुए। सम्मोहन—मंत्र-मुग्ध करने वाली। आस्वादन—चखना। संजीवन—जिलानेवाली। प्याली - जीवन। उन्मीलन—खोलना। विच्छेद—वियोग।

भावार्थ—कवयित्री अपने गत जीवन अ

ब्रह्म पहले एक थे परन्तु माया में लिप्त होने के कारण आत्मा ब्रह्म से विलग हो जाती है। फिर भी वह है तो उसी महान शक्ति का अंश। अतः उसे बार-बार अपनी पूर्व-स्थिति का स्मरण होता है।) का स्मरण करती हुई कहती है—मेरा वह जीवन कितना मधुर था। उस जीवन में स्वर्गीय तत्वों की प्रधानता थी। ईश्वरीय वीणा का भग्न तार मात्र मेरा जीवन था अर्थात् आत्मा ईश्वर का अंश थी।—मृत्यु का उपहार अर्थात् अस्थायी था वह जीवन, परन्तु वह रत्नों से अधिक प्रिय था। वह जीवन अनेक नई आशाओं का आधार था।

क्षीर सागर के निर्मल लहर के समान वह जीवन पवित्र था और पवित्र झरने की भाँति सात्विक था। सुनहले स्वप्न की भाँति वह जीवन मादक था और उसमें प्रेम की प्रधानता थी। मेरे जीवनरूपी आकाश में मेघ न थे अर्थात् कष्टों और दुखों का नाम-निशान न था। मेरा वह जीवन कितना सुन्दर था।

पता नहीं कैसे माया ने मुझे आ घेरा और मैं उस सुखद जीवन के सुख से वंचित हुई। किसी ने मुझे मनोमोहक तान सुनायी और प्रलोभन देकर मुझे माया के बंधन में डाल दिया। उसके फलस्वरूप मैं अज्ञान में फँस गई। मोह-मदिरा का पान करके मैं अपने पूर्व जीवन को भूल गयी। यह मेरी कितनी बड़ी मूर्खता थी।

मेरे जीवन ! तुम कितने भोले हो (क्योंकि तुम उस ब्रह्म के अंश से वंचित हो गये हो)। तुम्हें निराशा और आशा के चक्र में फँसना पड़ा है अन्यथा पहले तुम निर्विकार थे। आज संसार प्रलोभनों के जाल में फँसा कर तुम्हें नचा रहा है और तुम आज विष (माया) को अमृत (सत्य) मान बैठे हो।

यह लौकिक जीवन तो अस्थिर है। भ्रमरों का गुंजन, फूलों का वैभव, कोकिला का गान, बसंत की मादकता, सभी कुछ

नश्वर है। यहाँ प्रेमी-प्रेमिका का मिलन भी क्षणिक है और यह भी क्षणभंगुर है।

यहाँ फूल खिलते हैं पर मुरझा जाते हैं; चंद्र उदित होकर अस्त होता है; बादलों का पानी बरस कर समाप्त हो जाता है; दीप जल कर बुझता है। यहाँ उत्थान के बाद पतन निश्चित है। यौवन नष्ट हो जाता है; अत: ऐ जीवन! तू सावधान हो जा।

रात-दिन तेरा जीवनरूपी प्याला भरता जा रहा है और एक दिन छलक जायगा (अर्थात् तू मर जायगा) आँखों का प्रकाश मंद होता जा रहा है और श्वास भी धीमी होती जा रही है। ऐ मतवाले जीवन अब तो चेतो और आँखें खोलो।

इसलिए, ऐ जीवन! तुम प्रबुद्ध हो जाग उठो। आकाश के समान गंभीर बनो और अपने को त्यागमय बना डालो। अपने जीवन को इतना अधिक व्यापक बना डालो कि सारा संसार उसमें समा जाय। तुम लघु हो परन्तु तुम अपने को फूलों से भी अधिक आकर्षक बना लो।

मित्र, यह संसार मायापूर्ण है और यहाँ का मिलन भी क्षणिक है। यहाँ के काँटे देखने में फूल के समान सुन्दर लगते हैं परन्तु वे अन्त में घातक सिद्ध होते हैं। तुम्हें वियोग सहन करने का अभ्यास करना चाहिए; केवल यही बात याद रखने योग्य है।

विशेष—इस गीत में जगत क नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए कवयित्री ने यह बताने की चेष्टा की है कि मायावश ही जीव ब्रह्म से विलग होकर आवागमन के चक्कर में फँस जाता है तथा नाना प्रकार के दुख झेलता है। इस तथ्य को प्रतीकों की सहायता से व्यक्त किया गया है।

गीत—१२ (जिस दिन नीरव तारों से)

शब्दार्थ—मनुहार—याचना, मनाना । अवगुण्ठन—घूँघट । बालारुण—प्रात:कालीन सूर्य । जर्जर—फटे-पुराने ।

भावार्थ—रात्रि में चमकते हुए तारों से, एक दिन किरणें कहने लगीं (किरणों की अलकें तारों से कहती हैं मानो किरण स्त्री हो और वह तारों का चुम्बन कर रही हो जिसके कारण उसके बाल तारों के मुख पर पड़ रहे हों)—तुम्हें नींद मालूम हो रही है और अब सो जाओ। फूलों पर अमृत की बूँदों के समान ओस के बूँद बिखरे हुए थे। सूर्य को देख कर कमल खिल गया, ऐसा जान पड़ता था मानो कमल सूर्य से प्रेम याचना कर रहा था। प्रेम का आदर्श स्थापित करते हुए पतिंगे ने दीप-शिखा में अपने को भस्म करके उसी प्रकाश में अपने को मिला दिया (प्रेम का यह सर्वोच्च उदाहरण है कि आत्मा ब्रह्ममय हो गयी)। मेघरूपी बालकों ने आकाशरूपी आँगन में अश्रु बरसाना प्रारंभ कर दिया अर्थात् मेघों ने भी विरह-वेदना का मर्म सीख लिया। चन्द्रमा ने चाँदनी रूपी घूँघट में छिपे हुए रात्रि के मुख को देखा (यहाँ भी मिलन का चित्र अंकित किया गया है)। उसी क्षण से मैं अपने प्रियतम के चरण-चिह्नों को खोज रही हूँ। (कवयित्री प्रकृति में व्याप्त प्रेम से प्रेरणा ग्रहण कर रही है)। दूसरी ओर मेरे प्रियतम मुझसे दूर भागने की चेष्टा कर रहे हैं। जब मैं ओस बनकर फूलों पर गिरती हूँ और चाहती हूँ उन्हें प्राप्त कर लूँ, तो वह सूर्य में बैठे हुए मेरी ओर मुस्कराते हैं। जब उनसे मिलने के लिए मैं पथ की धूल में आ पड़ती हूँ तो वे सुगंध बन कर उड़ जाते हैं अर्थात् आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने में असफल रहती है)। उन्हें प्राप्त करने में मैं असफल रहती हूँ। इसका कारण यह है कि खोजने का ढंग ही त्रुटिपूर्ण है। मेरे प्रियतम ने

स्वयं ही मुझे मलने का उपाय बताया। वे कहते हैं मुझे इधर-उधर खोजने की आवश्यकता नहीं, मैं तो तेरी आँखों की पुतली में ही बसा हूँ, पर मुझे कौन बतायेगा कि मैं अपनी पुतली को कहाँ देखूँ। ब्रह्म की व्यापकता का सभी रहस्यवादी कवियों ने अपने ढंग से वर्णन किया है। महात्मा कबीरदास ने कहा है—

कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूँढे बन मांहि
ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया जाने नाहिं।

गीता में भी यह भाव अनेक स्थलों पर दुहराया गया है। मैं अपने प्रिय के वियोग में रुदन करती हूँ। ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरे अश्रुकण, रात्रि द्वारा बरसाये गये ओसकण ही हैं और रात्रि मुझसे प्रश्न करती है कि आँखें अपलक किसकी ओर ताक रही हैं? स्वयं अन्धकार ने काले रंग से तैयार की हुई चादर से इन नेत्रों को ढँक दिया (अर्थात् अन्धकार मुझे सुलाता है) और प्रभात ने मेरी आँखों में सुनहला पानी ढाल दिया (अर्थात् प्रातःकाल मुझे जगाता है)। मेरे दीर्घ-निश्वासों के आगे मलयानिल (सौरभ की साँसें) की क्या समता है। मेरी आँखें निरंतर अश्रु में डूबी हुई अनेक प्रकार की कल्पनाओं में व्यस्त रहती हैं। कितने ही बार बसन्त आया और पतझड़ आया कितनी बार मैंने जीवन पाया तथा मृत्यु आयी। परन्तु मेरी विरह-वेदना को कोई न जान सका (हर बार ब्रह्म-प्राप्ति की आकांक्षा बनी रही)। असफलता के कारण कवयित्री को निराशा होती है और वह कहती है कि मेरी आँखें बार-बार बन्द होती हैं। मैं बार-बार आँख-मिचौनी का खेल खेलने में असमर्थ हूँ (मिलन और वियोग का यह खेल न खेल कर मैं सदा के लिए ब्रह्म में तिरोहित होना चाहती हूँ)। भावी जीवन (स्वप्न) का आकर्षण मुझे खींच रहा है परन्तु मेरा शरीर जर्जर हो चला है और

मेरी चेतना लुप्त होती जा रही है। ऐ चेतने ! तुम सजग रहना। यदि मेरे प्रियतम स्वप्न बन कर आयें (अर्थात् यदि प्रत्यक्ष दर्शन न देकर वे समाधि में दर्शन दें) तो तुम निद्रित अवस्था में रहना ही पसंद करना (अर्थात् उनके ध्यान में समाधिस्थ हो जाना।)

विशेष—इस गीत में ब्रह्म, प्रकृति और आत्मा, तीनों की एकता स्थापित की गयी है। ब्रह्म सर्वव्यापी है और उसका दर्शन कहीं भी किया जा सकता है परन्तु उसमें लय होने के लिए कई जन्मों तक राह देखना पड़ती है। कवयित्री को भी उस तल्लीनता की स्थिति प्राप्त करने में निराशा का अनुभव करना पड़ रहा है।

गीत--१३ (मधुरिमा के मधु के अवतार)

शब्दार्थ—सुषमा—सौन्दर्य। सहमे—डरे हुए। स्निग्ध—चाँदनी। मकरंद—पराग। आरक्त—लाल। हाट—बाजार। अतीत—भूत-काल। कारागार—बन्दीगृह। कर्तार—बनाने वाला।

भावार्थ—ऐ कोमल प्राण (आत्मा) तुम्हारा किस देश से आगमन हुआ ? तुम माधुर्य और बसन्त के अवतार हो, तुम अमृत और सौन्दर्य के समान सुन्दर हो, तुम्हारा निवास अश्रुओं में है और तुम तारों की नीरवता के समान शांत हो। तुमने निरंतर प्रसन्न रहने की शिक्षा कहाँ से प्राप्त की है (आत्मा स्वभाव से आनन्दमय है।)

ऐ प्राण, तुमने हास और आनन्द की भावना चाँदनी रात से प्राप्त की। तुम्हारा अंग-प्रत्यंग सौन्दर्य से परिपूर्ण है। कोमल पल्लवों के घूँघट में तुम छिपे हुए हो और तुम्हारा पराग अभी तक किसी ने स्पर्श नहीं किया है। (प्रारम्भ में आत्मा निर्विकार होता है, संसार में आने पर ही वह माया में लिप्त हो जाता है।) तुम स्वर्ग का संदेशा लेकर (आत्मा में दैवी-तत्व होते हैं) कैसे इस देश (संसार) में आये।

तुमने अपने नेत्रों को चाँदी के समान स्वच्छ किरणों से धोया, सुगंधि का भंडार तुम में है, तुम में अमृत का कोष है। तुम सम्भवत: अपना मार्ग भूल कर अकेले इस संसार में चले आये हो। तुम खिले हुए छोटे पुष्प के समान हो।

ऊषा के गुलाबी गालों का चुम्बन करके ही, तुममें यह मस्ती आ गई है। आकाश में तारों को अस्त होते देख कर या उन्हें टूटते हुए देखकर तुम्हें न मालूम क्या याद आ जाता है (अर्थात् आत्मा को लौकिक जीवन की नश्वरता का स्मरण हो आता है। सुगंधि का बाजार किसी के आगमन की प्रतीक्षा में है (ईश्वर के लिए सुगंधि का बाजार खुला है।)

चाँदनी का समस्त सौन्दर्य मेरी आँखों में भरा हुआ है और मैं अधखुली आँखों से बेसुध होकर किसी की राह देखती रहती हूँ। मेरा अमूल्य यौवन नष्ट हो गया है। मैं दिन-रात केवल गत-जीवन के सम्बन्ध में सोचा करती हूँ। वास्तव. में प्रेम ही बंधन का कारण है।

ऐ सुकुमार, वह कौन सा आकर्षक संगीत है, जो तुम्हें इस पृथ्वी पर खींच लाया है। तुम्हारा निर्माणकर्ता बड़ा निष्ठुर है जिसने तुम्हारे जैसे निर्मल और कोमल (आत्मा) को इस संसार में ढकेल दिया। अब तुम हँसते हुए यहाँ के कष्टों को झेलो और अपनी सहनशक्ति का परिचय दो।

विशेष—इस गीत में कवयित्री ने लौकिक उपमानों की सहायता से 'आत्मा' के स्वरूप को चित्रित करने की चेष्टा की है। इसमें संदेह नहीं कि 'आत्मा' में ईश्वरीय सत्ता का अंश बहुत बड़ी मात्रा में मौजूद है। भ्रमवश या मायावश ही उसे इस सांसारिक बंधन में फँसना पड़ा है परन्तु उसे बार-बार अपनी पूर्वावस्था का स्मरण हो आता है।

गीत—१४ (वे मुसकाते फूल नहीं)

शब्दार्थ—नीलम—नीले रंग का रत्न। अवसाद—दुख।

भावार्थ—कवयित्री ने इस गीत में ब्रह्मलोक की अनन्तता का परिचय दिया है। हे देव, तुम्हारा लोक अजर-अमर है। वह उन फूलों के समान है जो कभी भी नहीं मुरझाते। वह उन तारों के समान नहीं जो अनन्त में विलीन हो जाते हैं। वह लोक उन मेघदलों के समान है, जो बरस कर विलीन नहीं हो जाते और उसकी तुलना उस बसंत से की जा सकती है, जो स्थायी है। उस लोक में रुदन का चिह्न तक नहीं पाया जाता और न वहाँ पर किसी प्रकार की पीड़ा है जो प्राणों को हर समय विकल किया करती है। (इसके विपरीत इस लोक में मनुष्य रोते और तड़पते दिखाई देते हैं।) हे भगवान्, तुम्हारे लोक में वेदना, दुख और कष्ट सबका अभाव है। वहाँ किसी का विनाश होता ही नहीं। हे देव! क्या तुम्हारी कृपा से मुझे वह अमर-लोक प्राप्त हो सकेगा? (परन्तु तुरन्त ही कवयित्री उस लोक में जाना पसन्द नहीं करती; क्योंकि न वहाँ विरह है और न वेदना, जिन्हें वह मोक्ष से कहीं अधिक मूल्यवान समझती है)। परन्तु नहीं, मैं इस मृत्युलोक में ही रहना चाहती हूँ)। मैं यहाँ रहकर अपने को मिटा सकती हूँ। और इस मिटने के अधिकार को खोना नहीं चाहती क्योंकि मिटकर ही मैं अपने को ब्रह्म में लय कर सकती हूँ।

गीत—१५ (चुभते ही तेरा अरुण बान)

शब्दार्थ—अरुण बान—सूर्य की किरण। कनकराशि—सुनहली किरणें। विहंग—पक्षी। प्रवाल—लाल मूँगा। कुहरम्लान—कुहरे के कारण अँधेरी। कुन्द कुसुम—सफेद रंग का फूल। वितान—चँदोवा। हिम-बिंदु—ओस की बूँदें। कंजकोष—कमल-दल।

भावार्थ—ऊषाकालीन सूर्य की अरुण रंग की किरण मानो ईश्वर का छोड़ा हुआ बाण है, जो सृष्टि पर चलाया गया है और उसके चलते ही प्रकृति में अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। सृष्टि के कण-कण से मानो, अमृत के झरने फूट-फूटकर बहने लगे और उनसे उत्पन्न संगीत से वातावरण भर गया। इन सुनहली किरणों में मानो अंधकार का एक विशाल समुद्र जाग कर हिलोरें ले रहा हो (अंधकार का जाग उठना उसके कालेपन का दूर होना तथा प्रकाश में परिणत हो जाना है)। अंधकार के स्थान पर प्रकाश के उस समुद्र में पक्षियों के कोलाहलमय संगीत के अनेक बुलबुले उठ रहे हैं अर्थात् प्रकाश के साथ पक्षियों का कोलाइल भी प्रारम्भ हो गया। प्रात:कालीन कुहासे के कारण क्षितिज पर एक कालिमापूर्ण रेखा दिखाई पड़ती थी। वह लाल रंग के मूँगे का परदा प्रतीत होती थी अर्थात् क्षितिज पर भी लालिमा दिखाई देने लगी। प्रात:काल के समय सफेद रंग के बादल कुन्द कुसुम के समान सुशोभित थे परन्तु सूर्य की किरणों के पड़ते ही वे इन्द्रधनुष के समान रंगबिरंगे तम्बू के रूप में दृष्टिगोचर होने लगे। तरल ओस की बूँदें नृत्य करती हुई दिखाई देती थीं तथा कलियों के खिलने से उत्पन्न होनेवाला स्वर मानो ताल के रूप में प्रतिभासित होता था। काले भौंरे सुनहले प्रात:काल के रंग में स्नान करके अपनी कालिमा दूर करते हुए मधुर स्वर से गुंजार कर रहे थे। समीर चारों ओर अपनी सुगंधि वितरित कर रहा था मानो परियाँ अपने खुले हुए केशों से सुगंधि लुटाती हुई विहार कर रही हों। तितलियों के बच्चे पुष्पों के पराग में सने हुए फूलों का मधुपान करने लगे। पल्लवों के हिलने से मधुर संगीत उत्पन्न होने लगा। प्रात:काल होते ही चारों ओर नव-स्फूर्ति दृष्टिगोचर होने लगी। निद्रा मानो एक पक्षी की भाँति अपने

स्वप्नरूपी पंख पसार कर क्षितिज के पार उड़ गई अर्थात् आलस्य दूर हो गया। अधखिले कमल के समान अलसाई हुई आँखों से अभी नींद की खुमारी नहीं दूर हुई, (प्रात:काल होने पर भी अनेक जन आलस्य में पड़े रहते हैं)। यह प्रात:काल का समय एक कुशल चित्रकार की भाँति सुख-दुख मिश्रित एक चित्र-सा तैयार कर रहा है।

विशेष—इस गीत से कवयित्री के प्रकृति-प्रेम का परिचय मिलता है। प्रात:काल के समय प्रकृति के प्रांगण में होनेवाले अभूतपूर्व परिवर्तनों का वर्णनकरते हुए उसने अपनी कवित्व-शक्ति का पूर्ण परिचय दिया है। साथ ही भावों और उद्भावनाओं का ऊहापोह देखते ही बनता है। शब्दों की सहायता से प्रत्येक दृश्य को मूर्तिमान कर देने की अपूर्व क्षमता महादेवी में विद्यमान है।

गीत—१६ (शून्यता में निद्रा की बात)

शब्दार्थ—शून्यता—आकाश। अवगुंठन—घूँघट। हौले से—धीरे-धीरे। वात—हवा। अवदात—शुभ्र। लीप—पोत कर। स्पंदन—हलचल। अनुपात—अंश, पतन।

भावार्थ—जिस प्रकार निद्रावस्था में अनेक स्वप्न दिखाई देते हैं, इसी प्रकार आकाश में घन उमड़ते चले आते हैं। कली खिलकर फूल बनती है और उसके सौंदर्य की चरम सीमा है उसमें उत्पन्न होनेवाला मधु। प्रकृति में चलनेवाला अद्भुत व्यापार किसकी प्रेरणा से उत्पन्न हुआ? वास्तव में सृष्टि के पूर्व उस महान शक्ति (ब्रह्म) को शून्यता का अनुभव हुआ होगा और तभी उस महान् कलाकार ने इस विश्वरूपी प्रतिमा की रचना की।

कितना कुशल है वह चित्रकार (ब्रह्म)। उसने काल (समय) के प्रारंभ में ही पीड़ा उत्पन्न की। उसी के कारण मनुष्य का

हृदय मोम की भाँति कोमल बना। वह पीड़ा सात्विक है। उसे उसने सुख-दुख के घूँघट में लपेट कर प्रस्तुत किया। (अर्थात् सुख-दुख में पीड़ा का अनुभव होता है) उसने सुनहले दिन उत्पन्न किये और रुपहली रात बनाई ; सुनहली संध्या, गुलाबी ऊषा भी बना डाली। उसकी सृष्टि में अनेक रंग बनते और मिटते हैं।

जब शून्य आकाश का चुम्बन अंधकार करता है, तो सैकड़ों तारे दीपों के रूप में जगमगा उठते हैं, परन्तु सबेरे प्रकाश के उत्पन्न होते ही वे दीप बुझ जाते हैं। रात्रिरूपी बाला चाँदी के प्याले में निद्रारूपी मदिरा भरकर संसार को वितरित करती है, परन्तु वही मदिरा ओस के रूप में प्रातःकाल कलियों पर पड़ी हुई दिखाई देती है। इतने विचित्र परिवर्तन कैसे होते हैं और इन्हें उत्पन्न करनेवाला कौन है।

स्वच्छ ओसबिंदु रात्रि के आँसू हैं और प्रातः समीर धीरे-धीरे उन आँसुओं को पोंछती है। बाल रवि लाल रंग से अपने शरीर को रँग कर प्रकट होता है और मुस्कराता है। कलियों पर थिरकते हुए भ्रमर गीत गाते हैं। प्रातःकाल होते ही स्वप्न भंग हो जाते हैं, जैसे हार टूटकर बिखर जाता है। यह परिवर्तन लाने वाला कौन है ?

अस्ताचल को ओर गमन करते हुए सूर्य के मार्ग को संध्या गुलाल (लाल रंग) से पोत देती है और उसके स्वागत में दीप जलाती है। वह प्रसन्न होकर सुहागिन वधू की भाँति सूर्य का स्वागत करती हुई हँसती है और उसके नेत्रों की सुनहली आभा चारों ओर छिटक जाती है परन्तु वह सुनहला सौंदर्य थोड़ी देर बाद ही अँधेरे की बाढ़ में बह जाता है। इस प्रकार सौंदर्य की उत्पत्ति होती है और उसका विनाश भी हो जाता है। क्या यही संसार का उत्थान-पतन है ?

किसी व्यथा-पीड़ित व्यक्ति की चितवन ही इस सृष्टि में होने वाली हलचल का कारण है। इसके दीर्घ उच्छ्वास से ही सृष्टि में संगीत उत्पन्न हुआ। उसका दुख ही प्रलय बनकर आता है और सृष्टि उसी में विलीन हो जाती है। जहाँ उत्पत्ति है, वहीं विनाश भी छिपा है और विनाश से सृष्टि उत्पन्न होती है। इस संसार के सूत्र में दुख और सुख, जय और पराजय दोनों ही गुँथे हुए हैं।

गीत—१७ (रजत रश्मियों की छाया में)

शब्दार्थ—धूमिल—धुँधला। निदाघ—ग्रीष्म ऋतु। संसृति—सृष्टि। पाहुन—अतिथि। मूक पथिक—सूर्य-चंद्र। विनिमय—आदान-प्रदान। मधु—बसंत। उर्वर— उपजाऊ।

भावार्थ—कवयित्री का कथन है कि वह अनेक प्रकार से ईश्वर का दर्शन प्राप्त करती है। कभी चाँदी के समान शुभ्र किरणों के बीच में व धुँधले बादल के रूप में दर्शन देता है और उसके दर्शनमात्र से कवयित्री के ग्रीष्म की भाँति जलते हुए, हृदय में करुणा की धारा प्रवाहित हो जाती है। वह कहती है उस बादल में ही जीवन का रहस्य छिपा है। वही एक ऐसा तार है जिससे अनेक स्वर उत्पन्न होते हैं और उसी ने सारी सृष्टि को एक नियम के बंधन में बाँध रक्खा है। वही कवि की भाँति इस शून्य सृष्टि में अनेक भाव उत्पन्न करता है।

वह अतिथि की भाँति मेरे हृदय में प्रविष्ट हो जाता है और कहता है, तू अपनी कृपणता त्याग दे अर्थात् तू अपने हृदय को उदार बना। फिर वही मेरी आँखों से प्रकट होकर इस भिक्षुक संसार को अनेक निधियाँ लुटा देता है। (ईश्वर की कृपा से ही कवयित्री उदार बनती है और संसार को अपना असीम प्रेम दान करती है।)

यह संसार कितना विचित्र है। अनेक पथिक (सूर्य-चन्द्र आदि) चुपचाप आते और चले जाते हैं। यहाँ के प्राणी एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित हैं। क्या यह इस बात का संकेत नहीं है कि बिना उसकी कृपा के पारस्परिक आदान-प्रदान सम्भव नहीं है।

यह संसार मृगमरीचिका के समान है और मैं प्यासे की भाँति सुख की मृगमरीचिका के पीछे दौड़ रही हूँ। सुख की भावना हृदय को इस प्रकार ढँक लेती है कि मैं सोचने लगती हूँ कि मैं बसंत के समान सदैव प्रफुल्लित रहूँगी और मुझे पतझड़ का अनुभव ही न होगा।

जब मुझे दुख का अनुभव होता है, तो मेरी आँखों से अश्रुओं के झरने बहने लगते हैं और उनसे मेरा जीवन अधिक उर्वर बन जाता है (अर्थात् जीवन में गम्भीरता आती है) दुख के कारण ही मेरे क्षुद्र हृदय में असीम सृष्टि व्याप्त हो जाती है।

विशेष—कवयित्री ने सर्वत्र पीड़ा और दुख को सुख से श्रेष्ठ बताया है। ईश्वर के दर्शन से उसके हृदय में सच्ची पीड़ा उत्पन्न होती है और उसी से उसका हृदय बलवान बनता है।

गीत—१८ (चिर तृप्ति कामनाओं का)

शब्दार्थ—विरक्ति–उदासीनता। विभूति—राख। मिस–बहाने। मुकुरता—पारदर्शित। पुलिन—किनारा। विधुर—वियोगी।

भावार्थ—यदि हमारी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, तो जीवन व्यर्थ हो जाता है। जिस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा हो, यदि वह मिल जाय तो उसके प्रति उदासीनता हो जाती है। बादलों की पूर्णता और महानता इसी में है कि वे समस्त जल वितरित करके खाली हो जायँ। सुख वहाँ पर समाप्त हो जाता है, जहाँ मन मधुपान से विरक्त हो जाता है।

जलने का अन्त क्या है ? जलने के बाद ही ठण्डी राख उत्पन्न होती है। इसी प्रकार अत्यधिक कष्ट सहन करने तथा दुख उठाने के बाद सुख स्थायी हो जाता है क्योंकि वही पीड़ा तथा कष्ट सुख में परिवर्तित हो जाते हैं। अत: मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे तृप्ति का एक कण भी इस जीवन में न मिले। मैं चाहती हूँ मेरी इन आँखों की प्यास कभी न बुझे और इनसे सदैव अश्रुओं की धारा बहती रहे।

दुख के पर्दे में छिपे हुए, तुम मेरे हृदय में निवास करो (अर्थात् दुख में ही मैं तुम्हारा दर्शन करूँ)। मैं इस सृष्टि के कण-कण में तुम्हें खोजती हुई उनसे परिचित हो जाऊँ। तुम मेरी आँखों की शुभ्रता एवं कालिमा बनो अर्थात् तुम मेरी आँख बनो और तुम्हारे द्वारा सबको देखूँ परन्तु तुमको न देख पाऊँ (मनुष्य अपनी आँखों द्वारा वाह्य जगत् को देखता है परन्तु अपनी आँखों को नहीं देख पाता)।

मेरा जीवन एक सरिता की भाँति प्रवाहित होता रहे जिसके संयोग और वियोग दोनों किनारे हों। प्रतिक्षण मैं उन दोनों किनारों—संयोग और वियोग—का आलिंगन करती रहूँ (अर्थात् सुख और दुख दोनों का मुझे अनुभव होता रहे।) तुम क्षितिज रेखा के समान सदैव मेरे निकट दिखाई दो परन्तु तुमको पाने के सारे प्रयत्न निष्फल हो जायँ।

मेरा मन द्रुतगति से उड़नेवाले पक्षी के समान है परन्तु तुम सदैव अनन्त आकाश की भाँति अगम्य रहो जिससे मैं तुम्हारा आदि-अन्त न जान सकूँ। सारा जीवन साधना करते ही बीत जाय परन्तु उस अनन्त आकाश का एक कोना भी न पार कर सकूँ। मैं सदैव तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँ। मैं एक विरही पथिक के समान तुम्हारे प्रेम के मार्ग में चल पड़ूँ। मेरी गति धीमी हो और मेरे उस प्रेम-मार्ग का कभी अन्त न हो।

तुम प्रभात के सूर्य की भाँति प्रकाशवान हो और मैं वियोगिनी रात्रि हूँ। मेरा प्रतिक्षण वियोग में रोते हुए बीते और ज्योंही प्रियतम से मिलने का समय आवे, मेरा अन्त हो जाय। मधुर मिलन के क्षणों में भी मुझे पीड़ा का अनुभव हो। वियोग में भी मेरा हृदय पुलकित होता रहे और अधरों पर मुस्कान बनी रहे।

मैं सदैव यह समझूँ कि तुम्हें पाना ही, तुमको खो देना है और तुम्हें खो देना, तुमको पाना है। मेरे जीवन में सदैव अतृप्ति बनी रहे और अपने को मिटा देना ही मेरी सबसे बड़ी इच्छा हो। मेरी रजत मुस्कानरूपी डोर में दुख के मोती (आँसू) गुँथे हों और मेरे जीवन-लक्ष्य-रूपी-क्षितिज के प्रकाश और अंधकार दोनों, दो किनारे हों।

विशेष——इस गीत में महादेवी वर्मा के जीवन-दर्शन का परिचय हमें मिलता है। उन्हें सुख की अपेक्षा दुख ही श्रेष्ठ जँचता है। वे दुख को साधना समझती हैं, अतः वे दुख को ही अपनाना अपने जीवन का चरम लक्ष्य समझती हैं। दुख और कष्ट-सहन से उनकी शक्ति बढ़ी है और उन्होंने इनका वास्तविक मूल्य समझा है। यही कारण है कि उनके गीतों में 'पलायनवाद' का चिन्ह तक नहीं दिखाई देता।

गीत १६ (कुमुद दल से वेदना के दाग को)

शब्दार्थ—अनिल—वायु। नैश—रात का। तड़ित—बिजली। अवनि-अम्बर—पृथ्वी और आकाश। पुंज—पहाड़। ज्योत्स्ना—चाँदनी। रजत पारावार—चाँदी सा समुद्र। सुरभि—सुगंध। मुकुल—कलियाँ। यवनिका—पर्दा।

भावार्थ—कोकाबेली के फूल की पंखुड़ियों पर लगे हुए वेदना के दाग को जब सूर्य की किरणें अपने आँसुओं से पोंछती हैं; (कुमुद के फूल को चंद्रमा के वियोग में दुख होता है, उसे 'वेदना

का दाग' कहा गया है)। चलती वायु के स्पर्श से जब प्रातः काल के समय तारे चौंक पड़ते हैं (प्रातः काल के समय तारों का झिलमिलाना, उनका चौंकना और चकित होना बताया गया है) तब संगीत के स्वरों में मुझे कोई बुलाता है। वह कौन व्यक्ति है ?

रात्रि के घने-अंधकार में, जब दुख के समान काली घटा आकाश को छा लेती है और जब चारों ओर जुगुनू इधर-उधर बिखर जाते हैं, मानो सुनहले आँसुओं का हार टूटकर बिखर गया हो, तब बिजली के रूप चमक कर जो अपने नेत्र बन्द कर लेता है, वह कौन है ?

पृथ्वी और आकाश मानो सीप के दो टुकड़े हैं और उनके बीच में समुद्र मोती की भाँति कम्पित है। (यह उद्‌भावना नवीन, मौलिक तथा अनूठी है) चाँदनी के रुपहले समुद्र में कोमल हिम पर्वत के समान बादल तैरते हैं। ऐसे समय में सुगन्धि के झकोरों के रूप में मुझे थपकियाँ देकर जो सुलाता है, वह कौन है ?

प्रातःकाल के समय गुलाब के कपोलों पर जब ओसकण नक्षत्र की भाँति चमकते हैं और सूखते हैं, और जब सुनहली किरणों की धारा में कलियाँ स्नान करके, ओस की बूँदों का अर्घ्य देती हैं, उस समय स्वप्न की नाट्यशाला पर पर्दा डालकर (अर्थात् नींद के आलस्य को दूर करके) जो मेरे नेत्र खोलता है, वह कौन है ?

विशेष—यह गीत छायावादी कविता का सुन्दर उदाहरण है। प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादानों को देखकर कवयित्री को किसी महान सत्ता का आभास मिलता है। वह उस शक्ति को पूर्ण-रूप से पहचानना चाहती है। गीत में कई उद्‌भावनायें जैसे अनिल के निश्वासों के स्पर्श से तारों का चकित होना; अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में सागर का मोती के समान कम्पित

होना आदि अनूठी और मौलिक हैं इनसे कवयित्री की सबल कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है।

गीत—२० (किसी नक्षत्र लोक से टूट)

शब्दार्थ—शतदल—कमल। निर्मम—निष्ठुर। दोलों—भूले। वारिद घोस—बादलों का गर्जन। वीचि विलास—लहरों का चलना। दुस्तर—कठिन। अभिसार—मिलने के लिए संकेत-स्थल पर जाना।

भावार्थ—किसी तारक प्रदेश से जो ओस की बूँद विश्वरूपी कमल पर अनजान में लुढ़क पड़ी, उसका रूप मोती की भाँति तरल है। वह स्वयं नहीं जानती कि उसे यह जीवन कैसे प्राप्त हुआ और न वह अपना नाम ही जानती है। तब वह अपना परिचय कैसे दे ? (सम्भवत: यहाँ ओस की बूँद को आत्मा का प्रतीक माना गया है। आत्मा भी संसार में आकर अपने को नहीं जान पाती।)

जब किसी निष्ठुर के हाथों वीणा के तारों पर आघात होता है, उस समय उससे उत्पन्न स्वर वायु के साथ उड़कर दूर-दूर पहुँच जाता है। ऐसे स्वर की उत्पत्ति ही विरह से हुई। वह मिलन का गीत कैसे गा सकता है। (वास्तव में जग के निष्ठुर आघातों को सहकर ही कवयित्री के मन में व्यथा उत्पन्न हुई और वह व्यथा-काव्य की जननी है। अत: उसके काव्य में विरह का स्वर ही प्रबल है।)

अबोध शिशु की भाँति जो आँसू पलकरूपी भूले में भूलकर कपोलों पर लुढ़क पड़ा और थोड़ी देर पश्चात् जो सूखगया उसका आदि और अंत केवल एक निश्वास में ही छिपा है। वह आँसू अपना इतिहास कहने में असमर्थ है अर्थात् उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कवयित्री अपने हृदय की असीम व्यथा को गुप्त रखना चाहती है। उसका विश्लेषण करना उसका अभीष्ट नहीं)।

बादल गरजता है और सारे संसार को जगाकर स्वयं चुप हो जाता है। उसकी ध्वनि पृथ्वी से टकरा कर असहाय की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान तक दौड़ती चली जाती है। वह स्वयं नहीं जानती कि वह किधर जा रही है, फिर वह अपना परिचय कैसे दे ?

समुद्र में उठने और गिरनेवाली असंख्य तरंगें अपना परिचय सिंधु को कैसे दे सकती हैं। (अर्थात् तरंगों का जन्म सिंधु से ही होता है, उनका अलग अस्तित्व ही नहीं; अत: उनका परिचय नहीं दिया जा सकता।) मेरे प्राण पानी के बुलबुलों के सदृश क्षुद्र हैं। उसकी उत्पत्ति तुम्हीं (ब्रह्म) से हुई और वह तुम्हीं में विलीन हो जाता है। फिर तुम्हारी याद पाने (अर्थात् तुम्हारा परिचय पाने) का कठिन काम मुझे क्यों दिया गया है ?

मेरा जन्म हुआ परन्तु वही तुमसे वियुक्त होने का कारण बना। (जन्म लेने पर आत्मा परमात्मा से विलग होती है, अत: जन्म को वियोग माना है) मैं तुम्हारा उच्छ्‌वास हूँ जिसे यह सांसारिक समीर यहाँ से चुरा ले आया है। उसी से पीड़ा उत्पन्न हुई और मैंने उसका अनुभव किया। मेरा तुम्हारा संबंध अभिन्न है फिर तुमने मुझे अँधकार से खेलने के लिए क्यों छोड़ दिया। (अर्थात् तुम्हारा अंश होकर भी मैं क्यों अज्ञान में पड़ी हूँ।)

बालक के अस्पष्ट और निरर्थक रुदन में ही माता का अस्तित्व छिपा है अर्थात् बालक इस बात का द्योतक है कि उनकी जन्मदात्री माता अवश्य है। (मनुष्य का होना इस बात का प्रमाण है कि उसका बनाने वाला ईश्वर अवश्य है।) चित्र यद्यपि मूक रहता है परन्तु वह मूक चित्र ही चित्रकार का

परिचय देता है। मेरी आँखों में छिपी हुई आँसू की लड़ी वास्तव में तेरा ही उपहार है।

विशेष—इस गीत में कवयित्री की रहस्यवादी भावना मुखरित हो उठी है। उसने अनेक प्रतीकों की सहायता से आत्मा और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करने की चेष्टा की है। जब आत्मा और ब्रह्म दोनों एक ही तत्व से बने हैं तो उनका अलग-अलग परिचय कैसे दिया जा सकता है।

गीत—२१ (तुहिन के पुलिनों पर छविमान)

शब्दार्थ—तुहिन—ओस। पुलिन—तट। अन्वेषण—खोज। स्पंदन—कंपन। संधान—निशाना। पावस—बरसात। अनल—अग्नि। परमाणु—छोटे से छोटा कण। पवि—बज्र। निमिष—पलक। उर्मि—लहर। कुहू—रात। वायुमान—शरीरधारी। रौरव—नर्क। मधु आसव—मदिरा।

भावार्थ—इस संसार में मनुष्य क्यों आया ? इस जीवन का उद्देश्य क्या है ? बर्फ के तट पर जिस प्रकार बसन्त के दिनों का प्रकाश भला प्रतीत होता है या जैसे स्वप्न में दिखाई पड़ने वाली वेदना से पीड़ित सुन्दर प्रतिमा (स्त्री) आकर्षक लगती है उसी प्रकार यह जीवन भी मुग्धकारी है। इस जीवन में जागरण और स्वप्न दोनों का अनुभव होता है। (जागरण इसलिए कि मनुष्य नाना प्रकार के कार्य करता है और स्वप्न इसलिए कि यह जीवन नश्वर है) जीवन के अंचल में एक भूला हुआ खजाना क्या है अर्थात् मनुष्य को यह स्मरण रहता है कि वह स्वर्गीय प्राणी है और यद्यपि वह मायावश अपनी पूर्व-स्थिति को भूल जाता है परन्तु वह रहता उसी का अंश है। इस जीवन का लक्ष्य क्या है और मनुष्य किसकी खोज में निरंतर तल्लीन है।

यह जीवन धूलकण के समान क्षुद्र है परन्तु आकाश के समान अनन्त आशाएँ मनुष्य बाँधता है; जीवन बिंदु के सदृश छोटा है

परन्तु उसमें दुख का विस्तृत सागर छिपा है; जीवन एक साधारण हलचल है परन्तु मनुष्य कितने ही स्वप्न देखता है, यहाँ पग-पग पर असफलता मिलती है और प्रत्येक साँस में दुख की आग सी निकलती है। मनुष्य की कल्पनाओं और महत्वाकांक्षाओं का अंत नहीं। इस जीवन में शाप और वरदान दोनों मिले हुए हैं।

पता नहीं किसने इस पृथ्वी के परमाणुओं से मनुष्य जैसे विचित्र जीव की रचना की। इसके हृदय में बसंत का सौन्दर्य भरा है; आँखों में आँसू और अधरों पर हास्य सुशोभित है; वर्षा ऋतु का समस्त प्यार इस छोटे से मनुष्य के रूप में अवतरित हुआ है। नील नभ के समान अनन्त मनुष्य का हृदय है। अग्नि के दो-चार धूमिल कणों, पानी की लहरों; मन्द समीर के झोंकों और पृथ्वी के कणों से इस मनुष्य की रचना की गई है। (इस पद में 'क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंचतत्व यह रचित शरीरा', वाले सिद्धांत का प्रतिपादन अत्यंत काव्यात्मक भाषा में किया गया है।)

यह जीवन भी कितना विचित्र है। मनुष्य की आँखों में ग्रीष्म के बड़े-बड़े दिन और वर्षा की भयंकर काली रातें सो रही हैं (अर्थात् मानव-जीवन में सुख और दुख दोनों व्याप्त हैं)। उसमें अमृत की मिठास, मदिरा की मस्ती है और कभी न बुझने वाली दुखों की आग है। मनुष्य के हृदय में वज्र की कठोरता और मक्खन-सी कोमलता विद्यमान है। जीवन में पलक के समान गतिशीलता, निर्झर का संगीत, आँसुओं की लहर, सुख का समीर, रात का अंधकार और बसंत का आशाप्रद प्रभात भी मौजूद है।

मानव-जीवन में दैवी और दानवी, दोनों प्रकार की विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। हृदय में मिट्टी की क्षुद्रता और आकाश की गंभीरता दोनों ही व्याप्त हैं; एक ओर स्वर्ग की झलक और

दूसरी ओर नर्क का अंधकार देखने को मिलता है; एक ओर यदि हिम की शीतलता है तो दूसरी ओर बड़वाग्नि की जलन भी है। यह संसार कितना विचित्र है। यह मनुष्य राजकुमार की भाँति सारी सृष्टि का सौन्दर्य लेकर उत्पन्न हुआ है परन्तु एक दिन मिट कर धूल में मिल जाता है।

इतना विस्मयकारी जीवन नष्ट भी हो जाता है। पता नहीं कौन मृत्यु के प्याले में जीवनरूपी मदिरा भरकर विनाश के अधरों से लगा कर पिला देता है। (अर्थात् कौन इस जीवन का संहार करता है)। क्षण-मात्र में ही यह प्राण नष्ट हो जाते हैं परन्तु यह विनाश अन्त नहीं है। नष्ट हुए प्राण गुनगुनाते हैं—'अमरत्व जीवन का अन्त है और मृत्यु जीवन का विकास है।' मृत्यु के अभाव में जीवन का महत्व ही क्या है।

मेरे जीवन का लक्ष्य बहुत दूर है। एक बार जीवन प्राप्त करके लक्ष्य की ओर केवल एक कदम ही चला जा सकता है। परिवर्तन की डोर में बँधी हुई मैं, ध्येय की ओर खिंची जा रही हूँ। रात्रि ज्यों-ज्यों गहरी होती जाती है त्यों-त्यों उसके गर्भ में प्रभात बढ़ता जाता है अर्थात् रात्रि के अंत में प्रभात का आना निश्चित है। आकाश से बरसने वाले काले बादल जल-कणों के रूप में गिर कर अपना जीवन सफल करते हैं। (कवयित्री परिवर्तन को विकास का चिन्ह मानती है।)

दीपक अपने तेल को जला कर प्रकाश फैलाता है। मिट्टी में अपने को गला कर एक बीज असंख्य रूप धारण करता है। सृष्टि का यह शाश्वत नियम है कि एक बार मिटने से सौ वरदान मिलते हैं। पृथ्वी के कणों का प्रयत्न कभी निष्फल नहीं हुआ। पराजय और असफलता में ही जय और सफलता निहित है।

विशेष—गीत के पूर्वांश में जीवन की विचित्रता अंकित की गई है। भारतीय दर्शन के अनुसार पंच-तत्वों से जीवन की रचना

हुई। इसी तथ्य का प्रतिपादन कवयित्री ने काव्यात्मक ढंग से किया है। वह इस बात को स्वीकार करती है कि जीवन नश्वर है परन्तु वह मृत्यु को विकास का चिन्ह मानती है। मृत्यु द्वारा ही जीवन का महत्व बढ़ता है, इस बात को उसने कई गीतों में दुहराया है।

गीत—२२ (कह दे माँ क्या अब देखूँ)

शब्दार्थ—यौवन-सुषमा—युवावस्था का सौन्दर्य। हिमहीरक—ओस बिन्दु। संतापों—दुखों। मकरन्द पगी—पराग से सनी हुई। मधुपरियाँ—भ्रमप, तितलियाँ। लज्जा की करुणा—स्त्री की दुर्दशा। अजस्र—लगातार।

भावार्थ—कवयित्री के सामने एक विकट समस्या है। वह अपनी कविता द्वारा दीन-दुखियों की दुरवस्था का चित्र खींचे या वैभव के चित्र। इसका निर्णय वह माँ सरस्वती पर छोड़ देती है और कहती है—

माँ, मैं किस ओर ध्यान दूँ? एक ओर उद्यान में कलियाँ खिली हैं, दूसरी ओर भूख-प्यास से जर्जर मनुष्य खड़े हैं, एक ओर यौवन का आनन्द है और दूसरी ओर वृद्धावस्था का दुख है। मैं किसे देखूँ ?

नीले कमलों पर पड़े हुए ओस बिन्दु हँस रहे हैं परन्तु दूसरी ओर दुख से मुरझाई हुई आँखों में आँसू उमड़ रहे हैं। मैं किसकी ओर ध्यान दूँ ?

सुगंधि का पान करते हुए मन्थर गति से समीर बह रहा है। उसका आनन्द लूँ या किसी दुख-पीड़ित व्यक्ति की ठंडी आहों को सुनकर उसकी ओर ध्यान दूँ और उसके दुख में हाथ बटाऊँ ?

एक ओर बसन्त है, चारों ओर खिले हुए पुष्पों से पराग और सुगंधि बरस रही है। इस दृश्य का आनन्द लूँ या दुख से झुलसे हुए जीवन के पतझर पर ध्यान दूँ ?

फूलों के पराग में सनी हुई तितलियों को ढूँढूँ या हृदयरूपी पिंजड़े में बन्द तरसते हुए जीवनरूपी शुक को देखूँ अर्थात् व्यथा-पीड़ित जीवन की ओर ध्यान दूँ ?

असंख्य खिली हुई कलियों के बीच में छिपी हुई लताओं के सौन्दर्य का मैं आनन्द लूँ या दुर्दिन की मारी किसी लज्जशीला नारी की करुण कथा सुनूँ ?

नई पत्तियों के झूले में मैं भ्रमरों के बच्चों को झुलाऊँ या फूलों के समान कोमल मृत शिशुओं को देखकर मन ही मन दुखी होऊँ ?

ऐ माँ ! तेरी इस सृष्टि में कितना वैभव भरा पड़ा है। मैं उसको देखकर चित्त को प्रसन्न करूँ या इस संसार में निरंतर बुझते हुए प्राणियों को देखूँ ?

बहती हुई जलधारा के कल-कल रव में पक्षियों का कलरव मिल जाता है। इस सुन्दर दृश्य को देखूँ अथवा बन्द पड़ी हुई वीणा या दुखी हृदयों की ओर ध्यान दूँ ?

निद्रा-निमीलित नेत्रों के साथ खेलती हुई चाँदी-सी किरणों को देखूँ या वियोग में दुखी अपलक नेत्रों में चिंता का नृत्य देखूँ ?

तुम्हारे राज्य में सर्वत्र हास्य और सुख का राज्य है; इस लोक में रुदन के सिवा कुछ भी नहीं। मैं तुम्हारा यह वैभव देखूँ या दुखी प्राणियों का दिल दहलानेवाला रुदन सुनूँ ?

विशेष—इस गीत में कवयित्री ने कविता की परिभाषा दी है। कविता का उद्देश्य दुखी और संतप्त हृदयों को शांति पहुँचाना है। वैभव विलास में निमग्न कवि, यदि इस जीवन से दूर रहकर किसी कल्पना-लोक का चित्र खींचता है तो वह सच्चा कवि कहलाने का अधिकारी नहीं है। महादेवी वर्मा इस धरा से दूर

कल्पना के पंखों के सहारे उड़ने में कविता की सार्थकता नहीं समझतीं।

गीत—२३ (दिया क्यों जीवन का वरदान)

शब्दार्थ—उन्मीलन—खिलना, जागना। किसलय—फूल की पंखुड़ियाँ। सिकता—बालू। बात विकम्पित—वायु द्वारा हिलाया हुआ।

भावार्थ—ऐ देव! तुमने मुझे यह जीवन क्यों प्रदान किया? यह जीवन तो कष्टों का आगार है। अतीत की स्मृति सदैव पीड़ा पहुँचाया करती है और सोई हुई व्यथायें जाग उठती हैं। इस संसार की निष्ठुरता का स्वाद लेकर विभिन्न कल्पनारूपी परियाँ मुरझा गईं अर्थात् कल्पनाओं का ठेस पहुँची।

जीवन में भीषण झंझावात आते हैं परन्तु साथ ही मलय समीर भी कलियों का पराग बिखेरता हुआ मधुर संगीत की सृष्टि करता है अर्थात् एक ओर यदि विपत्तियाँ और बाधायें हैं तो दूसरी ओर सुख भी है।

फिर भी जीवन नश्वर है। जिस प्रकार बादलों के परदे पर इंद्रधनुष उभर कर विलीन हो जाता है या फूलों में पड़े हुए ओस-कण नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार जीवन भी नष्ट हो जाता है और यह विनाश प्रतिपल होता रहता है।

जैसे बालू में खिची हुई रेखा मिट जाती है या वायु के झकोरों से दीप बुझ जाता है या कपोलों पर बहती हुई अश्रु-धारा नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार इस जीवन का भी अन्त हो जाता है।

गीत—२४ (नव मेघों को रोका था)

शब्दार्थ—अविरल—घने। मन बालशिखी—मन रूपी मयूर। प्रतिबिम्बित—परछाई के रूप में दिखाई देने वाले; विनिमय—अदला

बदली । ओरें—किनारे । निस्पन्द—शांत । स्मित—मुस्कराहट । साधों—कामनाओं । निर्वासित—निकाला हुआ । अस्फुट मर्मर—पत्तियों की खड़खड़ाहट । मुख जोहना—राह देखना ।

भावार्थ—जब पपीहे का हृदय, आकाश में नए मेघों की छाया देखकर बालकों की भांति द्रवित हो रहा था, मचल रहा था, तो पपीहे की इस बालोचित प्रवृत्ति पर मेरे हृदय में करुणा उत्पन्न होती थी और मेरी आंखों में वसे ही आंसू बराबर आ जाते थे जैसे सावन में घटायें घिर आती हों । ऐसा लगता था जैसे कि सूर्य की किरणें जो सुनहली हैं तितली के रंगों को चुरा रही हों । ऐसी स्थिति में मेरी पलकें तितली पर छाया करने के लिए व्याकुल हो उठती थीं ।

(चातक की पीड़ा को कवयित्री अपनी ही पीड़ा समझती है । चातक की पीड़ा देखकर उसके भी आँसू निकल आते हैं । तितली के मनोरम रंगों को सूर्य की किरणें लिए ले रही हैं अतः उस कोमल जीव को शांति पहुँचाने के उद्देश्य से कवयित्री अपनी पलकों की छाया उस पर करना चाहती है । कल्पना बड़ी मार्मिक है ।)

रात्रि गहरे निश्वास ले रही है और इस गति के कारण द्रवित होकर आकाश में तारे निकल आये हैं । इन तारों के आसुओं को मेरा मन सम्हाल-सम्हाल कर रख रहा है । लज्जा जो नवीन है, कलियों से लाली माँगकर आकाश में भर देती है । मेरी मृदु पुलकावली के कारण ही जीवनरूपी प्याली भरकर छलकने लगती है । भाव यह है कि प्रातःकाल में संसार में नवजीवन का संचार हो जाता है तथा आनन्द और उत्साह फैल जाता है ।

(रात्रि के समय तो कवयित्री भी आंसू सँजोती रहती है । प्रातःकाल के द्वारा उसके जीवन में आह्लाद तथा स्फूर्ति आ जाती है) ।

जिस समय आकाश घने मेघों से छा जाता है (बोझ के कारण जैसे नभमण्डल झुका-सा पड़ता है) उस समय मेरा मन अज्ञात वेदनाओं से भर जाता है। बादल जोरों से गरज रहे हैं, बिजली बेसुध होकर नाच रही है। जैसे बिजली के नृत्य पर बादल ताल दे रहे हों। उस समय बाल-मोरनी की भाँति मेरा मन संगीत के मधुर स्वरों से भर जाता है। जैसे मोरनी बादलों की छटा से मोहित हो जाती है वैसे ही मेरा मनमयूर संगीतमय हो जाता है।

(कवयित्री के हृदय की वेदना और संगीत आकाश में घने छाये बादलों तथा बारबार चमकती बिजली के कारण घनीभूत हो जाते हैं)।

जब संसार की वास्तविकता—उसकी निष्ठुरता और दुख—से मेरा परिचय हुआ, तो मेरी मनोदशा विचित्र थी। मेरा मन करुणा से भर गया था। करुणा के कारण मेरा मन मिश्री के समान घुल जाता था और आँसुओं की धारा बहने लगती थी। मेरे मनरूपी शीशे पर सबका दुख-सुख ऐसा लगता था जैसे कि मेरा ही दुख-सुख हो। एक समान प्रभाव सब के दुख-सुख का पड़ता था। दूसरों के दुख-सुख को मैं अपना ही दुख सुख समझती थी।

(पीड़ा के कारण कवयित्री का मन पिघल जाता था। समस्त प्राणियों के दुख-सुख को वह अपना ही दुख-सुख समझती थी।

काँटा चुभा किसी के तड़पते हैं हम 'अमीर'
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।

मैं स्वयं अपनी लघुता से परिचित थी। और पीड़ा तथा करुणा असीम होकर मुझमें समाई थी। मेरी लघुता से इन सीमाहीनों (करुणा-पीड़ा) का परिचय हुआ था। यह करुणा

और पीड़ा बदले में मुझसे मेरे आँसू माँगती है। अतः प्रत्येक पल आँसुओं का विनिमय होता रहता था। मेरी पीड़ा और करुणा आँसुओं के रूप में परिवर्तित हो जाती थी। पीड़ा जब आँसुओं को धारण करके सामने आती थी तो ऐसा लगता था कि मानो दोनों शिशु हैं और क्रीड़ा-मग्न होकर बदल गये हों। मेरा मन आश्चर्य मान रहा था, अर्थात् आश्चर्य से भर जाता था। संसार मेरी पीड़ा को माँग रहा था।

(पीड़ा के कारण कवयित्री के आँसू निकल पड़ते थे। उसे इससे आश्चर्य होता है और संसार को कष्ट होता था)।

संसार-रूपी चित्रपटी की दो कोरें थीं—अर्थात् एक ओर विस्मय और दूसरी ओर पीड़ा। सृष्टिकर्त्ता का वैभव मेरे दुख के बिना सूना था क्योंकि कोई इस दुख का अनुभव करनेवाला न था और मेरी पीड़ा के बिना उसकी सुषमा फीकी रहती क्योंकि मेरे बिना पीड़ा का अनुभव करनेवाला न होता। न जाने किसने मेरे अनजाने में आकर मेरा भोलापन चुरा लिया, उस सरलता को हर लिया तथा उस भूले हुए सपने को फिर किसी ने जगा कर चौंका दिया।

(पीड़ा तथा विस्मय इस मन तथा संसार के दो ओर-छोर हैं। इनसे तथा इनसे प्रभावित स्वप्नों से मेरा जीवन अनुप्राणित है)।

यह करुणा की घटायें उमड़-उमड़कर कण-कण में नवजीवन बरसा जाती हैं। मेरे मन के लघु-बन्धन में वे करुणा की घटायें शान्त तथा निस्पन्द भाव से पड़ी सो रही हैं। इस करुणा के अस्तित्व के फलस्वरूप मेरे नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। मेरा लघु सुख मेरे ओठों पर मुस्कराहट के रूप में नाच रहा है। तथा मेरा दुख आँसुओं का रूप लेकर अभिनय कर रहा है।

(कवयित्री का हृदय करुणा से परिपूर्ण है। उसका सुख उसके ओठों के हास्य तथा उसका दुख उसकी आँखों के आँसू के रूप में प्रकट है)।

मेरी इच्छायें, साधें जैसे मेरी लघु निश्वासों के रूप में कम्पित हो उठती हों। मेरे सीमित, छोटे से मन में मेरा सपनों का स्पन्दन हो रहा है। (कवयित्री का स्वप्न, उसकी आकांक्षा अपने प्रियतम से मिलने की है।) मेरा वैभव अपार है। मैं परमात्मा का अंश हूँ अत: महान हूँ। मेरा वैभव स्वयं मुझसे अपरिचित है। मेरा जीवनरूपी समुद्र बालू के कणों में परिवर्तित हो गया है।

(कवयित्री कहती हैं कि मेरी अभिलाषायें (प्रियतम से मिलन की) मेरी निश्वासों से ही प्रकट हैं। जग मुझसे अपरिचित है। और मेरा जीवन निस्सार-सा है)।

प्रभात नित्य अपनी हँसी बिखेरता हुआ आता है। संध्या दीपक जलाती हुई आती है। दिन सोना बरसाता हुआ ढलता है। रात में ओस की बूँदें उसकी मुस्कराहट के रूप में आती हैं। मुझे तो यही प्रतीत होता है कि निर्झर बहते समय अपनी कलकल ध्वनि से मेरे अनन्त पथ में सदा संगीत प्रवाहित करते रहते हैं।

(कवयित्री को प्रकृति के समस्त अवयव वैभव तथा जीवन से पूर्ण लगते हैं)।

मेरे निश्वासों को गिनते-गिनते जैसे स्वयं आकाश की पलकें झप जाती हैं। तारों का छिप जाना ही जैसे आकाश की निद्रा का आ जाना है। मेरे विरक्त हृदयरूपी अंचल में सुगंधयुक्त समीर भर जाती है। मेरे चिर सहचर चन्द्र तथा तारे आदि मार्ग में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु तो भी न जाने क्यों मैं

एकाकीपन का अनुभव करती हूँ और मेरा मन अपने सूनेपन पर सदा रोया करता है।

(प्रकृति का सौन्दर्य उसे मोहने का प्रयत्न करता है। किन्तु तो भी चिर-परिचित प्रकृति के अवयवों के होते भी कवयित्री अकेलेपन का अनुभव करती है)।

संसार के कण-कण में बिखरे अपने सौन्दर्य तथा वैभव को मैं कभी पहिचान न सकी। मुझे अपनी लघुता का आभास है। उस लघुता की अकथ कहानी से मेरा परिचय है। अपने नन्हें-से प्राणों के आकाश में मैं अपने प्रियतम को ढूँढ़ रही हूँ। मेरा मन हीरे की प्याली में बालू मांगता है अर्थात् पीड़ा चाहता है।

विश्व के समस्त वैभव का मर्म मैं नहीं समझ सकी। मैं अंधकार में प्रकाश की खोज कर रही हूँ। मेरा हृदय पीड़ा मांगता है। इसी के द्वारा मुझे अपने प्रियतम की प्राप्ति होगी।

गीत—२५ (प्राणों के अंतिम पाहुन)

शब्दार्थ—वारिद—बादल। श्रान्त—थका। अज्ञात लोक—आकाश। छायातन—छाया के शरीर वाले। निस्पन्द—धड़कन।

भावार्थ—हे प्राणों के अन्तिम अतिथि (ब्रह्म) तुम ऐसे बादल बनकर यहां आना जो चांदनी में धुला हुआ हो किन्तु अञ्जन के समान फिर भी काला हो तथा जो बिजली की मुस्कान बिछाता हो और जो सुगंध-वायु के पंखों पर उड़कर आकाश में घिर कर छा जाता हो। तुम मेरे हृदय में घने बादलों के रूप में प्रकट होना।

जैसे थके हुए यात्री पर छाया-रूपी रात्रि अपनी शान्ति तथा शीतलता छा देती है और उसकी बोझल पलकों पर निद्रा रूपी

मधु ढुलकाती है उसी प्रकार हे प्रियतम ! तुम मुझमें भी अचेनता भर दो। एक नशा-सा, एक खुमारी-सी तुम मेरे हृदय में बस कर पैदा कर दो।

जैसे किरणें आकाश में छिप-छिपकर उतर आती हों। प्रभात के समय कलियाँ खिल जाती हैं, जैसे किरणें उनके हृदय को खोल कर मधु पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहती हों। हे छाया के समान शरीरवाले ! तुम ऐसे ही छिप कर मेरे हृदय में आना और बस जाना, चुपके से छिप जाना।

मुझमें तुम्हें मन-वाञ्छित वस्तुयें मिलेंगी। मेरी पुतलियों में करुणा का अनन्त मधु तथा सुषमा की लालिमा भरी हुई है। मेरी जीवनरूपी प्याली इनसे लबालब भरी है। उसे पीकर हे प्रियतम ! तुम अपने मन को शीतल करना। मैं पीड़ा से परिपूर्ण प्रेमिका हूँ।

अपने स्पन्दित हृदय के साथ जो हिम के समान जड़, नीला तथा शान्त है, तुम आओ। मेरे जीवनरूपी दीपक को उसमें रख कर तुम प्रकाशयुक्त तथा प्राणमय बनाना। तुम्हारी शीतलता पाकर मेरा हृदय भी धीरे-धीरे शीतल हो जायगा। मेरे दीपक की गर्मी तुम्हारी शीतलता से कम हो जायगी, इसकी चिंता मत करो।

करुणा, पीड़ा तथा सुषमा की निधियाँ मैं युगों से संचित कर रही हूँ। तुम अपनी सहानुभूति द्वारा इन सबको मोल ले लेना। इन व्यापार की बातों को अब समाप्त होना चाहिये। (कवयित्री प्रियतम से मिलने को अत्यन्त व्याकुल है)।

यह विश्व अनन्त लय से व्याप्त है। यहाँ पल-पल में मधुमय कम्पन हो रहा है। तुम इसकी स्वर-लहरी में अपने श्रम के कण को धो लो। मेरे सूनेपन को मधु से भर दो। तुम्हारे आने से माधुर्य से मैं परिपूर्ण हो जाऊँगी।

इस संसार में दुख और सुख अनेक अतिथियों की भाँति आते जाते रहते हैं। मेरे जीवन के क्षण-क्षण में असीम कोलाहल व्याप्त हो जाता है। तुम मेरे हृदय में शांति बनकर समा जाओ।

तुम्हारी ही कृपा से दिन में सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है। और इससे संसार में नवजीवन का संचार होता है। तुम एक ऐसे अतिथि हो जिसकी प्रतीक्षा में अगणित नेत्र लगे हुए हैं, प्रत्येक साँस को गिना जा रहा है, इस प्रकार तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है। समस्त संसार तुम्हारी प्रतीक्षा में व्याकुल है।

गीत—२६ (अलि कैसे उनको पाऊँ)

शब्दार्थ—चित्रपटी—चित्रशाला। मानस—मन।

भावार्थ—हे अलि ! मैं प्रियतम को कैसे पाऊँ ? वह आँसू के रूप में मेरे नेत्रों में बहते हैं। ऐसा वह इसलिए करते हैं जिससे मैं उन्हें पलकों के बंधन में न बाँध सकूँ और पछताऊँ।

जैसे बादलों में बिजली चमक कर छिप जाती है वैसे ही उनकी शोभा एक क्षण के लिए आँखों में आकर छिप जाती है। इससे मैं चित्रपटी पर उनके रूप और सौन्दर्य को आंक नहीं पाती।

चन्द्रमा की किरणों में जो उलझी हुई-सी प्रतीत होती हैं उनमें प्रियतम की आभा समाई हुई है। मैं प्रत्येक क्षण खोजती फिरती हूँ और तब भी उन्हें पहचान नहीं पाती।

सागर की लहरें जैसे थपकी के रूप में उसे सुलाने का प्रयत्न करती हों। वह ठीक से जाग ही नहीं रहे हैं तो अपनी करुण कथा उन्हें कैसे सुनाऊँ ?

प्रियतम तारक-बालाओं की अपलक चितवन बनकर इसलिए आते हैं कि अनन्त दूरी के कारण मैं उनकी छाया भी न छू सकूँ और अकुलाऊँ।

वह मेरे मानस-उच्छ्वासों के रूप में आकर छिपते हैं। सांसों के रूप में मैं उनका दर्शन तो करती हूँ पर उन्हें रोक नहीं सकती। श्वास के रूप यदि वह आते हैं तो प्रश्वास के रूप में चले भी जाते हैं। अतः मैं अत्यन्त दुखी हूँ।

वह मेरे मन में स्मृति के रूप में सदा रह कर खटका करते हैं। जैसे वह चाहते हों कि मैं उनकी निष्ठुरता को भूल न पाऊँ। वह चाहते हैं कि मुझे सदा उनका स्मरण बना रहे।

गीत—२७ (प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर)

शब्दार्थ—आविल—धुँधला। पंकित—मैला। फेनिल—फेनेदार। तृषित—प्यासा। नीरज—कमल। सित—सफेद। मीलित—अधखिला। विकसित—खिला हुआ।

भावार्थ—हे प्रिय! मेरे इन नेत्रों का बहता हुआ जल दुख से धुँधला तथा सुख के कारण मैला हो गया है। युगों से अधीर हो कर यह बहता है। जैसे क्षण-मात्र में बुदबुदे विलीन हो जाते हैं वैसे ही वह झागदार जल अपनी अधीरता छिपाये है।

(पीड़ा के कारण नेत्रों से जल प्रवाहित है। इसमें सुखद स्वप्न उत्पन्न होकर शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं।)

इन आँसुओं का जल जीवन-पथ के कठिन धरातल को अपनी गति से सरल और जलयुक्त बनाता है। युगों से प्यासे किनारों को यह शीतलता प्रदान करता है। अश्रु पवित्रता और कोमलता लाते हैं।

इस में यह श्वेत कमल उत्पन्न हुआ। यह अत्यन्त कोमल, सकुचाया तथा खिला हुआ है। सौरभ के समान इसमें मधुर पीड़ा व्याप्त है। ऐसा यह मेरा जीवनरूपी कमल है। (श्वेत कमल=आत्मा)।

इस कमल (आत्मा) में नाम को भी कीचड़ नहीं है। आत्मा निष्कंलक है। इस में जल का एक कण भी नहीं ठहर सकता।

भौंरों की भीर भी इस पर गुंजार नहीं करती। आत्मा पवित्र तथा निष्पाप है। संसार की अपवित्रता तथा बुराई का इस पर असर नहीं पड़ता।

तेरी कृपा से ही यह खिला है। इसका विकसित होना तेरी चितवन से संभव है। तुम्हारी श्वासों से इसका स्पर्श हुआ है। अर्थात् आत्मा परमात्मा का अंश है।

गीत—२८ (धीरे धीरे उतर क्षितिज से)

शब्दार्थ—वलय—घेरा। अवगुण्ठन घूँघट। मुक्ताहल—मोती। अभिराम—सुन्दर। पद्मों—कमलों। किंकणी—घुँघरू। तरंगणि—लहरें। अभिसार—प्रेमी तथा प्रेमिका का प्रेम-मिलन। अभिसारिका—प्रेमिका।

भावार्थ—कवयित्री अपने प्रियतम (ब्रह्म) से मिलने को उत्सुक है क्योंकि बसंत ऋतु में सभी स्त्रियाँ अपने प्रियतम से मिलने को इच्छुक होती हैं। हे बसंत-रजनी! तू धीरे-धीरे क्षितिज से उतर। रात्रि में निकले तारागण जैसे तुम्हारी नई गुंथी हुई चोटी के सदृश हों। प्रकाशयुत चन्द्रमा ही जैसे तुम्हारे शीश में लगा नया पुष्प हो। बादलों के बीच जो श्वेत किरणों का घेरा है वही तुम्हारा घूँघट हो। हे सुन्दर मिलन की रात्रि! तुम अपनी चितवन से सुन्दर मोती बिछा दो।

तुम पुलकती हुई आओ। मैं अपने प्रियतम से मिलना चाहती हूँ। तेरे पैरों के नूपुरों की मर्मर-ध्वनि आती हो। भौंरों से गुञ्जित कमलों की तेरी करधनी हो। तेरे चरणों की गति में उत्साह की तरंगें भरी हुई हों। हे सजनी! तू अपने मृदुहास से चाँदी की धारा बहा दे। हे बसंत-रजनी! पूरा शृंगार करके तू उतर आ।

तेरे रोम-रोम में पुलकित स्वप्न व्याप्त हों। तेरे हाथों की बनी अंजलि में स्मृतियाँ भरी हुई हों। मलयानिल ही तेरा

दुपट्टा हो। तू काली छाया के रूप में फिर तथा विश्व के लिए इस प्रकार संकेतस्थल बन जा। हे बसंत-रजनी, तू सकुचाती हुई आ।

(प्रियतम से प्रेयसि का संसर्ग होने को है अतः बसंत-रजनी से सकुचाते हुए आने को कहा गया है।)

नदी का हृदय (उसका जल बार-बार सिहर-सिहर उठता है (लहरों के रूप में)। पृथ्वी पर अमृत-दान करने को पुष्प खिल जाते हैं। ऐसा लगता है जैसे प्रत्येक पल फिर फिर कर लौटा आता हो। प्रियतम की पग-ध्वनि सुनाई दे रही है अतः यह पृथ्वी शोभायमान है। हे बसंत-रजनी ! तू सिहरती हुई आ।

विशेष—कवयित्री ने बसंत-रजनी का बड़ा मनोरम चित्र खींचा है। बसंत-ऋतु में प्रायः स्त्रियाँ पतियों से मिलने को अधिक उत्कंठित होती हैं। (अत्यन्त स्वाभाविक तथा कोमल भावपूर्ण वर्णन है।)

गीत—२९ (पुलक पुलककर सिहर सिहर तन)

शब्दार्थ—शेफाली—एक पौधा-विशेष। प्रवाल—मूंगा। पाटल—एक पौधा-विशेष। इन्दीवर—नील कमल। वानीर—वेत का वृक्ष। विहाग—एक राग विशेष; उन्मन—व्याकुल।

भावार्थ—आज मेरा हृदय क्यों बार-बार पुलकायमान हो जाता है, शरीर सिहर उठता है तथा नेत्रों में बार-बार आँसू आ जाते हैं ? शेफाली क्यों सकुचाती-लजाती खिल रही है ? मौलश्री के फूल अलस भाव से प्रत्येक डाली पर क्यों खिले हैं ? कुंजों में छाए हुए नये मूँगे, ऐसा लगता है, जैसे काले तथा सफेद तारों से जाली बुन रहे हों। मधुकणों से पूर्ण अलसाई हवा बह रही है, जैसे वह धीरे-धीरे मधुकणों को गिन रही हो। हरसिंगार के फूल पृथ्वी पर झर रहे हैं।

(प्रिय के आगमन के कारण मेरा हृदय आनन्द और आह्लाद से भरा हुआ है। प्रकृति भी प्रसन्न है)।

कोयल की मधुमय बंशी बोल उठी। मधु-मक्खियाँ प्रसन्न होकर भनभनाने लगीं। ऐसा लगता है कि जैसे लाल पाटल का वृक्ष अन्धकार पर रोली बिखेर रहा हो। मानो रात अपने कमल रूपी नेत्रों से सरोवररूपी दर्पण को अपने मृदुल अंक में धारण करके अपने सौंदर्य को देख रही हो।

(प्रकृति भी जैसे मेरे प्रियतम के स्वागत के लिए सज्जित हो गई है)।

तारे आँसू बनकर मेरे हृदय में आते हैं। ऐसा लगता है जैसे पुष्प मेरे हृदय में सेज बिछा रहे हों। वन के कम्पित बेंत के वृक्ष जैसे रह-रह कर करुण गीत सुना रहे हों। (बेंत के वृक्ष से हवा जब होकर गुजरती है तो संगीतमय ध्वनि होती है।) निद्रा बेचैन होकर विचरण कर रही है और अपने स्वप्नों को संचित कर के लौट रही है।

मुझे अपना जीवन जल-कणों से निर्मित जान पड़ता है। ऐसा लगता है कि इन्द्रधनुष में मेरी इच्छायें बसी हुई हैं। संसार ऐसा धूमिल है जैसे सजल घने मेघ। यह विश्व चिर-नूतन-तथा करुणा-युक्त-सा लगता है! हे अतिथि। तुम बिजली के रूप में आओ और मेरी पलकों में समा जाओ।

(कवयित्री प्रियतम के वियोग में तड़प रही है। वह अपने प्रियतम से मिलने को प्रतिक्षण व्याकुल है। उससे मिलना चाहती है)।

गीत—३० (तुम्हें बाँध पाती सपने में)

शब्दार्थ—संसृति—संसार। अजर—जो कभी बूढ़ा न हो (ब्रह्म)। आलोक—प्रकाश।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि हे प्रिय ! यदि मैं तुम्हें सपनों में बाँध पाती तो उस अपने छोटे क्षण में अपने सारे जीवन की प्यास बुझा लेती। अर्थात् मेरी मिलन की इच्छा पूरी हो जाती। मैं वर्षा ऋतु के मेघों के समान उमड़ कर बरस पड़ती। शरद की रात्रि के समान मैं नीरवता से घिर आती ! मैं संसार के समस्त विषाद को, जो मेरे हृदय में समाया है, अपने आँसुओं से धो डालती अर्थात् संसार की पीड़ा को मैं अपने आँसुओं से व्यक्त करती।

मैं अपने मधुर राग से समस्त विश्व को सुला देती। मैं सौरभ के रूप में पृथ्वी के कण-कण में बस जाती। अपने जर्जर जीवन में मैं संसार का क्रंदन हँस-हँसकर भर लेती। और इस प्रकार मैं विश्व की पीड़ा और करुणा को, जो प्रियतम के वियोग के कारण है, प्रकट करती।

मैं समुद्र के रूप में सबकी सीमा बनकर प्रकट होती। समुद्र का आर-पार नहीं है। मैं असीमित आलोक की लहर के रूप में सम्मुख आती। मैं अपने में तारों से युक्त आकाश छिपा रखती।

(यदि मेरा तुमसे प्रियतम, मिलन हो जाता तो लहरें (नदियाँ) भी मेरी बाट जोहतीं, तारागण मेरा प्रकाश चाहते।)

शाप मुझे वरदान बन जाता। पतझड़ मुझे सदा रहनेवाला बसंत बन जाता। अपने छोटे प्राणों के स्पन्दन में मैं न जाने कितने स्वर्गों का निर्माण करती।

(प्रियतम के मिलने पर शाप भी वरदान के रूप में बदल जाते। सदा बसंत ऋतु मेरे लिए रहती और अनेक स्वर्ग मेरे लिए निर्मित हो जाते)।

मेरी श्वासें तुम्हारी अमर कहानी कहती हैं। प्रत्येक गत होता हुआ पल अमिट निशानी बन रहा है। हे प्रियतम ! यदि तुम

मिल जाते तो मैं अपने छोटे से बंधन में सौ बार मुक्ति बाँध लेती।

(मेरी श्वासों में करुण कथा छिपी है। तुमसे मिलने पर मुक्ति तो मेरे अधीन दासी के समान हो जाती)।

गीत—३१ (कौन तुम मेरे हृदय में)

शब्दार्थ—निलय—छिपने का स्थल। घनसार—कपूर।

भावार्थ—तुम मेरे हृदय में कौन हो ? मेरी कसक में कौन नित्य मधुरता इस प्रकार भर रहा है कि जिसे कोई देख न सके ? आँसुओं के रूप में मेरे नेत्रों से कौन बार-बार अनजाने ही घुमड़-घुमड़ कर बरस जाता है ? स्वर्ण-स्वप्नों का निर्माणकर्त्ता मेरी नींद के सूने घर में समा गया है। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मेरे हृदय में निवास करने वाले तुम कौन हो ?

(मेरा प्रियतम मुझमें समाया है। आहों में उसका निवास है। आँसुओं के रूप में वह प्रकट होता है। मैं उस प्रियतम का स्वप्न देखती हूँ)।

मेरे निश्वास किसका निरंतर अनुसरण कर रहे हैं ? किसके पदचिन्ह को चूमने को यह श्वास फिर-फिरकर लौटते हैं ? किसने मुझे प्रेम-पाश में वंदी किया और अब स्वयं अपनी विजय में बँध गया है।

एक करुणापूर्ण अभाव मुझमें है और उसी में तृप्ति का संसार संचित है। संसार की तृप्ति मेरे मन में समाई है। विश्व का एक छोंटा क्षण भी मुझे मोक्ष के सैकड़ों वरदान दे रहा है। अपनी मधुर पीड़ा में ही मैंने अपने प्रियतम को पा लिया है।

मेरे हृदय में दूर से आते हुए संगीत की भाँति न जाने क्या गूँज रहा है ? आज अपने को खोकर मैंने अपने खोए हुए प्रियतम को पा लिया है यह तो बड़ी विपरीत तथा विचित्र बात

हुई । क्या विरह-रूपी रात्रि उदय होते हुए मिलन-रूपी मधुर दिन में स्नान कर आई है ?

(अपने को पूर्ण रूप से समर्पित करके मैंने प्रियतम को पा लिया है । पीड़ा में झुलसने के बाद ही मुझे प्रिय का दर्शन हुआ है) ।

घनघोर अंधकार में स्थिर प्रकाश की प्रतिमा चमचमा रही है । आज तो ज्वाला से सुगंधित कपूर बरस रहा है । मुझे तो केवल एक झंकार—प्रियतम की झंकार—जीवन और मृत्यु में सुनाई देती है ।

मेरी पीड़ा में भी तुम्हारा ही माधुर्य सुरक्षित है । जीवन और मृत्यु में तुम्हारा ही दृश्य दिखाई देता है । तुम्ही मेरे हृदय में समाये हो ।)

जीवन में दुख और सुख मौन भाव से मेरा शृंगार कर रहे हैं । आकाश झूम-झूमकर विनम्र पृथ्वी को गर्व के साथ अपना प्यार दे रहा है । आज पुलकित सृष्टि क्या लय में अभिसार करने चली है ? तुम मेरे हृदय में कौन हो ?

(पृथ्वी पर ईश्वरीय प्रकाश छाया है । मेरे जीवन में विरह और मिलन का अस्तित्व है । मेरा प्रिय मेरे हृदय में बसा हुआ है ।)

गीत—३२ (विरह का जलजात जीवन)

शब्दार्थ—जलजात—कमल । निरुपम—उपमारहित ! आवास—घर ।

भावार्थ—मेरा जीवन विरहरूपी कमल है । इसका जन्म वेदना से हुआ है और इसका निवास-स्थान वेदना है । दिन तो इसके गिरे हुए आसुओं को एकत्रित करता है और रात्रि उन्हें गिनती है । मेरा जीवन विरहरूपी कमल है ।

मेरा हृदय आँसुओं का कोष है तथा नेत्र आँसुओं की टकसाल है। मेरा मृदु गात क्षणिक है, क्षणभंगुर है। यह वैसे ही बना है जैसे मेघ जलकणों से बनते हैं। मेरा जीवन विरहरूपी कमल है।

बसंत ऋतु अपने मधुकण ऐसे ही लुटाती है जैसे वर्षा ऋतु। ऐसा लगता है जैसे करुणा बरसात ही आँसुओं की बाजार हो। मेरा जीवन विरह से खिले हुए कमल के समान है।

(कवयित्री को लगता है कि जैसे अपनी करुणा के कारण बसंत और बरसात ओस तथा मेह के रूप में अश्रु बिखेरते हैं। कवयित्री के हृदय में विरह और पीड़ा समाई है)।

काल इनको आँसुओं का हार दे गया है तभी तो पल भर में ही मेरे आँसू गिरने लगते हैं। स्वयं वायु अपने निश्वासों द्वारा मेरी करुण गाथा पूछती है। अर्थात् मेरा जीवन करुणा से परिपूर्ण है। वायु मेरी ही करुणा के कारण श्वास भरती है।

हे प्रियतम ! यदि यह प्राण आज तुम्हारे हो सकें। तुम्हारे हास्य को देखकर मेरा जीवन पुलकित हो सके। यदि ऐसा हो सके तो कितना अच्छा हो। मेरा जीवन विरह का जलजात है।

गीत—२३ (बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ)

शब्दार्थ—निस्पन्द—स्थिर। स्पन्दन—कम्पन। प्रवाहिनी—नदी। शलभ—पतिंगा। प्रस्तर—पत्थर। मधुप—मदिरा पीने वाला विस्मृत—भूल। स्मित—हास्य।

भावार्थ—हे प्रियतम, मैं तुम्हारी बीन भी हूँ और उससे निकली रागिनी भी हूँ। मेरी अचल कम्पहीन निद्रा कण-कण में व्याप्त थी। संसार प्रथम स्पंदन में मेरा प्रथम जागरण था। प्रलय में भी मेरा पता है और जीवन में भी मेरे पदचिन्ह मिलते हैं। मैं वह शाप हूँ जो बंधन में आकर बरदान-स्वरूप हो गया है। मैं नदी का तट भी हूँ और तट-रहित नदी भी हूँ।

(आत्मा ब्रह्म से तादात्म्य जोड़ते हुए अपना अस्तित्व बनाये रखती है। आत्मा परब्रह्म का अंश ही है अतः ब्रह्म से उसकी घनिष्टता है)।

मैं वह प्यासी चातकी हूँ जिसके नेत्रों में बादल हैं अर्थात् जिसके पास अक्षय अश्रुओं का कोष है। मैं वह पतिंगा हूँ जिसके हृदय में निष्ठुर दीपक समाया हुआ है। दीपक पतिंगे को जला देता है अतः वह निष्ठुर तो हुआ ही। मैं उस बुलबुल के समान हूँ जो अपने हृदय में फूल के प्रेम को छिपाये हुये है। मैं वह चलती हुई छाँह हूँ जो शरीर से मिल कर भी उससे पृथक अपना अस्तित्व रखती है। मैं तुमसे दूर भी हूँ और फिर भी अखण्ड सौभाग्यवती हूँ।

(आत्मा परमात्मा का तादात्म्य पाकर भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है, अपना महत्व रखती है)।

मैं वह अग्नि हूँ जिसकी भाप से जल-विन्दु ढुलकते हैं। मैं वह शून्य (आकाश) हूँ जिसके लिए पलक पाँवड़े बिछे हैं। मैं वह पुलक हूँ जो कठोर पत्थरों के बीच पला है। मैं वही प्रतिबिम्ब हूँ, जो आधार के हृदय में व्याप्त है। मैं नीलमेघ भी हूँ और उसके बीच में चमकनेवाली सुनहली बिजली भी हूँ।

मैं अनन्त के विकास का क्रम भी हूँ, और उसका नाश भी हूँ। मैं त्याग का दिन भी हूँ और मोह की पराकाष्ठा का अंधकार भी हूँ। वीणा के तार का आघात, झंकार, गति सभी हूँ। मैं ही मदिरा का पात्र हूँ मदिरा हूँ, पीनेवाली हूँ और उसका नशा हूँ, मीठा बेसुधपन हूँ। मैं ओंठ भी हूँ और ओठों के बीच के सुन्दर हास्य की चाँदनी भी हूँ।

(आत्मा सर्वव्यापी है। आत्मा सदा परमात्मा से मिलना चाहती है। इस कविता में आध्यात्मिक-रहस्यवाद अपने अत्यन्त सुन्दर रूप में मौजूद है)।

गीत—३४ (रूपसि तेरा घन केशपाश)

शब्दार्थ—रूपसि—रूपवती । घन-केश-पाश—घने बालों का गुच्छा या समुदाय । सद्यस्नात—अभी नहाया हुआ । उच्छ्वसित—हिलता हुआ । बक—बगुला । अरविन्द—कमल । केकी—मोरनी । सस्मित—खिलता हुआ । रजत—चाँदी ।

भावार्थ—हे रूपवती युवती ! तेरे घने बालों का समुदाय काला, कोमल तथा सुगन्धयुक्त है और वह हवा में लहराता है । क्या रात्रि इन्हें आकाश गंगा की श्वेत धार में धोकर आई है ? तेरे जल से युक्त अंग काँपते हुए प्रतीत होते हैं । ऐसा लगता है कि जैसे तुम अभी स्नान करके आई हो । भीगे हुए बालों की लटों के किनारों से टपकती हुई बूँदें अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती हैं ।

(रात्रि को स्त्री माना है। रात्रि का रूप सुन्दर और आकर्षक है । तारे निकले हैं तथा ओस गिर रही है) ।

रात्रिरूपी स्त्री का दुपट्टा झीना है, गीला है, सुगन्धयुक्त है तथा काला है और वह शरीर से लिपटा है । उसका दुपट्टा चंचल है अर्थात् हवा में उड़ रहा है । मार्ग में जुगनूरूपी स्वर्ण-फूल उससे झर-झर पड़ते हैं । तेरी उज्ज्वल वैभवशाली चितवन से बार-बार दीपक जलते हैं, ऐसा प्रतीत होता है ।

रात्रि के उच्छ्वसित हृदय पर चंचल कमलरूपी हार बगुलों की पंक्ति के रूप में शोभा पाता है । तेरी श्वासें पृथ्वी को छूकर मलयज वायु बनकर बहने लगती हैं । मोरनियों की नूपुर की ध्वनि सुनकर जगती की सोई हुई प्यास जाग उठती है ।

हे रात्रि ! तू अपनी कोमल तथा सुन्दर लटों को अपनी विशाल गोद में भर ले तथा अपने शरीर को उससे ढँक ले। झुक कर हास्य तथा अपना शीतल चुम्बन इसके कोमल मस्तक

पर अंकित कर दो। तू अपने शिशुरूपी उदास जगत को क्यों नहीं दुलरा देती, बहला क्यों नहीं देती।

(यह पंक्तियाँ अत्यन्त भावपूर्ण हैं। रात्रि माता के रूप में मानी गई है और जगत उदास शिशु के रूप में। कवयित्री रात्रि से संसाररूपी शिशु की उदासी को दूर करने की प्रार्थना करती है)।

गीत—३५ (तुम मुझमें प्रिय फिर क्या परिचय)

शब्दार्थ—संसृति—संसार। विचुम्बित—स्पर्श करनेवाला। नन्दन—आनन्दप्रद। शत—सौ।

भावार्थ—कवयित्री यह अनुभव करती है कि उसका पति उसके अन्दर ही है। वह कहती है कि हे प्रिय, तुम मुझमें बसे हो। रात्रि के समय आकाश में निकले हुए तारों में तुम्हारी ही शोभा है। मेरे प्राणों में तुम्हारी स्मृति बसी हुई है। मेरी पलकों में तुम्हारे ही नीरव (शान्त) पदों की चाप सुनाई देती है। मेरे लघु उर में तुम्हारी ही पुलकों का संसार बसा हुआ है। मेरे हृदय में तेरी चंचल स्मृतियाँ बसी हैं। तो फिर मैं इस संसार में और क्या संचय करूँ।

सूर्य का अरुण आभा के साथ उदय तुम्हारा ही हास्य है, तुम्हारी परछाईं ही दुःखभरी रात्रि है। दिन ही तुम्हारा जागरण है और रात्रि ही तुम्हारी निद्रा है, जिसमें स्वप्न विचरा करते हैं। इन सबको अपना-अपना खेल खेलने दो और थक-थककर सो जाने दो। भला मेरे लिए सृष्टि क्या और प्रलय क्या। अर्थात् इसकी चिन्ता नहीं है।

(आत्मा ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करती है। तब इसके लिए न सृष्टि का महत्व है, न प्रलय का)।

तुम्हारे स्पर्श करनेवाले ओठ ही मेरा प्याला हैं। तुम्हारा हास्य ही मेरी मदिरा है। तेरा हृदय ही मेरी मधुशाला है। तो

फिर ए मेरे साकी। मैं फिर तुझसे यह क्या पूछूँ कि तुम मुझे मधुर वस्तु पिलाते हो या विष से पूर्ण।

मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से पूर्ण है। मैं आनन्द-स्वरूप हूँ। मेरी प्रत्येक साँस में सैकड़ों-हजारों जीवन समाये हुए हैं। मेरे प्रत्येक स्वप्न में यह अपरिचित विश्व समाया है। हे प्रिय! मुझमें नित्य ही निर्माण तथा विनाश-क्रिया होती रहती है। सब कुछ जब मुझी में है, तो फिर मुझे स्वर्ग क्या और प्रलय क्या।

आत्मा की महानता, उसकी सर्व व्यापकता, उसका गुण, उसकी विशेषता दिखाई गई है। आत्मा परमात्मा का ही तो अंश है, अतः सत् चित् आनन्दस्वरूप है। परमात्मा को प्राप्त कर लेने के पश्चात् फिर क्या प्राप्त करना रह जाता है)।

हे प्रियतम! यदि मैं हार जाऊँ तो मेरा अस्तित्व, अपनापन समाप्त हो जाय। तुममें ही मेरा अवसान हो। और यदि मैं जीत जाऊँ तो तुम्हारा बंधन मुझे स्वीकार हो अर्थात् यदि तुम्हारा मिलन न हो तो मैं पीड़ा में घुल जाऊँ और यदि तुमसे मिलन हो जाय तो मैं बंधन रूप हो जाऊँ। मैं सीपी में सागर भर लाऊँगी। फिर मेरी हार और जीत का क्या महत्व है।

सर्वत्र चित्रित तो तू ही है। मैं तो चित्र में केवल बनी रेखामात्र हूँ। तू मधुर राग है। मैं उस गीत का स्वर, ताल तथा लय हूँ। तू असीम है, अनन्त है, अपार है और मैं सीमा का भ्रम हूँ। अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है कि मैं सीमित हूँ यद्यपि आत्मा, परमात्मा का अंश होने से स्वयं भी असीम है)। इस शरीर में और संसार में तू ही रहस्यमय है। हे मेरे प्रिय! तो मेरा और तुम्हारा अभिनय कैसा?

(आत्मा परमात्मा के आलोक से प्रकाशित है, यही भाव-चित्र मेरी ही रेखाओं से चित्रित है)।

गीत—३६ (मधुर-मधुर मेरे दीपक जल)

शब्दार्थ—विपुल—अधिक। ताप—कष्ट। द्रुत तर—शीघ्र ही।

भावार्थ—आत्मा परमात्मा से मिलने के लिये व्याकुल है। अतः कवयित्री कहती हैं कि ए मेरे दीपक! मधुर-मधुर जल। प्रत्येक युग में प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल तू प्रियतम के पथ को आलोकित करता चल। कवयित्री का विश्वास है कि अपनी मधुर पीड़ा से ही प्रियतम को प्राप्त किया जा सकता है।

धूप के समय तुम अपनी सुगंध फैलाओ। ए शरीर! तू प्रिय को प्राप्त करने के लिए मोम के सदृश घुल जा। तेरा कण-कण गल कर प्रकाश के अपरिमित सिन्धु को प्रकाशित करे। अर्थात् ईश्वर की महत्ता का प्रकाश ए मेरे प्राण! फैलाओ।

ए मेरे दीपकरूपी प्राण! तुम पुलक-पुलक कर जलो। सारे संसार की शीतलता, कोमलता और नवीनता तुझसे अग्नि-कण उधार माँग रही है। विश्वरूपी पतिंगा तुझसे बार-बार अपना सिर धुन-धुन कर कह रहा है कि 'हाय, मैं तेरे साथ दीपक में न जल पाया।' अर्थात् हे प्राण! तुम पतिंगे के समान प्रियतम पर बलिदान हो जाओ।

ए दीपक! तुम सिहर-सिहर कर जलो। असंख्य स्नेह (प्रेम तथा तेल) रहित दीपकों को प्रतिदिन आकाश में जलता हुआ देख कर जल से भरे हुए सागर का हृदय भी बाड़वाग्नि से जलने लगता है। बादल भी बिजली को साथ लेकर घिर आता है।

(कवयित्री के हृदय में असीम पीड़ा है। तारे, समुद्र तथा बिजली सभी उन्हें प्रियतम के विरह में जलते दिखाई देते हैं।)

ए मेरे प्राण! हँस-हँसकर जल। वृक्ष के हरे तथा कोमलतम भागों में अग्नि विद्यमान रहती है। पृथ्वी के जड़ हृदय में भी

ताप की हलचल बंद है। ए मेरे दीपक, तुम काँप-काँपकर दुख और पीड़ा से जलो।

(पृथ्वी के अन्दर अग्नि के कारण ही भूकम्प तथा ज्वालामुखी उद्गार होते हैं। प्राण ! तुम इसी प्रकार जलते हुए ब्रह्म को प्राप्त करो।)

हे सुभग ! मेरी गहरी (दीर्घ) निश्वासों से जलने का भय मत कर। मैं अपने अंचल की ओट (चंचल नेत्र दुपट्टा माने गये हैं) किए हूँ। मेरे दीपक ! धीरे-धीरे जलो।

(मेरे प्रियतम मेरे नेत्रों में बसे हैं। अपनी पुतलियों में पलकों की ओट में मैं उन्हें छिपाए हुए हूँ।)

सीमा लघुता के बंधन में बँधती है। ए मेरे दीपक (अर्थात् आत्मा) तू अनादि है, तू बुझने का भय मत कर। मैं अपने दृग के अक्षय कोषों से तुझमें आँसू-जल प्रवाहित करती हूँ।

(आत्मा अनादि, अनन्त और अनश्वर है। प्रियतम में घुल कर ही, अर्थात् सर्वस्व अर्पण करके ही उसे पाया जा सकता है। मैं अपने में घुलकर परमात्मा को प्राप्त करूँगी।)

ए मेरे सजल दीपक, तू जल ! यदि तम सीमारहित है तो प्रकाश भी स्थायी है। वे दोनों निरंतर नव खेल खेलेंगे। ए मेरे प्राण ! अन्धकार के कण कण में बिजली के समान चमक कर तू अमिट चित्र अङ्कित कर दे। प्राण ! तुम सरलता से जलो।

ए प्राणरूपी दीपक ! तू जल-जलकर जितना नष्ट होता जाता है उतना ही तू प्रिय के निकट आता जाता है। उसके प्रकाश में घुलकर तू प्रियतम के मिलन-माधुर्य में मिट जाना। ए प्राणरूपी दीपक ! तू आनन्द के साथ जल तथा प्रियतम के पथ को आलोकित कर।

(यदि प्राण करुणा और पीड़ा का वर पा जायँ तो ईश्वर की प्राप्ति में सुविधा होती है।)

गीत—३७ (मेरे हँसते अधर नहीं जग)

शब्दार्थ—स्मित—हास्य।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि हे प्रियतम ! तुम मेरा हास्य न देखकर विश्व की पीड़ा और आँसुओं को देखो। आँसुओं से भीगी मेरी पलकें न देख कर तुम मुरझाई हुई कलियों की ओर ध्यान दो।

इन्द्र-धनुष की हँसी में मानो बादल मिटते भी हँस देते हैं। ढलता हुआ दिन मानो अपनी लालिमा से सारे विश्व को उसी राग से रँग जाता है। विश्व का एक सुमन तक डाली से झरता-झरता भी विश्व को सुगंधयुक्त कर देता है। छोटा-सा दीपक बुझते-बुझते अन्धकार में प्रकाश भर देता है। हे निष्ठुर ! तुम मिटनेवालों को क्रीड़ाओं और हँसते-हँसते बलिदान होने की क्रिया को देखो।

(अर्थात् हे प्रियतम ! तुम दुखियों की पीड़ा और कष्टों पर ध्यान दो।)

एक छोटा-सा बीज तक अपने को इसलिए गला देता है ताकि उससे असंख्य नवीन नश्वर बीज बन सकें। (नश्वर इसलिए क्योंकि आगे चलकर वे स्वयं भी ऐसा ही करेंगे।) वृन्तों से पत्ते इसलिए टूटते हैं ताकि उनके स्थान पर नई कोपलें उग सकें। एक पल केवल इसीलिए तो अपने को समाप्त कर देता है ताकि अनेक युग-कल्प समाप्त हो जायँ। यह संसार असंख्य बातों को भूल जाता है ताकि भूलों से युक्त संसार की सृष्टि हो सके। मेरे बंधनों पर मत ध्यान दो। तुम इतिहास की कड़ियों को देखो।

श्वासें आती हुई बताती हैं कि तुम हृदय में विराजमान हो और प्रश्वास से ऐसा लगता है कि तुम जा रहे हो। आँखों से वह अनजाना-सा दीखता है पर हृदय उसे चिर-परिचित जानता है।

उनकी सुधि आ जाने से वह प्रत्येक क्षण में नवीन तथा सजीले रूप में स्वप्न प्रकट होते हैं। दुख हृदय की उलझन में राह नहीं पाता और सुख आँसू के रूप में प्रवाहित हो जाता है। यदि तुम आज वास्तव में मुझमें हो तो तुम मेरा रूप धारण करो ('मैं' बन जाओ) और तब विश्व के कष्टों को देखो – समझो।

गीत—३८ (कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती)

शब्दार्थ—सित—श्वेत। मसि—स्याही। पुलिन—तट, प्रवाल—लाल। तरणी—नाव। मनुहार—विनती।

भावार्थ—हे प्रिय ! मैं अपना संदेश तुम तक कैसे पहुँचाऊँ। मेरे नेत्ररूपी दावात की स्याही श्वेत रंग की है और वह अक्षय है। मेरे दृगरूपी दावात से दो तारे झरते-से प्रतीत होते हैं। प्रत्येक पल मानो पृष्ठ है जिस पर मैं अपनी स्मृति से श्वासरूपी अक्षर लिख रही हूँ। मैं अपनी अज्ञानता, अनुभवहीनता तथा उतावलेपन से लिखना कुछ चाहती हूँ, पर लिख कुछ जाती हूँ।

(कवयित्री साधन से हीन है। उतावलेपन के कारण वह अपनी भावनाओं को ठीक से व्यक्त नहीं कर पाती। आहें और आँसू उनके जारी हैं)।

इस प्राणरूपी पथ में अपने को जलाते हुए न जाने कितने श्वास प्रति पल आते और चले जाते हैं। ऐसा लगता है कि वे सब उनके ही संकेत हैं। कभी तो वे परिचित जान पड़ते हैं और कभी रहस्यपूर्ण लगते हैं। मुझे वह दूत नहीं मिलता जिस चिर-परिचित को मैं अपने हृदय का धन दे आती, अर्थात् अपने को समर्पण कर देती।

(कवयित्री अपने प्राणों में व्याप्त प्रियतम से मिलने को व्याकुल है।)

अज्ञात तटों से ऊषा हँसती हुई प्रति दिन अंधकार के नीले तटों पर, ज्योतिर्मय तथा लाल किरणें नाव में भरकर ले आती

है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी करुण-गाथा में उसी की मुस्कानें अंकित हैं।

(प्रभात बेला में प्रियतम के रूप की झलक इस प्रकार दिखाई देती है।)

संध्या-रूपी युवती केसरिया वस्त्र धारण किये चली आती है। (संध्या के समय डूबते सूर्य की लाली छाई होती है।) उसके नेत्रों में अंधकाररूपी अंजन लगा है तथा कोमल चरणों में मेंहदी लगी है। संध्या अनुराग तथा सुहाग से भरी हुई है। मदिरा से उसकी गगरी छलकी पड़ती है। अर्थात् बड़ी मादक बेला है। मैं विषादयुक्त हूँ। किन्तु उसके आगमन से मुझमें मधुरता की लहर दौड़ जाती है।

संध्या नये बादलों से झाँक रही है—बादल ही जैसे उसके घूँघट हों। उसके नेत्ररूपी तारों में सकरुण चितवन है। अपने आगमन (पगध्वनि) से संध्या सोये सपने जाग्रत कर देती है। और श्वासों से मौन अंधकार को फैलाती है। रात्रि के अभिसार में निकले हुए आँसुओं के द्वारा मानों वह मेरी प्रार्थनाओं को धो जाती है, बहा देती है अर्थात् अवहेलना करती सी प्रतीत होती है।

(रात्रि में कवयित्री विरह के कारण जलती है और उसके नेत्रों से जल प्रवाहित होता है।)

गीत—३९ (टूट गया वह दर्पण निर्मम)

शब्दार्थ—निर्मम—कठोर। छाया—अहंकार। निरुपम—उपमारहित। अंगराग—उबटन। कुन्तल—केश। आँजू—अंजन लगाऊँ।

भावार्थ—कवयित्री का मनरूपी निष्ठुर दर्पण टूट गया। दर्पण में मैं अपना रूप (परछाई) निहारा करती थी। अर्थात् उसमें मेरा अहंकार व्याप्त था। मुझमें ममता और मोह समाया

हुआ था। मेरे अश्रु तथा हास्य से विश्व सजाया हुआ था। उस मन के अन्तराल में मैं और तुम आँख-मिचौनी खेलते थे अर्थात् तुम्हारे दर्शनों की झलक मुझे मिलती थी।

(अब मेरा मोह और अहंकार मिट चुका है—दर्पण टूट चुका है।)

उस मन के द्वारा ही मुझे दो रूप दिखाई देते थे—मेरा और तुम्हारा। अर्थात् 'दुई' का भाव मिटा नहीं था। वास्तव में दोनों एक ही तो हैं। आत्मा और परमात्मा के एक होने पर भी माया के कारण उसमें भेद लोगों को दिखाई देने लगता है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। हे प्रियतम! मेरे और तुम्हारे मिलने के लिए, स्मरण और विस्मृति का क्रम जारी रखने के लिए तथा मिलने के लिए उत्सुक होने के लिए ही तुमने इस मन की रचना की। हे निरुपम! तुमने इसे ज्योतिर्मय तथा मधुर बनाया था। (मेरा मन तुम्हारा क्रीड़ा-केन्द्र है)।

जब 'मैं' का भाव मिट गया, जब 'तू-ही तू' रह गया, अर्थात् जब मैं और तुम एकाकार हो गये तो पतझर और सावन कैसा। सब समाप्त हो गये। अब न तो मुझे विरह-वेदना का कष्ट है और न मिलने की आकांक्षा। विरह-मिलन की उलझन भी समाप्त हो गई। जो पल और घड़ी वियोग में बीतती थी वह समाप्त हो गई। तुम मेरे पास हो, मुझमें हो। समस्त विश्व में तुम व्याप्त हो। या फिर अंधकार व्याप्त है।

जब दर्पण ही टूट गया तो फिर अपने केश कैसे सँवारूँ। अपने शरीर में पुलकरूपी अंगराग कैसे मलूँ और अपनी चंचल पलकें किस प्रकार स्वप्नों के अंजन से आँजूँ। अब किस पर रीझूँ और किससे रूठूँ। जब मैं और तुम क ह हो गये तो कौन किससे रूठे-मनावे।

(प्रियतम से मिलन हो जाने पर फिर कोई आकांक्षा शेष नहीं रह जाती ।)

आज मेरा 'अपनापन' मिट चुका है । तुम्हारे छिपने का अब पर्दा कहाँ है ? मेरे बंधन ही तुम्हारे साधन रूप हैं । तुम मेरे मन में बस कर अपने सुख को प्राप्त करो और मैं तुम्हें पाने को व्याकुल थी । तुम्हें पाकर तुममें मैं अपनी पीड़ा को ढूँढूँगी ।

(कवयित्री को अपनी पीड़ा अत्यन्त प्रिय है क्योंकि प्रियतम को पाने का साधन वही है) ।

गीत--४० (कमलदल पर किरण अंकित)

शब्दार्थ—कमलदल—आत्मा । किरण ज्ञान । चित्र—स्वरूप । चितेरा—ब्रह्म । शिरीष—एक वृक्ष विशेष ।

भावार्थ—कमल के पुष्प पर किरणों का प्रकाश पड़ रहा है। मैं ऐसा चित्र हूँ । तब फिर मेरे चित्रकार का क्या कहना है भला । अर्थात् आत्मा ज्ञान से ज्योतिर्मय है । वह अलौकिक है । तब फिर उस परमात्मा के विषय में क्या कहा जाय जिसका अंशमात्र ही आत्मा है । हे प्रियतम ! तुमने बादलरूपी प्यालियों में व्याप्त (भरी) ज्योत्स्ना से इन्द्र-धनुष-रूपी कूँची द्वारा मेरे हृदय को अपने प्रेम से भर दिया है । मेरे हृदय में तुम्हारा प्यार समाया है । तब क्या काल के लघु अश्रुओं से मेरे रंग (अर्थात् प्रेम तथा पीड़ा) भला धुल जायेंगे ? अर्थात् नहीं ।

(परमात्मा का अंश होने के कारण ही आत्मा परमात्मा से मिलने को व्याकुल है) ।

चमकती हुई बिजली में मानो मेरे ही अंगों की आकुलता समाई हुई है । करुण पावस की रात में भी जैसे मेरे ही अंगों की तड़पन समाई हुई है । बसन्त ऋतु के सुन्दर प्रभात में भी

मैं तुम्हारे ही मिलने का स्वप्न देखती रहती हूँ। हे प्रियतम, क्या तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में मेरा सारा साज-श्रृंगार शिरीष के फूल की भाँति यों ही कुम्हलाकर नष्ट हो जायगा। अर्थात् क्या प्राणों की विकलता यों ही समाप्त हो जायगी और तुम नहीं मिलोगे।

इस करुणा के देश से तथा मिटने-बलिदान होने की राह में मेरे प्राण अनेक युगों से परिचित हैं। ऐसा लगता है मानो इस करुण-भूमि का कण-कण मेरी चाह (मर मिटने की) से परिचित है। क्या नाशरूपी श्वास की गति से मेरे चिह्न (मेरा अस्तित्व) मिट जायेंगे ? अर्थात् नहीं।

(कवयित्री करुणा में बसी है और करुणा उसमें बसी है। आत्मा अनश्वर है। वह कभी नहीं मिटेगी)।

मेरे पैरों की गति से ही प्रत्येक पल और क्षण गतिशील हो जाता है। मैंने अपने नेत्रों की माप के द्वारा निःसीमता की भी थाह ले ली है। मैं सीमारहित भी हूँ, मैं प्रत्येक क्षण गतिशील भी हूँ। क्या मेरे प्राण मृत्यु के उर में समा जायेंगे। नहीं, आत्मा अमर है।

हे प्रियतम ! तुमने विश्व के उर में मेरी ही अमिट प्यास भर दी है ? क्यों ? तुमने विश्व में अश्रु तथा पीड़ा तथा विश्व की पुलकों में कम्पन तथा लास (सौन्दर्य, माधुर्य) मुझसे ही लेकर क्यों भर दिये ? मेरे शरीर के नाश होने पर भी मेरे द्वारा छोड़े गये उपहार अर्थात् पीड़ा और माधुर्य सदा संसार में रहेंगे। उनका कभी नाश नहीं होगा।

(कवयित्री कहती है कि विश्व में उसकी पीड़ा और माधुर्य सर्वत्र व्याप्त है। पीड़ा और माधुर्य चिर-स्थायी है। उनका कभी नाश नहीं होगा। और मैं उपहार-रूप में इन्हें ही विश्व को दे जाऊँगी)।

गीत—४१ (मुस्काता संकेत भरा नभ)

शब्दार्थ—पाश—रस्सी । परिमल—पराग । भ्रान्त—भूला हुआ । सुरधनु—इन्द्रधनुष ।

भावार्थ—हे सखी ! आकाश मुस्कराता-सा जान पड़ता है ! क्या प्रिय आने वाले हैं ? यह संकेत तो 'प्रिय-आगमन होगा', यही बताता है । बिजलीरूपी चंचल स्वर्ण-डोरी में बँधा मेघ कभी तो हँसता है और कभी रोता है । कभी तो बिजली चमकती है और कभी मेह बरसता है । ऐसा लगता है कि जैसे समुद्र अपने कोमल हृदय से उत्पन्न अग्नि को अपने गीतों (सागर की लहरों) से नहलाता (शान्त करता) हो । दिन रात को तथा रात दिन को सोने तथा चाँदी से बने मधु से भरे प्याले दे रही हो ।

आकाश में प्रकाश छाया है । यह उनकी प्रसन्नता का द्योतक है । और उनकी प्रसन्नता इस बात की द्योतक है कि मेरा प्रिय आनेवाला है ।

[नया संस्करण छपने के पूर्व मुझे श्री तारकनाथ बाली की "महादेवी वर्मा और उनका आधुनिक कवि" पुस्तक की भूमिका में उनकी मेरे अर्थ के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति पढ़ने को मिली । उन्होंने अर्थ किए हैं—"बिजली के सुनहले बंधन में फँस कर रोता हुआ मेघ भी हँसने लगता है । बिजली की चमक बादल की हँसी है । और सागर भी कलकल ध्वनि करता, अपनी लहरों से बड़वानल को शान्त करता है । क्यों ? क्योंकि प्रिय आने वाले हैं इसलिए ही तो सारी प्रकृति का दुख दूर हो गया है ।"

मुझे इस सम्बन्ध में केवल यही निवेदन करना है कि मैं उनके अर्थ को भी ठीक मानता हूँ किन्तु फिर निवेदन यही है कि रहस्यवाद और छायावाद की कविता की व्याख्या किसी

बंधन में नहीं बाँधी जा सकती। अतः प्रत्येक अपने अपने ढंग से कविता के अर्थ लेता है—अपने स्थान पर तथा अपने दृष्टिकोण से वह ठीक ही है।]

तारकरूपी परियाँ अपने पैरों में नूपुर बाँधकर नृत्य करती हैं। ऐसा करने से उनके नूपुर के मोती बिखर जाते हैं अर्थात् आकाश में तारे छिटके हुए प्रकाशित हैं। ओस की बूँदों के ऊपर से बहता हुआ मलयानिल अपनी अञ्जलि में पराग भरे हुए है। मार्ग में भूले हुए पथिक की भाँति मेरे प्रत्येक क्षण अपना मतवाला रूप धारण करके बार-बार वापस लौट आते हैं। अर्थात् जैसे प्रत्येक क्षण स्वयं व्याकुल हो। कवयित्री को अपनी व्याकुलता के कारण ही ऐसा लगता है। प्रियतम से मिलने को उसके प्राण व्याकुल हैं।

अत्यन्त घनी वेदना के अंधकार में भी प्रियतम की सुधि सोने के कण भर जाती है अर्थात् आशा का संचार करती है। मेरे भीगे अधरों पर निश्वासें हास्यरूपी इन्द्रधनुष रच देते हैं। अर्थात् प्रियतम का आगमन होने वाला है अतः मेरे ओठों पर मुस्कान खेलने लगती है। मेरी आँखों से निकलनेवाले आँसुओं पर तुम्हारी ही स्मृति, तुम्हारा ही ध्यान पहरेवालों के रूप में छाये हैं अर्थात् उन आँसुओं में तुम्हारे ही स्वप्न व्याप्त हैं।

(कवयित्री कहती है कि मेरी वेदना में तुम्हारी ही स्मृति व्याप्त है। मेरा हास्य तुम्हारे मिलने की आशा को छिपाये है। मेरे आँसुओं में तुम्हारे ही मिलने के स्वप्न बसे हैं)।

आज नेत्र कान के रूप में हो गये हैं तथा कान नेत्र के रूप में हो गए हैं। अजीब उलझन है। ठीक से न कुछ दिखाई पड़ता है और न सुनाई पड़ता है। अत्यन्त व्याकुलता तथा उत्सुकता में यह स्वाभाविक ही होता है। ऐसा लगता है कि मेरे रोम-रोम में एक नये उर का स्पन्दन (धड़कन) हो रहा

है। मेरे प्राणों के छाले (व्याकुलता) मेरे लिए पुलकों से भरे हुए फूल बन गये हैं। अर्थात् मेरी पीड़ा मेरे लिए सुख और आशा का कारण बन गई है।

मेरे नेत्रों में उसी का रूप, मेरे कानों में उसी की ध्वनि समाई है। मेरे प्रत्येक रोम में प्रियतम के हृदय की धड़कन है। मेरे प्राणों मे उसी की ज्योति समाई है)।

गीत—४२ (झरते नित लोचन मेरे हों)

शब्दार्थ—मुक्ताहल—मोती। कङ्कण—कड़ा। पद्मराग—लाल। नीलम—एक प्रकार का नीला मणि। मुखरित—ध्वनित। दशन—काटना, डंक मारना। आवर्त्त—घेरा, बवंडर। परिमलमय—परागयुक्त। अग—स्थिर, स्थावर।

भावार्थ—मेरे नेत्र सदा प्रिय के वियोग में बरसते रहे। आकाश के तारे युगों से उज्ज्वल आभा से जल रहे हैं। अपने प्रकाश से जैसे वह मोती बनाते हों। यह तारकमाला प्रियतम की ही है क्योंकि उनमें प्रियतम का ही प्रकाश समाया है। पर बिजली की चमक मेरे कंकण हैं अर्थात् वह मेरी पीड़ा को दिखाती है।

(कवयित्री को अपनी पीड़ा अत्यन्त प्रिय है, यह अनेक बार कहा जा चुका है। बिजली की तड़प में उन्हें अपनी ही पीड़ा दिखाई देती है)।

रात्रि ने तथा दिन से तरल (बहते हुए) स्वर्ण तथा चाँदी से आकाशरूपी आँगन को लीपा है। अर्थात् दिन श्वेत (प्रकाशपूर्ण) है तथा रात स्वर्णिम (तारकमय) है। यह मनोरम आकाश तो मेरे प्रियतम का हो और उस आकाश में जो पल-पल में बनने और मिटनेवाले बादल हों, वह मेरे होवें। बादलों में मेरी ही व्याकुलता और पीड़ा हो।

(कवयित्री कहती है कि मेरी पीड़ा, करुणा तथा व्याकुलता मुझे मुबारक हो।)

जो लाल कलियाँ खिली हुई हैं उस पर नीले रंग के भौरें गुंजार कर रहे हैं। ऐसा नन्दन-कानन (इन्द्र का स्वर्ग में बगीचा) तो मेरे प्रिय का हो और ओस (मेरे आँसुओं) के भार से झुकी हुई घास तथा तिनके मेरे हों। अर्थात् समस्त आनन्द प्रिय का हो और समस्त पीड़ा मेरी हो।

(यह कविता अत्यन्त मार्मिक तथा विह्वलता से पूर्ण है। कल्पनायें अत्यन्त हृदयस्पर्शी तथा भावपूर्ण हैं।)

वह सूनापन, जो आकाश के समान विस्तृत हो, अंधकार-सा शांत हो, जो हास्य तथा रुदन से अपरिचित हो (अर्थात् जिसमें किसी प्रकार का हास्य-रुदन नहीं है।) वह तो मेरे प्रिय का हो और यह दुख और सुख से भरे हुए स्पन्दन मेरे हों।

(प्रियतम को शांति और एकांतता प्रिय है और मुझे दुख-सुख से पूर्ण घड़ियाँ।)

जिसमें कसक न हो, स्मृति का दंशन (कष्ट) न हो, प्रिय में मिट जाने के साधन न हों, ऐसे साधन मुझे प्रिय नहीं हैं। प्रियतम की प्राप्ति में पीड़ा, कसक आदि सहयोगी हों, यह मैं चाहता हूँ। इस प्रकार की मुक्ति, ऐसा निर्वाण मेरे प्रिय का हो, उन्हें प्राप्त हों। मैं तो जीवन के सैकड़ों बंधनों को प्रेम करती हूँ, चाहती हूँ।

(कवयित्री निर्वाण नहीं चाहती। वह विश्व के पीड़ाप्रद बंधनों का आलिंगन करने की इच्छुक है।)

पानी के एक बुलबुले में असंख्य आवर्त्त, बवंडर छिपे रहते हैं। एक कण में भी सैकड़ों जीवनों के परिवर्तन (हलचल) मौजूद हैं। इस प्रकार की सृष्टि तथा प्रलय मेरे प्रियतम को मुबारक हो। मुझे तो बनने और मिटने के क्षण ही मिलें।

हँसता हुआ, प्रसन्नता से पूर्ण, सदा पराग से युक्त, इन्द्र-धनुष के नवों रंगों से युक्त आभामय स्थावर तथा जंगम विश्व का प्रत्येक कण मेरे प्रिय का हो। यदि केवल पल भर के लिए वह निर्मम प्रियतम मेरे हो सकें तो मैं फिर कुछ नहीं चाहती। मैं धन्य हो जाऊँ।

(कवयित्री की अंतिम और केवल अभिलाषा यही है कि मेरे प्रियतम मेरे ही जावें, भले ही वह क्षण भर को हों। वह प्रियतम को अपना बनाना चाहती है। सृष्टि की किसी भी वस्तु के प्रति उन्हें मोह नहीं है।)

गीत—४३ (प्राणपिक प्रिय नाम रे कह)

शब्दार्थ—प्राणपिक - प्राणरूपी कोयल। विभा—आभा, प्रकाश। चल—चंचल, गतिशील या व्यतीत हुए।

भावार्थ—ए प्राणरूपी कोयल ! तू प्रियतम का नाम कह। मैं तो उस निस्सीम परब्रह्म में मिट चुकी। वह मेरे लघु हृदय में बँध गया है ! अर्थात् मेरा प्रिय मेरे हृदय में समाया है। अब तो विरह की रात को तू ए प्राण ! चिर-मिलन की प्रभात कह।

(जब प्रियतम हृदय में समाया है तो फिर विरह कैसा। विरह ही मिलन है।)

ए मेरे आँसू ! दुख-रूपी अतिथि के चरणतल धो। अर्थात् पीड़ा को अपनाओ। मेरे आँसू विश्व को रसमय कर रहे हैं। ए मेरे हठीले प्राण ! यह मेरा क्रन्दन नहीं है। इसको तुम सजल पावस का मास समझो।

(कवयित्री वर्षा के जल से अपने आँसुओं की उपमा देती है। पीड़ा के कारण उसके आँसू बहते हैं।)

प्रिय की मादक और मधुर स्मृतियाँ जिन्हें दिन लुभा कर ले गया था, अर्थात् जो दिन के साथ समाप्त हो गई थीं अब

रात्रि में बार-बार स्वप्न बन-बनकर लौटती हैं। इसे तुम मेरी नींद न कहो वरन् इसे तुम जागृति का उत्पात ही समझो। अर्थात् दिन में जागी हुई (समझी तथा अनुभव की हुई) स्मृतियों का फल ही तो स्वप्न है। रात्रि को मनुष्य वही स्वप्न देखता है जिसका दिन भर ध्यान रहता है।

प्रियतम का एक नेत्र तो काला-सा है और दूसरा प्रकाश के समान विकसित है। यह दिन और रात मेरे प्रियतम के नेत्र हैं। इन्हें तुम दिन और रात मत कहो। ये तो मेरे प्रियतम द्वारा दिए हुए मधुर उपहार हैं। जिन्हें संसार दिन और रात कहता है वह मेरे प्रियतम द्वारा दिए गए उपहार हैं।

मेरे श्वासों से स्पन्दन झर रहे हैं—आहें निकल रही हैं। मेरे नेत्रों से आँसुओं के रूप में मेरा हृदय रिस-रिस कर बह रहा है। ए मेरे प्राण ! यह जो रोने का वरदान मेरे प्रियतम ने मुझे दिया है, उसे मैं निर्वाण का ही वरदान समझूँगी।

(कवयित्री पीड़ा को ही निर्वाण का वरदान समझती है।)

चंचल (समाप्त होते हुए) क्षणों का संचय क्षण भर के लिए वैसे ही हो जाता है जैसे बालू पर पड़ने से पानी की बूँदें केवल क्षण भर को दिखाई देकर ही सदा को लुप्त हो जाती हैं। संसार ऐसा ही क्षण-भंगुर है। इसे तुम जीवन न कहो। इसे तो प्रियतम का निठुर उपहास ही कहो।

(विश्व उस परब्रह्म का खेल-मात्र है। यह क्षण-भंगुर तथा उसी की इच्छा पर निर्भर है।)

गीत—४४ (लाए कौन सँदेश नये घन)

शब्दार्थ—कंकण—एक हाथों का गहना। रजनी—रात। मयूर—मोर।

भावार्थ—ए नये घन! तुम कौन सा संदेश लाए हो ? गर्व से गरजता हुआ बादल भी अब विनम्र (चुप) हो गया है। जब

वर्षा होती है तो प्राय: बादल गरजते नहीं हैं और दूसरे वह पृथ्वी के अधिक निकट हो जाते हैं। उनके सदा स्पन्दित रहने वाले हृदय में पुलकों के सावन उमड़ आए हैं अर्थात् वह बरसने लगे हैं।

आलस्य-रहित निद्रित रात एकाएक चौंक उठी है। उसके काले पुलकित तथा कम्पित करों में बिजली का चमचमाता हुआ कंगन दिखाई देने लगा है। बिजली एकाएक चमकती है। यही सोने में एकाएक चौंकना है।

(कवयित्री ने रात को सोई हुई स्त्री के रूप में लिया है। एकाएक बिजली का चमकना उसके हाथ के कंगन का चमचमाना है।)

दिशा के लहराते हुए तथा सुगन्ध से पूर्ण अंचल पर हीरों का हार शोभित था। वह टूट गया है और इसी से जुगनुओं के रूप में हमें उसके छितरे हुए कण दिखाई पड़ते हैं।

(सुगंधित वायु बह रही है तथा जुगनू इधर-उधर उड़ रहे हैं।)

विश्व की जड़ता में स्पन्दन आ गया है। जो स्थिर था, निश्चल था, वह कम्पायमान हो गया है। पृथ्वी के संचित सपने जैसे कोमल अंकुरों का रूप धारण कर-करके फूट पड़े हों।

पपीहा प्रियतम के वियोग में 'पी कहाँ' कहकर रो रहा है। कोयल भी संकुचित-सी जान पड़ती है। सूने में मस्त मोरों ने फिर नाचने की झड़ी लगा दी है।

मेरा छोटा-सा हृदय दुख और सुख से भर गया है। इसीसे मेरे आश्चर्य-से भरे नेत्र मोती के समान उजले अश्रुकणों से छाये हुए हैं।

(पपीहा, कोयल तथा मोर अपने-अपने दुख-सुख में मग्न हैं। कवयित्री का हृदय उनके प्रति सहानुभूति से भर गया है।

उसकी पीड़ा हृदय में भरकर आँसुओं के रूप में नेत्रों से निकल रही है)।

गीत—४५ (तुम सो जाओ मैं गाऊँ)

शब्दार्थ—मुकुर—शीशा।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि हे प्रियतम ! मुझको सोते हुए अनेक युग बीत गए हैं और तुम लोरी गाते रहे हो। अब तुम सो जाओ और मैं लोरी गाऊँ। अब तक सोने के कारण मैं तुम्हारी लोरी, तुम्हारा गीत नहीं सुन सकी थी। अर्थात् मैं माया-मोह में फँसी रहने के कारण, युगों से, तुम्हारे उपदेश, तुम्हारे दिये हुए ज्ञान के बाद भी सोती ही रही, तुम्हारी ओर मेरा ध्यान और मन नहीं गया। पर अब मेरी अज्ञान-निद्रा टूट गई है। अब तुम आओ। मैं अपनी पलकों में तुम्हें स्वप्न बनाकर बसाऊँगी। तुम मेरी पलकों में सो जाओ। मैं पलकों में स्वप्न की सेज बिछाऊँगी।

हे प्रिय ! तेरे आकाशरूपी मंदिर के मणि-दीपक (तारागण) बुझ-बुझ जाते हैं। उन दीपकों का प्रत्येक कण विद्युत के समान प्रकाशयुक्त है। वह निरन्तर जलते ही रहते हैं। मैं भी अपने प्राण गलाकर उनकी सहयोगिनी बनना चाहती हूँ। अर्थात् मैं अपने प्राणों का प्रकाश उनमें भर देना चाहती हूँ जिससे वह बार-बार बुझ न पायें तथा सदा ज्योतिर्मय रहें। कवयित्री बलिदान करने की इच्छुक है, आत्मोत्सर्ग करना चाहती है।

(जैसे भक्त नहीं चाहता कि भगवान के मंदिर का दीपक बुझ जाय वैसे ही कवयित्री आकाशरूपी मंदिर के तारोंरूपी दीपकों को बुझते देखना पसंद नहीं करती। अपने प्राणों की ज्योति देकर वह उन्हें देदीप्यमान रखना चाहती है)।

कवयित्री कहती है कि मेरा जीवन शूल-युत है क्योंकि मैं प्रतिक्षण विरह में जल रही हूँ। तुम कोमल शरीर वाले हो।

क्यों बार-बार इसमें आते-जाते हो। तुम्हें इस हृदय में आते कष्ट होगा। ठहरो ! मैं अपने प्राणों को गलाकर इस मार्ग में मोती बिछा दूँ, जिससे तुम्हें इसमें आने में कष्ट न हो।

(प्रियतम की स्मृति बार-बार उन्हें आती है। प्रियतम के विरह में उनके नेत्रों से अश्रु निरंतर बह रहे हैं। वह अपने प्रिय को प्राप्त करने की तीव्र इच्छुक हैं। अतः कोमल आँसू उनके मार्ग में बिछाना चाहती हैं। कभी-कभी अपने प्रियतम की झलक उन्हें मिल जाती थी, अब मार्ग सुखद होने से स्थायी रूप से आकर उनके प्रियतम उनके हृदय में निवास करेंगे)।

तेरे अपरिचित पद-चिन्ह (क्योंकि अभी ठीक से मैंने तुम्हें देखा-पहचाना नहीं है) पथ की धूल में अंकित हैं। मैं इस पग-धूल को अपनी आँखों में अंजन की भाँति लगा लूँ। अर्थात् विरह में प्रिय की स्मृतियाँ तो अवश्य निवास करती हैं। मैं तो चाहती हूँ सदा-सर्वदा को उनके रूप को अपने नेत्रों में अंकित कर लूँ।

मेरा हृदय तुम्हारे वियोग में जल रहा है और वह सुगंध को चारों ओर फैला रहा है। तुम्हारी स्मृतियाँ मुझे व्याकुल करती हैं। तुम्हारी स्मृतियाँ तो जला ही करती हैं मेरे अंदर। मैं चाहती हूँ कि वे स्मृतियाँ हरी-भरी हो जायँ और सदा को हरी-भरी रहें। अतः मैं अपने नेत्रों के जल से उन्हें सींचना चाहती हूँ।

(बड़ी मार्मिक कल्पना है। जले तथा सूखे पौधों को जल से सींचने पर उनमें हरियाली तथा नवजीवन आता है। प्रियतम की निरंतर स्मृतियाँ बनी रहने के कारण ही कवयित्री के नेत्रों से सदा जल-धारा प्रवाहित होती रहती है)।

हे प्रियतम ! स्मृति की माला की अनेक कलियाँ मेरी आँखों से गिरे हुए आँसुओंरूपी फूलों में मिल जाती हैं। इन फूलों में

काँटे भी हैं। मैं चाहती हूँ कि इन फूलों में लगे हुए काँटों को एकत्रित करूँ तथा उन्हें मैं संसार को भेंट स्वरूप दे जाऊँ।

(पीड़ा ही का धन कवयित्री के पास है। अपनी अपार विरह-वेदना तथा पीड़ा को वह संसार को भेंट दे जाना चाहती है)।

मेरा मन रूपी दर्पण अत्यन्त छोटा है। उसमें तुम पल भर के लिए अपनी असीमता को तो देखो। सोचो तो इस बात पर। मैं तब यही चाहती हूँ कि प्रत्येक क्षण को अपने अश्रु-जल से बार-बार धो कर उन्हें दर्पण बना दूँ ताकि तुम ठीक से तब अपनी असीमता देख सकोगे।

(यह पंक्तियाँ अत्यन्त भावपूर्ण हैं। वह तो अपने प्रत्येक अश्रुकण को दर्पण में परिवर्तित कर देना चाहती है ताकि प्रियतम ठीक से असीमता को देख सके। अर्थात् सदा-सर्वदा को मेरा प्रियतम मुझमें बस जाय)।

जब मैं हँसती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मेरा प्रिय मेरे ओठों की हँसी में मुझे स्पर्श करता है। मेरे हृदय में, मेरे रोने के रूप में उनकी स्मृति समाई है। तो मैं क्यों न विश्व के प्रत्येक परमाणु जाग्रत करके उनको हँसना और रोना सिखला दूँ। अर्थात् मैं चाहती हूँ कि विश्व के सम्पूर्ण प्राँगण में मेरे प्रियतम की स्मृति बस जाय।

गीत—४६ (तुम दुख बन इस पथ से आना)

शब्दार्थ—शूल—पीड़ा। पाटल—केसर। आतप—गर्मी। लय—मिल जाना, नाश हो जाना।

भावार्थ—कवयित्री अपने प्रियतम से प्रार्थना करती है कि तुम दुख और पीड़ा बनकर इस मार्ग से आना। अर्थात् वह पीड़ा का वर चाहती है।

काँटों में लगे हुए फूलों में जिस प्रकार कोमल केसर लगी हुई होती है उसी प्रकार ए प्रियतम ! तुम विरह-वेदना, पीड़ा तथा अश्रु में मेरे जीवन को खिलने देना । वह फूल भला हार क्या बनेगा जो अपने हृदय को पहले बिंधवाना नहीं सीख चुका है । अर्थात् कवयित्री का विश्वास है कि पीड़ा का होना प्रेम में अत्यधिक आवश्यक है । जो विरह-वेदना में जलना नहीं जानता वह प्रियतम का भला कैसे पायेगा ।

(उनका विश्वास है कि वेदना द्वारा ही प्रियतम की प्राप्ति संभव है । विरह-व्यथा ही कवयित्री की सर्वस्व है ।)

मैं वह सुगंध हूँ जो एक बार कलियों से उड़कर फिर उनमें वापस नहीं जाती । पर संसार सुगंध के अस्तित्व का कारण कलिका को ही समझता है, भले ही एक बार बाहर निकली सुगन्ध अपना नाता कलिका से तोड़ दे । अर्थात् पीड़ा के नाते ही मुझमें माधुर्य है और तुमसे सम्बन्ध है ।

अपनी विरह ज्वाला से तुम मेरा हृदय तिल-तिल जलने दो । इसकी विभूति (धूल, राख) में तुम अपने चरण-चिह्न छोड़ जाना । अर्थात् मैं चाहती हूँ कि मेरे प्राण सदा तुम्हारे वियोग में व्याकुल रहें और विरह-वेदना तथा स्मृति मुझमें निरन्तर वास करे ।

यदि तुम वरदान हो देते हो तो तुमसे सदा आँख-मिचौनी खेल सकूँ—यह वर दो । अर्थात् तुम सदा मेरे मन में समाये रहो ! तुम्हारा सदा मेरे साथ सम्पर्क चलता रहे । तुम्हें प्राप्त करने में मैं मर मिटूँ । मुझे जीवन में तुम्हारी ही खोज है । मिटकर ही मैं तुम्हारा स्पर्श कर सकूँगी ।

(कवयित्री अपने प्रियतम को सदा के लिए अपने हृदय में बसाना चाहती है । अपने को मिटाकर भी वह प्रियतम को प्राप्त करनां चाहती है) ।

हे प्रियतम ! जब तुम्हारे हृदय में मेरी पपीहे की पी-पी की पुकार के समान आर्तनाद समा जायगा तो संसार उसे बादलों में क्षण-क्षण में बनना और मिटना समझेंगे। अर्थात् तुम्हारे हृदय को जब मेरी विरह-वेदना का आभास मिल जायगा तो उसमें ऐसे ही रह-रहकर टीसन उठेगी जैसे रह-रहकर बिजली चमकती है।

तुम मेरे सुख-दुख में (विरह का दुख तथा मिलन का सुख) स्वप्नों में तथा श्वासों में बस जाओ। तुम भले ही चाहे जितने चुपके चुपके आओगे पर मन झट से तुम्हें पहचान लेगा और आँखें झट से कह देंगी कि यह 'तुम' हो अर्थात् मेरा मन तथा नेत्र तुम्हारे रूप से परिचित हैं।

जब तुमने जड़ संसार के पदार्थों के द्वारा मेरे जीवन का अपने हास्य से निर्माण किया तो फिर मेरे नेत्रों ने उन्हीं जड़ पदार्थों को (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश इन पंच-तत्वों से शरीर का निर्माण हुआ है) हँसना तथा खिलना सिखलाया। अर्थात् मेरे हास्य तथा रुदन से (हास्य तुम्हारे मिलने की आशा से और रुदन तुम्हारे वियोग के कष्ट से) यह जड़, पंचभूतों से निर्मित, शरीर सार्थक और सफल हो गया।

(जीवन की सार्थकता उसमें है कि जीव परब्रह्म की खोज करे और उससे सान्निध्य स्थापित करने के अमल में लगा रहे।)

कोहरा जैसे तेज गर्मी से लुप्त हो जाता है उसी प्रकार यह संसार भी मुझमें लुप्त हो जायगा। किन्तु हे प्रियतम ! आज तुम अपने रागों, गीतों द्वारा मेरी छोटी-सी वीणा को मत जगाना (मत बजाना)।

(कवयित्री कहती है कि मेरे जीवन को इसी प्रकार वियोग में जलने दो। मैं विरह में ही सन्तुष्ट हूँ। अपनी चेतना का

संचार मेरे प्राणों में मत करो। तुम्हारे अभाव में मैं अपनी पीड़ा को लेकर रहूँगी)।

गीत—४७ (जाग बेसुध जाग)

शब्दार्थ—हीरक-हार—हीरों का हार। सुभग—ऐश्वर्यशाली। रजनी—रात्रि।

भावार्थ—ऐ मेरे बेसुध मन जाग! इस बेसुधपने से काम नहीं चलेगा। संसार के माया-मोह में कब तक फँसा रहेगा। तूने अपने हृदय को त्याग तथा अश्रु-कणों से सजाया है। अश्रु-कणों की उपमा हीरक-हार से दी गई है। तुम प्रत्येक द्वार पर दुख की भिक्षा माँगने गये। अर्थात् विश्व के समस्त दुख को तुमने अपने ऊपर ओढ़ लिया। प्रत्येक के दुख को तुमने बटाया। शूल को छूकर फूल कर दिया तथा संताप को छूकर चंदन की भाँति शीतल कर दिया। संसार के दुख को तुमने अपना दुख समझा और उसे दूर करने के तुमने अमोघ उपाय बताये। हे महात्मा बुद्ध! तुमने संसार की वेदनाओं को सुख के रूप में परिवर्तित कर दिया। जीवन की वेदना और कष्ट ही अन्त में आनन्द का कारण बनता है। जीवन को जीवन बनाने के लिए पीड़ा अत्यन्त उपयोगी तथा महत्व की है। आज उन्हीं करुणा की मूर्त्ति गौतम बुद्ध के चरणों की ध्वनि तुम्हें फिर जगाने के लिये उपस्थित हुई। विश्व के प्राणियों जागो। उनके दिए हुए उपदेशों पर मनन करो। वह तुम्हें जगाने में समर्थ होंगे।

(कवयित्री गौतम बुद्ध से प्रार्थना करती है कि तुम अपनी करुणा तथा उपदेशों से अज्ञान तथा माया-मोह में पड़े, पीड़ा से सराबोर, संसार का दुख दूर करो, उनको सच्चा मार्ग-प्रदर्शन करो जिससे वह फिर माया-मोह में न फँसे तथा संसार के दुख न भोगे)।

हे भगवान कृष्ण ! तुम्हारी मुरली में वरदान (जीवन का माधुर्य) तथा तुम्हारे शंख में नाश (अन्याय, अत्याचार, अनैतिकता तथा अनाचार का नाश) छिपा है। तुम्हारी कृपा-दृष्टि पड़ते ही जीवन का संचार हो जाता है। तुम्हारे मृदु ओठों में विश्व की समस्त शोभा दिखाई पड़ती है अर्थात् भक्तों का हृदय तुम्हारे मधुर मुरली-वादन से आज भी भरा-पूरा है। आज भी उनमें मुरलीध्वनि की प्रतिध्वनि निनादित हो रही है। तुमने अपनी मुरली द्वारा विश्व को प्रेम का वरदान दिया। आज उसकी प्रतिध्वनि फिर क्षितिज के पार गूँज रही है। ए वृन्दावन जागो ! तुम मेरे हृदय में तथा समस्त विश्व के हृदय में वही मुरली तथा शंख की ध्वनियों के उद्देश्यों को जाग्रत करो जिससे संसार माया-मोह के बन्धन से छुटकारा पाये।

कवयित्री कहती है कि रात के घने अन्धकार-पूर्ण पथ में जिसकी श्वासों की मधुर गति सुनाई देती है, जो अपनी असीम सुगन्ध को पृथ्वी के छोटे-छोटे कणों में भी भर रहे हैं, जिनको विरह के जीवन के कारण काँटों की सेज तथा आँसुओं का ताज मिला है वे भाग्यवान हैं। ए सुभग ! उस खिले हुए प्रसन्न गुलाब-सा ही आज तू भी उठ। तू चैतन्य हो, जाग। प्रियतम आने ही वाले हैं। प्रसन्नता से जीवन को भर ले। रात बीत चुकी है।

(कवयित्री अपने प्रियतम से मिलना चाहती है। वह अपने मन को जगाती है, सावधान करती है। उसका मन बार-बार माया-मोह में फँस जाता है। अंतः वह गौतम बुद्ध तथा भगवान कृष्ण के कल्याणकारी उपदेशों से प्रार्थना करती है कि वे उसमें चैतन्यता भरें तथा अज्ञानता को हरें और उसके माया-मोह के बंधन को सदा के लिए काटें। कवयित्री बौद्ध-धर्म से प्रभावित

है। हिन्दू होने के नाते भगवान कृष्ण की तो वह भक्त है ही। हाँ, उसके ईश्वर निराकार हैं)।

गीत—४८ (क्या पूजा क्या अर्चन रे)

शब्दार्थ—अर्चन—पूजा करना। उत्पल—कमल।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि मेरे लिए पूजन कैसा और अर्चन कैसा। इसकी आवश्यकता ही नहीं है। मेरा लघुतम जीवन उसी असीम परब्रह्म का ही तो मंदिर है। मेरी श्वासें नित्यप्रति उसी का तो अभिनन्दन, बन्दना किया करती हैं। उसके पद-रज को धोने के लिए ही तो मेरे नेत्रों से जल उमड़ आता है। मेरे पुलकित रोम ही भगवान पर चढ़ाने के अक्षत हैं। मेरी पीड़ा ही चंदन है। मेरा वियोग के कारण जलता हुआ मन ही स्नेह से भरा हुआ झिलमिल करके जलता है। मेरे नेत्रों की पुतलियों से ही नवीन कमल खिलते हैं। मेरे स्पन्दन ही प्रतिक्षण धूप (सुगन्धित वस्तु) बन कर उड़ते रहते हैं प्रियतम का नाम जपते-जपते ही तो मेरे ओठ ताल दे रहे हैं तथा मेरी पलकें नृत्य कर रही हैं।

(जब मेरे प्रियतम का मेरे मन-मंदिर ही में निवास है और जब मेरे शरीर तथा जीवन का प्रत्येक अवयव पूजा रत है तो फिर मैं किसकी वाह्य पूजा-अचेना करूँ। कवयित्री ने सम्पूर्ण भाव से अपने को अपने प्रियतम को समर्पित कर दिया है।)

गीत—४९ (प्रिय सांध्यगगन मेरा जीवन)

शब्दार्थ—साध्य—साधना के योग्य। विराग—उदासीन भाव, त्याग। वीतराग—जिसने आसक्ति तथा राग का त्याग कर दिया हो। कैरव—सफेद कमल। अग—स्थावर, न चलनेवाला। परिणय—विवाह। झीने—तेज।

भावार्थ—हे प्रिय! मेरा साध्य तो यह आकाश है। यही मेरा जीवन है। यह धुँधला क्षितिज मेरे ही विराग का प्रतिरूप

है। अर्थात् प्रभात आने के पूर्व अंधकार था और इसी अंधकार को कवयित्री विराग कहती है क्योंकि उससे उसका कोई अनुराग नहीं था। प्रिय की याद में ही उसने रात बिता दी है। अतः कवयित्री के विराग के कारण ही क्षितिज धुँधला दिखाई देता था। यह जो प्रभात अपने साथ आकाश में छाई नवीन लालिमा लाया है यही मेरा सुहाग है। मेरा यह शरीर या जीवन जो छाया के समान ही क्षणभंगुर, क्षणिक तथा तथ्यरहित है, यही मेरा वीतराग है। अर्थात् मुझ में किसी प्रकार की विषय-वासना तथा माया-मोह नहीं है। रंगीन बादल प्रियतम की स्मृति से पूर्ण स्वप्न जान पड़ते हैं। प्रभात के आते ही प्रियतम की सुधि भी आ रही है।

(चूँकि आकाश को अपना साध्य तथा जीवन कवयित्री ने माना है, अतः मेघ तथा अरुणिमा आदि से पूर्णरूप से उसका तादात्म्य हो सका है।)

आकाश का सुनहलापन ही उसकी साधें हैं। यह जो घिरता हुआ घना अंधकार है, यही उसकी वेदना है। मेरा हास्य अश्रु को लिये हुआ है, जैसे कि मानो मूक संध्या का आकाश से मिलन हुआ है।

(रात्रि को कवयित्री को अपने प्रियतम की स्मृति बहुत व्याकुल करती है।)

मेरी श्वासों का समीर इस जग से स्मृतियों के रूप में सुगन्ध को ले आता है और उस सुगंध से जीवन के दोनों छोर, अर्थात् जीवन और मृत्यु-शोभा पाते हैं। मेरे रोम-रोम में कमलों का वन शोभायमान है।

(·ध्या के समय से ही कवयित्री को अपने प्रियतम की याद आना प्रारम्भ हो जाती है, अतः उसकी प्रत्येक श्वास

उसकी ही सुगन्धि भरी है। जीवन में तथा मृत्यु में प्रियतम की ही स्मृति समाई है। इसी से मेरा रोम-रोम पुलकित है)।

रात्रि के आरम्भ का दिन के अन्त से मिलन हो रहा है। ऐसा लगता है जैसे रात और दिन का विवाह हो रहा हो। आँसुओं के रूप में ओस के कण ढुलक रहे हैं। मेरे व्यतीत होते क्षण आज मुझे ध्रुव-से अचल जान पड़ते हैं।

(संध्या का समय अत्यन्त आकर्षक होता है। क्योंकि दिन और रात का गठबंधन उस समय होता है। ऐसे समय में कवयित्री अपने प्रिय की स्मृति में अश्रुमोचन करती रहती है और उसे बीतते हुए क्षण भी अचल जान पड़ते हैं)।

मेरी इच्छाओं के वाण स्वर्णिम हैं जैसे कि वे तेज तथा शीघ्रगामी सूर्य की किरणें हों। वे सूने असीम आकाश में चुभ कर नक्षत्ररूप पुष्पों के रूप में दिखाई देते हैं।

(कल्पना अत्यन्त मार्मिक है। कवयित्री की इच्छायें तारों के रूप में आकाश में प्रकट होती हैं।)

सुख-दुख रूपी पक्षी अब घर लौट चले हैं क्योंकि संध्या बेला है। स्थावर तथा जंगम तम को पोंछ रहा है अर्थात् अंधकार जा रहा है, विदा हो रहा है। वह चित्र-विचित्र मार्ग अब छिप गया है। ए अतिथि ! तुम मेरी पलकों में बसो)।

(विरह की रात के व्यतीत हो जाने पर विरह मिलन का दुख-सुख फिर नहीं रह जाता। अब अंधकार मिट गया है, तारे छिप गये हैं। अतः हे प्रियतम ! तुम मेरी पलकों में निवास करो)।

गीत—५० (राग भीनी तू सजनि निश्वास)

शब्दार्थ—रागभीनी—संगीत से युक्त। तन्द्रिल—अलसाये। असित—काले। तल—बाल।

भावार्थ—कवयित्री संध्या से कहती है कि ए सजनि ! तू

संगीत से युक्त है। तेरे निश्वास भी रँगीले अर्थात् मधुमय हैं। तेरे लोचनों में नवीन मस्त बना देनेवाला भाव मौजूद है। उसको ही देखकर अपने घोंसलों की ओर लौटते हुए पक्षियों को अपनी घोंसलों की याद उनके मधुर कलरव के रूप में फूट पड़ती है। अपने नीड़ की याद आने पर वे मस्त होकर गाने लगते हैं। ए संध्या ! तेरी गुलाबी चितवन में (अरुण आभा फैली होने के कारण) यद्यपि वे अपनी सुधि-बुधि भूले हुए हैं, तो भी जा वे अपने नीड़ों को ही रहे हैं। (हठीले शब्द का इसीलिए प्रयोग हुआ है।)

(संध्या के आकर्षक रूप तथा पक्षियों के मधुर कलरव का सुन्दर वर्णन है।)

संध्या के बाद कवयित्री ने रात्रि का वर्णन किया है। रात्रि अपने किसी पाताल का पुर त्याग कर अपने ही राग में बेसुध होकर अपने लजीले नेत्रों में चपल सपने संचित कर लाई है। रात्रि आँसुओं से सना कर (ओस के कारण) आकाश में फूल बिथरा रही है। (तारे छितरे हुए हैं।)

(रात्रि हो गई है। ओस गिर रही है। तारे निकल आए हैं।)

रात्रि के अधिक हो जाने से पलकें नींद से भारी होने लगी हैं जैसे कि स्वयं पल तंद्रित हो। इन अलसाई घड़ियों में काली रात के बालों में सुनहले बालों की चोटियाँ उलझी हुई हैं। (अंधकार में तारों का प्रकाश है।)

हे सजनी ! तेरी चुनरी के लाल तथा पीले रंग नीलम मणि के चूर्ण से भरे हुए हैं।

(नीला आकाश है। रात्रि काली है। उसमें संध्या का लाल रंग पीला दिखाई देता है क्योंकि संध्या की लाली में रात्रि का कालापन घुलता जा रहा है)

अंधकार की एक छोटी-सी रेखा ही तेरे चरणों को छू कर अनन्त और सीमाहीन समुद्र की भाँति गहरी हो गई है। अर्थात् अंधकार की एक छोटी-सी रेखा ने ही इतने विश्वव्यापी तथा घनघोर अंधकार का रूप ले लिया है। बादलों की तरी (नमी या नाव) लेकर तेरे गीत पार हो जाते हैं। अर्थात् रात्रि की धीमी झंकार में संगीत की-सी मधुरिमा हैं।

कवयित्री रात्रि से प्रश्न करती है कि हे रात्रि ! वह छायालोक कौन सा है जिसकी स्मृति प्रिय के द्रुत पदों से तुम्हारे आकाश रूपी अंक को रंगीन बना रही है। तेरी सिहरती हुई पलकें हँसते हुए ओठों को भी गीला किये दे रही हैं। अर्थात् रात सिहरी-सी ज्ञात होती है। ओस गिर रही है रात्रि की आकाशरूपी गोद में प्रियतम के पद-चाप अंकित हैं।

गीत—५१ (शून्य मंदिर में बनूँगी)

शब्दार्थ—अर्चना—पूजा। अगम—जहाँ पहुँच न हो। कुंतल—सिर के बाल।

भावार्थ—हे प्रियतम ! तुम्हारे शून्य मंदिर में मैं आज तुम्हारी प्रतिमा बनूँगी। भोले काँटे, यही मेरी अर्चना होंगे। (विरह-वेदना ही मेरी अर्चना होगी।) आँसुओं का खारा जल ही अर्घ्य होगा। करुणा में डूबा हुआ पवित्र मेरा दुख ही मेरा-पुजारी होगा।

(मंदिर में प्रतिमा, पुजारी, अर्चना, अर्घ्य आदि की आवश्यकता होती है। प्रियतम का मंदिर शून्य था। कवयित्री स्वयं उसकी प्रतिमा बनेगी। उनका दुख ही पुजारी होगा। अश्रु अर्घ्य होंगे। वेदना ही अर्चना होगी)।

नूपुरों का मूक स्पर्श विश्व को ध्वनित कर देगा, निनादित कर देगा। यह अगम (जिसका कोई आरपार नहीं है) आकाश ही कम्पनों का भिखारी होकर उतरे अर्थात् यह अगम्य आकाश

उन कम्पनों के लिए, जो मेरे नूपुरों के शब्द से ध्वनित होंगे, मुझसे भिक्षा माँगने नीचे उतर कर मेरे पास आने का कष्ट करें।

मेरे नेत्र एकटक खुले हैं। प्रत्येक रोम मेरा स्थिर है। मेरे अचल रोमों में समस्त गति आज मुग्ध होकर समा गई है। अर्थात् मेरे सिर का एक एक बाल, मेरा एक-एक रोम सब स्तम्भित होकर प्रियतम के अलौकिक रूप का पानकर रहे हैं।

(कवयित्री के अंग-प्रत्यंग उसके प्रियतम की रूप-माधुरी का पान कर रहे हैं।)

हे प्रियतम ! कोई साध मैंने नहीं पाल रखी है। राग और मद की लाली भी मुझसे बहुत दूर है। किसी प्रकार का अहंकार मुझमें नहीं है। तुम्हारी गाथा मूक भाव से शून्य चितवन में अंकित हो जायगी। अर्थात् मेरी शून्य दृष्टि में तुम्हारी समस्त गाथा मौन रूप से अंकित हो जायगी।

(कवयित्री कहती है कि मुझमें कोई महत्वाकांक्षा, कोई कामना शेष नहीं रह गई है। मद, अहंकार, माया, मोह से भी मैं दूर हूँ। मैंने तो पूर्णरूप से अपने को तुम पर समर्पित कर दिया है)।

गीत—५२ (अश्रु मेरे माँगने जब)

शब्दार्थ—निस्पंद—शान्त, स्तब्ध। मधुमास—बसंत। रविकर सूर्य की किरणें। सीकर—जल-कण।

भावार्थ—मेरा प्रियतम मुझसे नींद में मेरे आँसू माँगने को आया। वह स्वप्न के सदृश्य ही हँसता हुआ स्वप्न में मेरे पास आया। दिन की हँसी से आकाश में इंद्रधनुष अंकित हो गया। किरणों के रोमों में स्तब्ध अंधकार भी सिहरकर पुलकित हो गया।

(कवयित्री को प्रिय-मिलन के ही स्वप्न दिखाई देते हैं। विरह की वेदना के कारण उनके अश्रु प्रवाहित होते रहते हैं। उन्हें

लगता है कि जैसे उनका प्रियतम उनसे आँसू माँगने आया हो। उनके आने से अंधकार प्रकाश में बदल गया था।)

चन्द्र की ज्योत्स्ना हँसती हुई अमावस्या का अनुकरण करती हुई आई। वेदना की अग्नि जब मोम सी पिघलकर हृदय में बस गई; तब मृत्यु की अंजलि में विश्व ने जीवनरूपी सुधा रस भर दिया। भाव यह है कि जैसे गर्मी से मोम पिघल जाता है वैसे ही विरह-वेदना की ज्वाला से शरीर मोम के सदृश घुल जाता है। वैसे ही मृत्यु के उपरांत ही नया जीवन मिलता है। अतः मृत्यु सुधा रस (नवजीवन) देने वाली हुई। जीवन की तुलना अमृत से की गई है।

जैसे अमावस्या के बाद शुक्ल पक्ष आता है उसी प्रकार वेदना के बाद प्रिय मिलन तथा मृत्यु के बाद ही जीवन मिलता है। जीवन के बाद मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जीवन—यही तो विश्व का सनातन नियम है। कवयित्री को विश्वास है कि वह वेदना में घुलकर अपने प्रियतम को पा लेगी)।

पतझर के बाद ही तो मधुमास आता है। अतः कवयित्री कहती है कि पतझर से ओस की बूँदें माँगने बसंत ऋतु आई। अपनी अमर सुगन्धि को दान करके पुष्प मुरझाकर झर गए। सूर्य की किरणों में जलकर ही जल के कण बादलों के रूप में परिवर्तित होकर सार्थक होते हैं। अनन्त विकास अपनी गोद में नाश को लेने आया है। अर्थात् नाश के पश्चात् ही निर्माण संभव है। अपने को मिटाकर ही तब मैं प्रियतम को पाऊँगी। सृष्टि का यही नियम है कि नाश के बाद निर्माण होता है। पतझड़ के बाद बसंत होता है। जल-कण अपने को जला कर ही बादलों का रूप पाते हैं। अतः कवयित्री अपने को मिटाकर ही प्रियतम को प्राप्त करना संभव मानती है।

(रहस्यवादी भावना के अनुसार प्रियतम के दर्शन या झलक प्रभात बेला ही में मिलती है।)

गीत—५३ (क्यों वह प्रिय आता पार नहीं)

शब्दार्थ—पारिजात—हरसिंगार। अवगुंठन—घूँघट। अभिनव—सुन्दर, विचित्र। जावक—महावर। आँज—लगाकर, संवारकर। सीमान्त—वह स्थान जहाँ सीमा का अंत हो। मनुहार—प्रार्थना, विनय कंटकित—रोमांचित। पाटल—एक पौधा विशेष। आलोक-यान—प्रकाश का रथ। पाथेय—मार्ग का संबल (सहारा)। अभिसार—नायक तथा नायिका का प्रेम-मिलन के लिए संकेत-स्थल पर जाना।

भावार्थ—वह प्रिय मुझसे मिलने के लिए इस पार क्यों नहीं आ रहा है। कवयित्री अपने मन में सोचती है कि अवश्य ही इसमें कोई रहस्य है। चन्द्रमारूपी दर्पण में देखदेखकर मैंने अपने अंधकाररूपी बाल सुलझा लिए हैं। असंख्य किरणों के घूँघट में से मैंने तारकरूपी पारिजात के फूलों को चुन-चुनकर अपनी चोटी में गूँधे हैं। मेरा यह सुन्दर तथा विचित्र, शृंगार भी आज क्यों प्रियतम को रिझाने में असमर्थ रहा? कोई बात है अवश्य कि वह मुझ पर रीझ कर मेरे पास नहीं आते।

(स्त्रियाँ अपने पतियों को रिझाने के लिए शृंगार करती हैं। कवयित्री ने भी यही किया है। किन्तु तो भी वह उनके पास नहीं आया है)।

मेरे फीके (वियोग के कारण) लाल ओठों पर धीमी मुस्कान है। (प्रियतम के मिलने की आशा से।) चरणों की गति के कारण मेरे पैरों में लगी महावर लाल दिखाई देती है। अपन गीली (रोने के कारण) पलकों पर मैंने स्वप्न सँजो रखे हैं। मेरी आँखों की कोरों में मेरे द्वारा सजाई आँसुओं की माला

सुशोभित है। युगों-युगों से प्रतिपल मैं स्पन्दन के बहाने अपनी बिनती, खुशामद क्या उनके पास नहीं भेज रही हूँ ? किन्तु तो भी वह पता नहीं क्यों इस पार नहीं आते।

(रूठे हुए पति को खुशामद तथा बिनती से मनाया जाता है। कवयित्री ने यह भी निरंतर किया है। महावर, अंजन आदि से अपना श्रृंगार तो कर ही लिया है। अश्रु और हास्य दोनों ही वेदना और मिलन की उत्सुकता को प्रकट करते हैं किन्तु तो भी आश्चर्य है कि प्रियतम का हृदय क्यों नहीं पसीजता ?)

प्रेमी-प्रेमिका के मिलन के लिये एकान्त स्थान तथा शान्ति और सन्नाटा चाहिए। मैं इसीसे पपीहे का 'पी कहाँ-पी कहाँ' बोलना बन्द करा आई हूँ। कोयल को भी मैं सुला आई हूँ कि वह भी कुहू-कुहू न कर सके। मौलश्री तथा हरसिंगार के पुलकित वृक्षों ने भी अपनी शिथिल श्वास को रोक लिया है। वे भी निस्तब्ध हैं। उनके भी पत्ते नहीं हिल रहे हैं। नीरव जग पर समीर भी सोया है। उस पर स्मृतियों का भार भी नहीं है। इस प्रकार से सर्वत्र शान्ति और निस्तब्धता व्याप्त है। अब तो तुम आओ। पता नहीं अब भी तुम क्यों नहीं आते ?

(शान्त वातावरण ही अभिसार के लिए उपयुक्त होता है। कवयित्री बार-बार अपने प्रियतम से आने की प्रार्थना करती है।)

समस्त दिशायें सिहरी-सी हैं। दिशाओं के अन्त में आकाश में घिरे हुए कोमल बादल पाटल के श्वेत पत्तों-से लगते हैं। उस पार प्रकाश-रथ रुका हुआ है और इस पार प्राणों का कोलाहल है। अर्थात् मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ प्रियतम से मिलने को। आज श्वास-प्रश्वास के तार भी ठीक से नहीं बुने जा रहे हैं अर्थात् श्वासों की गति में भी अस्वाभाविकता आ गई है, क्योंकि मैं प्रियतम से मिलने की प्रबल इच्छा से बेसुध-सी हूँ।

दिन तथा रात रूपी पथिक थक कर लौट गए। प्रत्येक पल और क्षण भी उन्हें मना-मनाकर हार गए, निराश हो गए। मुझे तुम्हारी मधुर सुधि बार-बार आती है। बस केवल मेरा यही पाथेय शेष रह गया है। विरह का मार्ग सूना है और अपार है। फिर यह कौन कह रहा है कि मेरा अभिसार अब तक सूना नहीं है, अर्थात् मेरा प्रिय से मिलना हो गया है ? वह इस पार क्यों नहीं आते।

(मैं प्रिय से मिलने को व्याकुल हूँ। समय बीतता जाता है। मैं सब प्रयत्न कर के हार चुकी हूँ। प्रियतम मेरे पास नहीं आते हैं)।

गीत—५४ (क्यों मुझे प्रिय हो न बंधन)

शब्दार्थ—तम-सिन्धु—अंधकार का समुद्र। तूल—रुई। पूत—पवित्र। रज—धूल। अभिषेक—राज्य-तिलक। तिमिर-हारी—अज्ञानांधकार को दूर करने वाले भगवान। निर्बन्ध—बन्धनमुक्त। तार—प्राण।

कवयित्री कहती है कि मुझे बन्धन प्रिय क्यों न हों। मेरे अंधकाररूपी समुद्र के लिए मेरे प्रियतम का आलोक सतरंगी तट सा बन गया। अर्थात् मेरे अज्ञानांधकार को दूर करने के लिए स्वयं साक्षात् ब्रह्म मुझे उपदेश देता है, ज्ञान देता है। धूल तथा जल से मुक्त बादलों के अंक में बिजली भी मलिन सी दिखाई देती है। अर्थात् अज्ञान तथा माया-मोह के कारण ज्ञान में भी मनुष्य को पूर्ण प्रकाश नहीं मिलता, या वह अपनी मूर्खता के कारण नहीं पा सकता। मुझे तो अब ऐसा ज्ञात होता है कि वह प्रियतम स्वयं मेरे स्मृति-पटल पर अपना रूप मानो अंकित कर रहा हो।

(आत्मा का बंधन परमात्मा से है। मुझे मेरा यह बन्धन

अत्यन्त प्रिय है। ब्रह्म का ज्ञान मेरी अन्तरात्मा में प्रकाशित है। मेरा प्रियतम तो मेरे अंदर ही बैठा है)।

मेरी अमावस्या का अभिषेक चाँदनी कर रही है। भाव यही है कि ब्रह्म आनन्द-स्वरूप है। अत: दुख को दूर करके सुख देता है। मेरी चेतना आज मृत्यु तथा जीवन के दोनों पुलिनों को एक कर रही है। अर्थात् आत्मा, परमात्मा का अंश है अत: अजर, अमर, अविनाशी है। मेरे प्राणों का संदेश ही मेरे अन्दर प्रिय दूत बनकर स्पन्दन करता है।

(मेरे हृदय में ब्रह्म के अस्तित्व से मेरा हृदय आनन्द से पूर्ण है। मेरा ब्रह्म, मेरी अन्तरात्मा मुझे ज्ञान का प्रकाश दे रही है)।

ए सजनी ! मैंने अपने मन में प्रलय की वायु पाल रखी है। (मन को स्वर्ण-पिंजर कहा है।) मेरे हृदय में माया-मोह का वास हो गया है। किन्तु ब्रह्म की कृपा से आज घना अन्धकार भी प्रकाश के रूप में परिवर्तित हो गया है। अर्थात् अब मुझे ज्ञान हो गया है और तब फिर माया, मोह, वासनाएँ, इच्छाएँ आदि स्वत: ही नष्ट हो गई हैं, मिट गई हैं। मेरे हृदय में रुई के सदृश समाई हुई आग भी अब मुझे चंदन के समान शीतल तथा शान्तिप्रद ज्ञात होती है। अर्थात् विरह की ज्वाला भी कवयित्री को सुखप्रद ज्ञात होती है क्योंकि उसी के द्वारा उसे अपने प्रियतम के दर्शन होंगे।

मुझे विस्मृति के पंथ में अपने प्रियतम के पदचिन्ह निधि के समान प्राप्त हुए हैं। ब्रह्म के द्वारा अज्ञानावस्था से छुटकारा पाकर मुझे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हुआ है। मेरे असफल तथा खोये हुए स्वप्नों को गिन-गिनकर मेरी वेदना उन्हें लौटा रही है। मुझे अपने प्रियतम से मिलन की घड़ियाँ बार-बार याद आ रही हैं। मेरे नेत्रों में चिर-प्रतीक्षा पवित्र अंजन के रूप में घुली

हुई है। अर्थात् मेरे नेत्र चिरकाल से प्रियतम के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आज मेरा खोजरूपी पक्षी गाता हुआ बसेरा लेने चला है। वह मेरे सुख-अश्रु से कह रहा है कि तू मेरा चिरंतन प्यार है। दुख में और सुख में दोनों में ही आँसू निकलते हैं। इसीलिए कवयित्री कहती है कि प्रियतम का मिलन-सुख आँसुओं से कह रहा है कि तुम मुझे सदैव प्रिय हो। मेरे बीते हुए युगों के विकल श्वास ही मेरे स्पन्दन बन गए हैं।

प्रिय से मेरा साक्षात्कार हो गया है अतः अब मुझे उसकी खोज करने की आवश्यकता नहीं रही। मुझे तो अपने सुख-अश्रु तथा विकल श्वास अत्यन्त प्रिय हैं)।

इस पंचभौतिक शरीर में ब्रह्म का निवास है। जैसे उस ब्रह्म को इसमें बन्धन मिला है। मैं पंचभूत से बनी जब स्वयं बंदिनी हूँ तो मैं ब्रह्म को भी बन्धन में लूँगी। आत्मा का निवास शरीर में है। और आत्मा परमात्मा का अंश है। इस शरीर में आत्मा की झंकार आकाशगामी है। जो तिमिरहारी है वह स्वयं इस मलिन दीपक से बँधा है।

(आत्मा अनन्त प्रकाशवाली है। ब्रह्म का निवास पंचतत्व से निर्मित शरीर में है। ब्रह्म बंधन-मुक्त है पर मैं अपनी बेड़ियों द्वारा उस ब्रह्म को भी बाँधे हुए हूँ)।

नित्य-प्रति सुनहली संध्या के पद से लिपट कर अँधेरा आता है। विरहरूपी पुलकायमान पक्षी उड़ा चला आ रहा है मानो वह साक्षात् मेरा मिलन हो। क्या मालूम उस पर अन्धकार है या प्रकाशयुत दिन है।

(विरह के बाद ही मिलन आता है। साधना के पश्चात् ही ब्रह्म से तादात्म्य होता है। इस अवस्था के पश्चात् उस पार अन्धकार है या प्रकाशयुत ब्रह्म, यह मैं कैसे कहूँ।)

गीत—५५ (जाने किस जीवन की सुधि ले)

शब्दार्थ—रंजित कर दे—रँग दे। अरुण राग—प्रेम की धारा। मण्डन—श्रृंगार। यूथी—जूही की कली। कवरी—गुथी हुई चोटी। पाटल—केशर। अलसित—अलसाए। विरज—धूलरहित। चर्चित—लेप किया हुआ। कंटकित—रोमांचित।

भावार्थ—न जाने किस जीवन का संदेश लेकर यह मधु बयार लहराती आ रही है। ओ वायु! तू नवीन अशोक वृक्ष के अरुण राग को लेकर मेरे शिथिल चरणों को रंजित कर दे। मेरे श्रृंगार के लिए तू रजनीगंधा के पुष्प के पराग को ला। तू मेरी चोटी को जुही की कलियों से सँवार दे।

(कवयित्री के लिए वायु किसी अलौकिक जीवन का संदेश लाती है। अतः संदेशा पाकर अपने प्रियतम को मुग्ध करने को वह श्रृंगार करती है)।

मेरे हिम-से सफेद दुपट्टे को तू गुलाब के सुगंधित रंगों से रँग दे। तू मेरी जिह्वा में मौलश्री के झरते हुए फूलों को गूँथ दे, जिन पर भ्रमर गुंजार रहे हैं, ताकि मैं भ्रमरों की भाषा में ही अपने प्रिय का गान गाऊँ। तू रात्रि से अंजन माँग कर मेरे अलसाए नेत्रों में लगा दे।

(मेरा दुपट्टा रँगा हुआ और सुगन्धयुत हो। मेरी वाणी में मेरे प्रिय का गान हो। मेरे नेत्रों में अंजन हो। मेरे प्रियतम जो आनेवाले हैं।)

मेरे तारकरूपी नेत्रों से बहता हुआ जल आकाश में भरी हुई धूल को आज सींच कर बिना धूल का बना रहा है। केशर से भरे हुए पुष्प मार्ग में बरस रहे हैं। हरसिंगार मार्ग में पुष्प बिछा रहा है। पुलकित आम के वृक्षों से पागल कोकिल मुझको ही पुकार उठती है। लहराती हुई मधु बयार प्रियतम का संदेशा लिए हुए आती है।

(स्वागत की तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं। दर्शन के लिए तीव्र उत्सुकता लिए मुझे देखकर पिक भी मस्त होकर पुकार उठती है। वायु संदेशा लाई है कि कोई आनेवाला है)।

गीत—५६ (प्रिय पथ के यह शूल मुझे प्रिय)

शब्दार्थ—शूल—कष्ट। तमाल—एक वृक्ष विशेष। मुकुल—कली।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि प्रिय के मिलने के मार्ग में यह काँटे तथा बाधाएँ भी मुझे प्रिय हैं। मेरी यह स्मृति कि प्रियतम से भेंट होने पर यह जीवन सोना हो जायगा, मुझे अत्यन्त प्रिय है। जलने और तपने के बाद, कठिनाइयों को पार करने के बाद जीवन महत्वपूर्ण हो जायगा। ए प्राण! उस ज्वाला के देश को चल जहाँ अङ्गारे ही हैं—अर्थात् कष्ट, पीड़ा, विरह-वेदना हो है।

(कवयित्री का विश्वास है कि जीवन को महत् बनाने के लिए पीड़ा और कष्ट आवश्यक हैं। अतः उसे विरह वेदना ही प्रिय है।)

अन्धकाररूपी तमाल वृक्ष के फूल गिर जाने पर प्रकाश ने अपनी पलकें खोली हैं। अर्थात रात के जाने के बाद दिन निकल आया है। मैंने उस बेला में प्रथम बार दुख में सुखरूपी मिश्री घोली है। हे प्रियतम! तनिक रुक जाओ। दुख के कारण मेरे आँसू खारे हैं। और जो कुछ है मेरे पास उसे मैं तुम्हारी भेंट करना चाहती हूँ।

(वह कहती है—सिवा खारे आँसू के मेरे पास है ही क्या ?)

मेरी छाँह को ओढ़कर रात उजियाला देती है। रात्रि में मेरे प्रियतम का ही प्रकाश है। उन्हीं के मृदुल चरणों को चूमकर पृथ्वी के रजकण मुकुलों की माला के रूप में बदल गए हैं। पृथ्वी की धूल से ही सुन्दर फूल खिलते हैं, यह सब मेरे

प्रियतम की ही माया है। आकाश में चमकते हुए तारे मेरा ही तो चिर इतिहास है।

(संसार में जो कुछ भी सुन्दर, प्रकाशयुक्त तथा महत् है वह सब मेरे प्रियतम का ही प्रतिरूप है। ब्रह्म अनन्त प्रकाशवान है—यह बात तारे चमककर बताते हैं।)

मेरी आकुलता ही आज तन्मय (तल्लीन हुई) राधिका हो गई है। विरह ही आराध्य बन गया है। फिर मेरे लिए द्वैत की बाधा कैसी। (द्वैत सिद्धांत में ईश्वर तथा आत्मा की भिन्न-भिन्न सत्ता मानी गई है। कवयित्री का संकेत इस दार्शनिक सिद्धांत से है।) मैंने तो स्वयं को खोकर उस ब्रह्म को पा लिया है। इसलिए जीत मेरी हुई है और हार हैं मेरे प्रियतम।

(कवयित्री ने अपनी आकुलता की उपमा तल्लीन राधा से दी है। विरह ही मेरा आराध्य है। तब मैंने अपने प्रियतम को समर्पित करके पा लिया है।)

गीत—५७ (मेरी है पहेली बात)

शब्दार्थ—सिञ्चताल—सफेद चाँदी का दुपट्टा। सुभग—ऐश्वर्यशाली। तूल—रुई।

भावार्थ—मेरी बात एक पहेली है। रात एक झीना श्वेत दुपट्टा ओढ़े है। उसके दुपट्टे में लगे हुए मोती पृथ्वी पर गिरकर जल की बूँदों का रूप ले लेते हैं अर्थात् ओस गिर रही है। मेरी पलकों में स्वप्न विश्राम कर रहे हैं। उन पलकों से बार-बार आँसू गिर रहे हैं। ए सजनी! मेरे अन्दर इतनी करुणा भरी हुई है जितनी यह रात करुण है।

(प्रियतम के अभाव में उसकी दशा अत्यन्त करुण है।)

मेरा प्रियतम अंधकाररूपी विष को पीकर मुस्करा कर मधुर राग छेड़ता है। मैं भी आँसुओं के खारेपन को पीकर प्रतिदिन अपने स्नेह का रस बाँटती हूं। (ब्रह्म रात्रि के अंधकार को समाप्त

करके दिन का प्रकाश बिखेरता है। और यह प्रकाश ही जीवन-दान देता है। मैं उतनी ही सुभग हूँ जितनी सुभग यह प्रभात वेला है।)

ताप से जर्जरीभूत इस संसार के हृदय में रुई के समान बादल चारों ओर घिर आए हैं। वे आकाश भर में ऐसे ही फैले हैं जैसे रुई। दुख से तपने के कारण ही मेरा हृदय उमड़ा है। ए सजनि ! मैं उतनी ही सजल हूँ जितनी सजल यह बरसात है।

(आकाश में बादल जैसे संसार के संताप के कारण घिर कर छा रहे हों। मेरा हृदय भी करुणा से घिरा आ रहा है। मेरी आँखों में करुणा का जल मौजूद है।)

गीत—५८ (मेरा सजल मुख देख लेते)

शब्दार्थ—वारीश—समुद्र। ज्वाला-जल—ज्वाला में जलनेवाला। नीलम-तुला—नीलम मणि की बनी तराजू (आँखों की पुतली)। श्रांति—थकावट। भ्रांति—भ्रम। अलसित—आलस्यपूर्ण। विजड़ित—जड़ित। सुभग—ऐश्वर्यशाली।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि हे प्रियतम ! तुम मेरा अश्रुओं से पूर्ण मुख देख लो। यह करुणा से भरा हुआ मुख देख लो। मैंने काँटों का सेतु (बाँध) बनाकर बिरहरूपी समुद्र का जल रोका है। और अपनी फूलों के समान पलकों-रूपी प्यालियों में विष बाँटा है। अर्थात् मेरी करुणा और वेदना में विरह का अपार समुद्र लहरा रहा है। अपने आँखों से गिरते हुए आँसुओं के रूप में विश्व में दुख ही बाँटा है।

(कवयित्री कहती है कि मैं वेदना से पूर्ण हूँ। दुखित संसार को मैंने केवल दुख ही बाँटा है। मैं क्या करूँ। मेरे पास इसके अतिरिक्त कुछ बाँटने को था ही नहीं।)

विरह-वेदना के दुखपूर्ण क्षण मुझे सुखमय प्रतीत होते हैं। तथा सुख से पूर्ण संसार भी मुझे दुखप्रद प्रतीत होता है। यदि तुम मुझे ज्वाला मे जलनेवाले देश में भेज देते तो तुमसे पूछने वाला ही कौन था।

(कवयित्री के जीवन में पीड़ा है। वह कहती है कि यह तुम्हारी इच्छा थी कि मैं निरन्तर वेदना की ज्वाला में जलूँ। तो फिर वही सही।)

मेरी नीली पुतलियाँ जो नीलम के तराजू के समान हैं, उस पर मैंने अपने अश्रु रूपी मोतियों के बाँटों से प्यार को तौला है। मेरा भोला प्राण न जाने कब से मृत्यु से व्यापार कर रहा है। अर्थात् मेरे प्राणों में मृत्यु सदृश दारुण पीड़ा समाई है। मैं सदा आत्म-बलिदान करने को प्रस्तुत हूँ। प्रेम के कारण मेरे अश्रु प्रवाहित हैं। किन्तु मेरा तादात्म्य मेरे प्रियतम से नहीं हो पाया है। अत: मेरे प्राण दारुण पीड़ा से व्याप्त हैं। भ्रांतिमय कण तथा श्रान्तिमय क्षण ! तुम मुझे वरदान के समान हो, यदि तुम मेरी शेष ममता (ममत्व) भी मुझसे माँग लेते। अर्थात् प्रियतम के विरह में मेरी समस्त ममता प्रवाहित है।

(कवयित्री अपने प्रियतम को अत्यधिक प्रेम करती है। उसका समस्त उन्हें समर्पित है।)

उस प्रियतम की खोज में मेरे पद चल रहे हैं, पलकें चल रहीं हैं, स्पन्दन भी चल रहा है। अर्थात् मेरा समस्त जीवन, समस्त प्राण गतिशील हैं। भाव यह है कि नेत्र उनके दर्शन की प्रतीक्षा में हैं। मेरे शरीर की प्रत्येक धड़कन उन्हीं की खोज कर रही है। किन्तु मेरा धूमिल क्षितिज मुझसे दूर होता चला जा रहा हैं। ज्यों-ज्यों मैं मंजिल की ओर बढ़ती हूँ, मेरी मंजिल और दूर हटती जा रही है। मेरी वेदना अत्यन्त तीव्र है। उसके कारण मेरा प्रियतम मुझे मुझसे दूर, अति दूर लग रहा है।

मेरे अंग अलसाये हुए हैं। मेरे प्राण विजड़ित हैं। तुमने जो अनेक बार हँसकर मुझे हरा दिया है उसी को मैं अपनी विजय मानती हूँ।

(प्रियतम की प्राप्ति के लिए मेरा अंग-प्रत्यंग गतिशील है। मैं विरह पीड़ा से व्याकुल हूँ।)

हे देव ! न जाने कौन सी हाला मेरे नेत्रों में घुस गई है। न जाने कैसी मस्ती इन नेत्रों में समाई है जिसके नशे को पीकर समस्त विश्व तथा समस्त तारागण मस्त होकर झूम रहे हैं। प्रियतम ! घने अंधकार के रूप में तुम्हीं मेरी साधना हो। तुम मेरा अच्छे रंग का घूँघट उठाकर मेरे मुख पर आँसुओं के कारण पड़ी हुई रेखाओं को गिन लेते हो। अर्थात् तुम्हें प्रेम तथा वेदना का पता है।

(कवयित्री कहती है कि मेरे प्रेमाश्रुओं में समस्त संसार को मस्त बना देने की क्षमता वर्तमान है। विरह-पीड़ा के द्वारा मेरी तुमसे सान्निध्यता होती है। तुम मेरी पीड़ा से पूर्ण रूप से परिचित हो।)

मेरे थके हुए शिथिल चरणों में बँधे हुए नूपुरों से रुनझुन शब्द होता है, जो करुण ध्वनि होती है, वह मेरे विरह के इतिहास को कहती है। कहीं यह ध्वनि तुम्हारे कानों में पड़ जाती तो कितना अच्छा होता। तब तुम अपने चंचल चरणों को धरते हुए मेरे हृदय में अचल होकर विराजमान रहते। तुम मुक्ति को मेरे ऊपर निछावर कर देते तथा अपने निर्वाण के सन्देश को भी मेरे कारण खो बैठते। अर्थात् मेरे अपार प्रेम का परिचय पाकर तुम अपनी मुक्ति तथा निर्वाण को भी मेरे ऊपर वार देते।

(मेरे जीवन का इतिहास विरह का इतिहास है। मैं अपने

प्रेम के फल-स्वरूप अपने ब्रह्म को अपने हृदय में स्थापित करूँगी, बैठाऊँगी ।)

गीत—५६ (विरह की घड़ियाँ हुई अलि)

शब्दार्थ—यामिनी—रात्रि । आह्वान—बुलाना । अन्तर्हित—छिपा हुआ । सांध्य—संध्या-काल ।

भावार्थ—मुझे विरह की घड़ियाँ मिलन की घड़ियों के समान मनोरम जान पड़ती हैं । अत्यन्त दूर के नक्षत्रगण भी मुझे इतने ही समीप जान पड़ते हैं जैसे मेरी आँखों की पुतलियाँ । मौन शांत आकाश में भी आज मुझे अपनी विरह-वेदना के कारण किसी के आह्वान (बुलाने) की ध्वनि गूँजती सुनाई देती है । आज मेरे छोटे प्राणों का अनुगमन (अनुसरण) निःसीमता कर रही है । वह अपने प्रियतम को प्राप्त करने को व्याकुल है ।

मेरा प्रत्येक स्पन्दन युग-युग की अकथ कहानी कह रहा है । मेरे प्रियतम के मधुर हास्य के कारण मेरे आँसुओं का खारा जल भी मधुर हो गया है । मेरा प्रत्येक निश्वास मूक है । मुझे अपने प्रियतम के नवीन स्वप्न देखने का अनुराग हो गया है । अर्थात् मैं प्रिय के मिलन का स्वप्न देख रही हूँ । मिलन की प्रतीक्षा तथा आशा की तीव्रता के कारण मेरे श्वास भी रुक-से गये हैं, उनकी गति मन्द हो गई है ।

हे सखी ! मेरे बीते हुए विफल धुँधले (अस्पष्ट इसलिए हैं क्योंकि जा चुका है और पकड़ से बाहर है) 'कल' का रूप 'आज' में परिवर्तित हुआ अन्तर्हित है । मेरे विरह में मिलकर मिलन भी एकाकार हो गया है । निराश पुजारिनी के समान स्मृति अब मेरी प्रतीक्षा कर रही है । अर्थात् जब प्रियतम से मेरा तादात्म्य हो गया तो प्रियतम के स्मरण का प्रश्न ही कहाँ रहा । इसीलिए कवयित्री ने स्मृति को निराश पुजारिनी कहा है ।

(कवयित्री का ब्रह्म से तादात्म्य हो गया है अतः अब उसके लिए विरह तथा मिलन का प्रश्न ही नहीं है।)

मेरे ही रँगीले भाव संध्या के आकाश में फैलते हैं। मेरे गीले पुलक (कम्पन) जो मेरे रोम-रोम में समाये हैं, वही काले आकाश के तारागण हैं। अर्थात संध्या की अरुणिमा में, आकाश तारों में सब में मेरे ही भाव छिपे हुए हैं। बन्दिनी होकर मैं बन्धनों की स्वामिनी हो गई हूँ, अर्थात् मैंने बंधनों को जीत लिया है, उन पर विजय पा ली है।

(कवयित्री कहती है कि संसार तथा प्रकृति में मेरी ही भावनाएँ साकार हो गई हैं।)

गीत—६० (शलभ मैं शापमय वर हूँ)

शब्दार्थ—शलभ—पतंग। आगार—खजाना। क्षार—राख। निश्वास—जो श्वासें बाहर निकलती हैं। धूम—धूमिल। अवसान—अन्त।

भावार्थ— मैं ऐसा पतिंगा हूँ कि जिसे वरदान भी शाप के समान है। मैं किसी का निष्ठुर दीप हूँ। जैसे दीपक निठुर होकर यह चिंता नहीं करता कि पतिंगा मेरे ऊपर जल मरता है, वैसे ही मैं निष्ठुर दीपक के समान जलनेवाली हूँ। दीपक की जलती हुई शिखा (ऊपर का भाग) ही मेरा ताज है और उससे फूटने वाली चिनगारियाँ ही मेरे शृंगार की सामग्री है। अग्नि ही मेरा अक्षय कोष है। मेरी रंगशाला (केलि भूमि) अंगारें हैं। नाश की स्थिति में भी किसी की जीवित सुन्दर साध हूँ।

(कवयित्री ने अपने को दीपक माना है। दीपक की लौ उनका ताज है। उनकी चिनगारियाँ ही उनका शृंगार है। आग मेरा कोष है। अंगारे मेरी क्रीड़ा-भूमि हैं—कवयित्री यह कहती है। उनके जीवन में वेदना तथा ज्वाला ही है।)

नयन में रहकर भी मेरी पुतलियाँ सदा जलती रहेंगी। (वियोग ज्वाला के कारण) यद्यपि आँखों में जल है (आँसू हैं) किन्तु जल के होते हुए भी ज्वाला प्रज्ज्वलित ही रहेगी। वह ही मुझे कोष के समान प्रिय होगी। प्रचंड अग्नि ही मेरी समाधि होगी अतः मैं उन्हें अपने प्राणों में कैसे बसाऊँ ? मैं तो मृत्यु का मंदिर हूँ अर्थात् नश्वर मैं अनश्वर ब्रह्म को अपने अन्दर कैसे बसाऊँ ? वह इसमें कैसे निवास करेंगे ?

(कवयित्री व्याकुल है। उसकी समझ में नहीं आता कि वह ब्रह्मसे कैसे तादात्म्य स्थापित करे क्योंकि वह अपनी कमियों और अभावों को जानती है।)

यह सत्य है कि मेरे नेत्रों से अग्नि-कण झर रहे हैं (विरह-ज्वाला के कारण) किंतु झरने के बाद उनकी राख ठंडी हो जाती है, वह ठंडी राख के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। मेरे पिघलते हुए हृदय से (जलन के कारण) निकलते हुए निश्वास काले धुएँ के रूप में हो जाते हैं। (विरह-वेदना की प्रचण्डता, तीव्रता के कारण) मैं वह राख का ढेर हूँ जिसमें केवल अग्नि नहीं है अर्थात् जिसकी अग्नि बुझ चुकी है।

(कवयित्री की विरह-ज्वाला इतनी प्रचंड है कि निश्वास निकलने के पश्चात् काले धुँआ का रूप ले लेते हैं। वह अपने को प्रियतम के वियोग में जला होने के कारण राख का ढेर समझती है किन्तु वह अपनी पीड़ा ही में संतुष्ट है।)

मुझे ज्ञात नहीं है कि स्वप्न में मुझे जगाने कौन आया था। मुझे उनके दर्शन हुए। उन्होंने मुझे स्पर्श किया। उन अंगुलियों द्वारा मधुर स्पर्श की याद में मुझे युग बिताने हैं। वह स्मृति अत्यन्त मधुर भी है और पीड़ाजनक भी, क्योंकि अब तो वे सदा को मेरे पास से चले गए। रात्रि के हृदय में (उस मिलन

की स्मृति के फलस्वरूप) दिवस का बाण चुभा हुआ है। मैं वही बाण हूँ।

(रहस्यवादी कवि प्रभात में ही मिलन-वेला मानते हैं और रात्रि को विरह वियोग वेला। उस समय प्रियतम-मिलन नहीं होता।)

(स्वप्न में कवयित्री को अपने प्रियतम के दर्शनों की झलक मिली। उसके बाद से अब उसे वियोग के युग बिताने हैं।)

मेरा आरंभ शून्य से था अर्थात् रात्रि के घने अंधकार में मेरे विरह का जन्म हुआ और उसका अंत प्रभात के मिलन-काल में होगा। मेरे व्याकुल प्राणों के लिए केवल अंधकार ही मेरा साथी है। अर्थात् अब विरह ही विरह मेरे लिए शेष है। किन्तु मैं विरह में ही संतुष्ट हूँ। मिलन का नाम मत लो।

(कवयित्री अपनी पीड़ा तथा विरह वेदना से पूर्ण संतुष्ट है और अमूल्य निधि की भाँति उनका परित्याग करना नहीं चाहती।)

गीत—६१ (मैं नीर भरी दुख की बदली)

शब्दार्थ—नीर भरी—जल (आँसुओं) से भरी। आहत—घायल। निर्झरिणी—नदी। अविरल—घना। सिहरन—कम्प।

भावार्थ—मैं नीर से भरी हुई दुख की बदली (मेघमाला) हूँ। दुख के कारण मेरे अश्रु सदा प्रवाहित रहते हैं। मेरे प्रत्येक स्पन्दन में एक चिर निस्तब्धता व्याप्त है। मेरे क्रन्दन में इस चोट खाए हुए पीड़ित विश्व का हास्य बसा हुआ है। मेरे नेत्रों में पुतलियाँ क्या चमकती हैं, जैसे दीपक जल रहे हों। विरहिणी होने के कारण मेरे नेत्रों से अश्रु की नदी प्रवाहित है।

मेरा पग-पग संगीत से भरा है। मेरे स्वप्नों में श्वासों का पराग झर रहा है। आकाश के नवों रङ्ग मेरा दुपट्टा बने हैं। मेरी छाया में मलय-बयार पली है।

(इन्द्रधनुष को कवयित्री ने दुपट्टा माना है।)

मैं क्षितिज की भवों पर धुएँ के रूप घिर गई हूँ। मैं चिंता का अविरल भार बनी हूँ। मैं विश्व के रजकणों पर जल-कण के रूप से बरस पड़ी हूँ।। अर्थात् मैंने अपनी पीड़ा और अश्रु से संसार को सराबोर कर दिया है और इस प्रकार पृथ्वी को उर्वरा करके नवजीवन-अंकुर बनकर मैं प्रस्फुटित हुई हूँ।

(कवयित्री का विश्वास है कि पीड़ा, अश्रु-मोचन के पश्चात् ही जीवन में निखार आता है, सच्चे अर्थ में नवजीवन प्रारम्भ होता है, जीवन अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।)

मेरा आना मार्ग को मलिन नहीं करता है और मेरे जाने के पश्चात् भी पद-चिह्न शेष नहीं रह जाते। अर्थात् मेरे आगमन का ज्ञान न विश्व को होता है और न मेरे प्रयाण की किसी को खबर होती है। मेरे इस जगत के अन्दर सुख की सिहरन के रूप में अन्त में खिल जाती है, फूट पड़ती है।

(बड़ा स्वाभाविक वर्णन है। हल्की वर्षा हो जाने पर न मार्ग में कीचड़ ही होता है कि पद-चिन्ह बन जायँ और न कुछ समय के पश्चात् वर्षा का चिह्न ही रह जाता है।)

इस विस्तृत नभ का कोई भी कोना कभी मेरा अपना नहीं होगा। मेरा परिचय और मेरा इतिहास केवल यही है कि मैं कल उमड़ी थी और आज मिट चली अर्थात् बरसकर समाप्त हो गई।

(कवयित्री अपने प्रियतम को प्राप्त करना चाहती है। वह करुणा और वेदना की साक्षात् मूर्ति है। वह जानती है कि उसका जीवन अल्प है, क्षणिक है। उसने अपने को पूर्ण रूप से प्रियतम को समर्पित कर दिया है।

गीत—६२ (चिर सजग आँखें उनींदी आज)

शब्दार्थ—व्योम—आकाश। आलोक—प्रकाश। कारा—कारागार।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि हे जग के पथिक ! तुझे दूर जाना है। जाग, सजग हो। तेरी सदा सजग रहनेवाली आँखें आज उनींदी क्यों हैं ? तेरे ज्ञान चक्षु तो सदा पहले खुले रहते थे। चिर अचल हिमालय के हृदय में भले ही चाहे आज कम्प हो उठे या मौन अलसित आकाश भी लय के आँसुओं में रो पड़े, चाहे आज तिमिर की घोर छाया आलोक को पीकर इधर-उधर फिरने लगे, या बिजली की शिखाओं में चाहे निष्ठुर तूफान गरज उठे, किन्तु तुझे तो नश्वरता के पथ पर अपने अमर चिह्न छोड़ जाना है।

(आत्मा परमात्मा में लीन होने के पश्चात् अमर हो जायगी। कवयित्री प्रेम में मिट कर अमर होना चाहती है। अपने को अपने प्रियतम को समर्पित करना चाहती है।)

क्या तुझे यह मोम के सदृश कोमल तथा आकर्षक विषय वासना के बंधन बाँध सकेंगे ? क्या संसार के बाह्य सुन्दर रूप को देखकर तू फँस जायगी ? नहीं। वरन् मार्ग की जितनी बाधाएँ होंगी, उन्हें मैं तितलियों के रंगीन परों की भाँति आनंद-प्रद मानूँगी। भौंरे की मधुर गुनगुन क्या तुझे विश्व के क्रंदन को भुला देगी ? अर्थात् क्या संसार के सौंदर्य तथा आकर्षण में फँस कर तू उसके दुख तथा रुदन को भूल जायगा ? क्या तुझे यह ओस के कणों से भीगे फूलों के सुन्दर दल भुला देंगे ? तू अपने अज्ञान (छाया) को अपना बंदीगृह न बनाना। अज्ञान तथा विषय-वासना कहीं तुझे पथ-भ्रष्ट न कर दे। अतः हे पथिक ! सावधान !!

(कवयित्री अपने प्राणोंरूपी पथिक से कह रही है कि तू माया-मोह तथा अज्ञान में मत फँसना। तेरा जीवन लक्ष्य तो ब्रह्म को प्राप्त करना है। उससे तादात्म्य स्थापित करना है।)

बज्र के समान कठोर हृदय को एक छोटे से अश्रु कण में धोकर तूने पिघला दिया है। अर्थात् माया में फँस गया है। मेरे प्राण! अपने जीवन का अमृत देकर तू किससे मदिरा के दो घूँट माँग लाया है ? अर्थात् माया-मोह, विषय-वासनारूपी मदिरा में तू लिपटा है और अपने ज्ञान का विसर्जन कर दिया है। यह क्यों ? आत्मा को परमात्मा की ओर ले चल। मलयानिल का तकिया बना कर (सहारा लेकर) आँधी क्या सो गई है? अर्थात् तेरे प्राणों की सजग चेतना क्या अज्ञान तथा वासना के अधीन हो गई है ? क्या विश्व का अभिशाप (अज्ञान) तेरे पास नींद के रूप में आया है ? तू अमर-पुत्र है। (ईश्वर का अंश होने से आत्मा भी अमर है।) तू क्यों मृत्यु को अपने हृदय में बसाता है ?

(कवयित्री अपने मन से विषय तथा अज्ञान में न फँसने का अनुरोध करती है और उसे बताती है कि आत्मा अमर है, परमात्मा का अंश है।)

अब ठंडी निश्वासों में उस जलती हुई कहानी को कहना बन्द कर, तू उसे भूल जा। जब तेरे हृदय में प्रेम की आग जलेगी, तभी तेरे नेत्रों में वेदना के प्रेमाश्रु शोभा पायेंगे। ए मानिनी ! तेरी हार भी तेरी जीत की पताका बनेगी। नाशवान क्षणिक पतंग की राख यही अमर दीपक की निशानी है, संकेत चिन्ह है। अर्थात् इस नाशवान शरीर से परब्रह्म का संबंध आत्मा का निवास होने के कारण है ! तुझे तो अंगार की शैया पर कोमल कलियाँ बिछानी हैं। अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिये तुझे कठिन साधना की आवश्यकता है।

(जैसे पतिंगा अपने को दीपक में होम कर अपने प्रेम की अमर कहानी छोड़ जाता है, वैसे ही मैं भी अपने को प्रियतम को समर्पित करके अमर हो जाऊँगी।)

गीत ६३—(कीर का पि आज पिंजर खोल दो)

शब्दार्थ—कीर—तोता। चंचु—चोंच। हत—पीड़ित। राका—पूर्णिमा। पारद—पारा।

भावार्थ—हे प्रियतम तुम आज कीर के पिंजर को खोल दो, अर्थात् शरीर से आत्मा को निकल जाने दो। तुम्हारा वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता। चंचु को छू कर पिंजड़े की तीलियाँ भी वेणु के स्वर से पूर्ण हो गई हैं, अर्थात् ध्वनित हो उठी हैं! बन्दिनी तथा स्पन्दित व्यथा को लेकर यह जड़-मौन पिंजर सिहर रहा है। आज तुम इस शरीर की जड़ता के अन्दर बोल दो, अपने स्वर को गुँजा दो।

(मेरे प्राण वियोग-व्यथा से व्याकुल हैं। मेरे शरीर का रोम-रोम व्यथा से पूर्ण है। मेरी व्यथा स्पन्दित है तथा बन्दिनी है और उसके कारण यह पिंजड़ा (जड़ शरीर) भी मौन हो कर सिहर उठा है। व्याकुलता की पराकाष्ठा के कारण प्राणों की व्याकुलता इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि वे अब शरीर से निकल भागना चाहते हैं। अतः हे प्रियतम, अब तुम अपने सुखद स्वरों को गुंजित करो।)

प्रियतम के वियोग के कारण मेरे आँसुओं की निकलती हुई धारा मेरे प्राणों को अत्यन्त व्याकुल बना रही है। इस शिथिल शरीर का यह युगों का बन्दी (आत्मा) तोड़ कर निकल जायगा। अब यह व्याकुलता मुझसे नहीं सही जाती। तुम अपने पंखों पर मेरे सजल स्वप्नों को तोल लो। अर्थात् मैं सदा तुमसे मिलने का ही स्वप्न देखा करती हूँ और देखो तुम्हारा वियोग मुझे कितनी पीड़ा दे रहा है।

आज कैसा भयंकर अन्धकार छाया है। आज कैसी घनघोर रात है। आज तो मेरे लिए विदिशा ही दिशा प्रतीत हो रही है।

दूर का खग (अर्थात् मेरा प्रियतम) अब मेरे निकट आ गया है और अमर बंधन में बँध गया है। मुझे विश्वास है कि ब्रह्म से मेरा तादात्म्य होगा। हे प्रियतम ! तुम आज इन प्रलय के बादलों में पूर्णिमा का प्रकाश घोल दो।

(अपनी व्याकुलता की तीव्रता के कारण ही वह प्रलय के बादलों में ज्योत्स्ना घोलने के लिए प्रियतम से प्रार्थना करती है।)

मेरा विकल तन चंचल पारे के समान कम्पित है। मेरा मन जलयुक्त बादल-सा भरा है। आज यह नीलाकाश मेरा शरीर तथा मन बेड़ियों के रूप में माप (नाप) ले। उसका मूल्य मेरे लिए एक दिन की अनन्त किरण ही होगी।

(कवयित्री का मन तथा नेत्र सजल बादल की भाँति उमड़ रहे हैं। वह ज्ञान का प्रकाश चाहती है ताकि उसका ब्रह्म से तादात्म्य हो।)

गीत ६४—(प्रिय चिरन्तन है सजनि)

शब्दार्थ—चिरन्तन—चिर प्राचीन। दामिनी–बिजली। यामिनी—रात्रि। सुभग—ऐश्वर्यशाली। क्षार—राख। आराध्य—आराधना का पात्र। चिन्मय—चैतन्यमय ब्रह्म। मृण्मयी—मिट्टी से बनी हुई। अनुरागिनी—प्रेमिका। विरज—धूलरहित। विधु—चन्द्र।

भावार्थ—ए सजनी ! मेरा प्रिय चिरन्तन है। अतः मेरा सौभाग्य अखण्ड तथा सदा नवीन है। मेरे प्रियतम मुझे अपनी श्वासों में छिपाए हुए असीम विशाल बादलों के रूप में आकाश में छा गए हैं। ऐसा लगता है कि मानों यही उनकी सजोली साध हो। पर मैं उन बादलों में कहाँ छिप सकी। मैं तो चंचल बिजली की भाँति बुझ-बुझकर भी जल-जल उठी।

(कवयित्री ने अपने को बिजली के रूप में तथा ब्रह्म को बादल के रूप में लिया है। बादल और बिजली इन दोनों का

सम्बन्ध सदा से ही है। अतः उसका सुहाग अखण्ड है, सदा नवीन है।)

ए सजनी ! मैंने उसकी छाँह को अपना आवरण बना लिया है। बादल ही मेरे आवरण हैं। मैंने अपने सूने पल-क्षण धूल में अपने अश्रुओं को बोने में लगाये हैं। धूल में मैंने आँसुओं को जमाया है। मैं अपने नेत्रों में जल भरे हुए, रात्रि के रूप में, प्रातः-काल से हास्य में छिप गई, विलीन हो गई।

(मेघ उसके प्रियतम हैं तो मेघों की छाया कवयित्री के आवरण हुए। अपने को उन्होंने रात्रि माना है। रात्रि में विरह-वेदना का आधिक्य रहता है। वह विरह-वेदना से व्याकुल है। रात्रि भर रोने के पश्चात प्रातः के प्रकाश में उन्हें अपने प्रियतम के दर्शन होते हैं।)

यदि मैं मिलन-मन्दिर में प्रियतम से मिलन के समय अपने सुन्दर मुख से सलज घूँघट उठा दूँ और मैं इस प्रकार से आत्म-बलिदान प्रियतम पर कर दूँ जैसे कि जलतीं हुई बालू पर जल के कण विलुप्त हो जाते हैं तो मेरा जीवन सार्थक हो जाय। ए सजनी ! मैं अभिमानिनी हूँ। मेरा भी अस्तित्व है। अपने मधुर निजत्व, व्यक्तित्व को भुलाकर मैं कैसे उस प्रियतम से मिलूँ, उसे प्राप्त करूँ।

(वह अपने को प्रियतम में ऐसा ही मिटा देना चाहती हैं जैसे जलती रेत पर पानी की बूँदें मिट जाती हैं। किन्तु अपना प्रियतम से तादात्म्य करते समय भी वह अपने व्यक्तित्व को भूलने को प्रस्तुत नहीं है।)

मैं युगों-युगों तक दीप की तरह जलने को तैयार हूँ। मैं प्रियतम में समा जाने की इच्छुक हूँ। उसकी फूँक से ही मैं बुझ जाऊँ। जल जाने के बाद मेरी राख ही मेरे अस्तित्व का पता बताये। वह प्रियतम मेरा आराध्य रहे। वह चिरन्तन है।

और मैं मिट्टी से बनी, नाशवान हूँ। मैं उसकी अनुरागिनी हूँ। तो भी मैं उससे प्रेम करती हूँ। कहाँ अजर-अमर चिरन्तन परब्रह्म और कहाँ मैं पंचतत्वों से बनी नाशवान शरीरवाली लघु वस्तु। मेरी उसकी तुलना क्या।

मेरे नेत्रों की पुतलियों पर, जो अश्रु से पूर्ण हैं, उस अमिट असीम ब्रह्म का चित्र अंकित है। मेरे प्राणों में केवल एक ही चाह है कि वह अनन्त तथा असीम इसमें निवास करे। उस ब्रह्म का प्रकाश मुझमें समाया हो। मैं पृथ्वी के रजकणों के रूप में उसी ज्योतिर्मय चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में खेलती हूँ।

(मेरे प्रियतम मेरे प्राणों में बसे हैं। अपने ब्रह्म के संसर्ग से मैं प्रकाशयुत हूँ। चिर-सुहागिनी हूँ। मैं उसकी प्रकाशवान चाँदनी में ज्योत्स्ना के रूप में खेलती हूँ।)

गीत—६५ (सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी)

शब्दार्थ—प्रस्तर—पत्थर। अभिशाप—शाप। गह्वर—अगम, दुर्गम। अरुणा—ललाई। आलेपन—लेप करना। राका—पूर्णिमा। निक्षेप—पैर रखने का भाव।

भावार्थ—हे सखी! मैं अमर-सुहाग भरी हूँ। मैं प्रिय के अनन्त अनुराग से पूर्ण हूँ। जब मेरा तादात्म्य प्रियतम से हो गया तब फिर मुझे विषमय क्या और मधुमय क्या। प्रिय के प्रेम में डूबे रहना ही तो मेरे लिए मधुमय होगा, कल्याण-प्रद होगा और विषय-वासना तथा संसार के ऐश्वर्य और प्रभुता को स्वीकार करना मेरे लिए विषमय होगा। अतः मैं ब्रह्म ही की कामना करूँगी। मेरे चरणों का स्पर्श होते ही काँटे कलियों के समान कोमल और पत्थर रस से युक्त हो जाते हैं। अर्थात् कोई भी रोड़ा, कोई भी बाधा मेरा पथ रोक नहीं पाती। बाधाएँ ही मेरे लिए परिवर्तित होकर सुविधाएँ बन जाती हैं। मैं संसार के अभिशापों को क्यों पालूँ (विषय-वासना की ओर क्यों आकर्षित

हूँ) जब मेरे प्रत्येक रोम में पुलक है। (स्वयं ब्रह्म का स्पन्दन मेरे रोम-रोम में हो रहा है) ।

जिन्हें मार्ग के काँटों से भय हो, निर्जन तथा गह्वर स्थान वह ढूँढ़े। मैं तो दुख हो चाहे सुख, जो भी प्रियतम के प्रेम-मार्ग में आयेगा, उसका हृदय से स्वागत करूँगी, आलिंगन करूँगी। प्रेम-मार्ग में आनेवाली समस्त बाधाओं को मैं सहर्ष अपनाऊँगी। मेरी लघु पलकों से ही छलक कर संसार के कण-कण में ममता बिखर गई है। अर्थात् मेरे ममत्व का प्रसार विश्व में हो रहा है। मेरे नेत्रों का जल ममत्व का प्रसार कर रहा है।

(कवयित्री कहती है कि मुझे तनिक भी चिंता बाधाओं तथा कष्टों से नहीं है।)

प्रभात की अरुणिमा ने समस्त दिशाओं को भर दिया है। सन्ध्या ने भी दिशाओं के चरणों में महावर लगा दिया है। मेरे ही अंगों की ज्योत्स्ना दीवाली रचकर उबटन लगाती है। मेरी छाया (मेरा अस्तित्व) और भी गहरी (महत्वपूर्ण), संसार के कष्टों को दूर कर-करके होती जाती है। अर्थात् पीड़ा और कष्ट सहन करके मेरी आत्मा का अधिक विकास हुआ है। मुझमें सहनशीलता आ गई है तथा और अधिक गम्भीरता।

मेरे पद के निक्षेपों से पृथ्वी पर आकाश का वह छाया-पथ उतर आया है। मैं अत्यधिक पीड़ित तथा व्याकुल हूँ। प्रियतम के अभाव में मेरा जीवन अभावमय तथा कष्टप्रद है। निराशा मेरे जीवन में व्याप्त है। मेरी श्वासों की अधिकता तथा तीव्रता से बदली घिर आती है। मेरी चितवन पतझर को भी बसंत ऋतु में परिवर्तित कर देती है, जब मैं मरुभूमि में अपनी खाली जीवनरूपी गगरी को दुख से भरने लाती हूँ। मेरे व्याकुल चरण रखने की मुद्रा ही यह सब दर्शा देती है। पृथ्वी के रजकणों में आकाश का छाया-पथ स्वयं उतर आया है। जैसे सुन्दर आकाश-

लोक स्वयं पृथ्वी पर उतर आया है। मैं अपने प्रियतम के प्रेम में मग्न हूँ।

गीत—६६ (सो रहा है विश्व पर प्रिय)

शब्दार्थ—नियति—भाग्य, दैव। कुशली—चतुर, कुशल। रंगमय—रंगीन। अजिर—आँगन। इन्दु—चन्द्रमा। कंदुक—गेंद। लोल—सुन्दर। घनसार—कपूर।

भावार्थ—समस्त संसार सो रहा है किन्तु मेरे प्रिय ताराओं के रूप में जाग रहे हैं। अदृष्ट या नियति बन कर उस कुशल चितेरे ने सुख-दुख के रंगों से यह मेरा मृदुल जीवन-पात्र भर दिया है, रँग दिया है। वह खारे अश्रु माँगता है किन्तु मैं उसे अपने प्रेम का अमृत देती हूँ।

(प्रियतम मेरा दुख, मेरे अश्रु माँगते हैं)।

विरह की बेला मेरे लिए धूप-छाँही बनी है। अर्थात् मैं इनमें दुख और सुख दोनों मिश्रित देखती हूँ। मैं जिसको अकेला ही पाने का प्रयत्न कर रही हूँ वह समस्त विश्व का कोलाहल बना है। अर्थात् परब्रह्म समस्त विश्व में व्याप्त है। समस्त आत्माओं में उसका निवास है। मेरे दृग उसकी छाँह को पहचानते हैं तथा यह हृदय उनके पद-चाप को जानता है अर्थात् मैं अपने प्रियतम से पूर्ण रूप से परिचित हूँ। उनकी आभा तथा रूप मेरे नेत्रों में बसा है।

मेरे देव! तुम मुझसे दूर हो। इस दूरी के बीच में भी एक रँगीनी, एक विशेष सौंदर्य और आभा व्याप्त है। यह चित्रमय अधूरी क्रीड़ा तुम्हें स्पर्श करके रह जायगी। अर्थात् तुम दूर हो इससे मेरे मन को शान्ति और संतोष नहीं होता। दूर रह कर तुम तो अपनी अनेक क्रीड़ायें किया करते हो किन्तु इससे मेरा संतोष नहीं हो पाता। तुम्हें निकट पाकर, तुम्हें प्राप्त करने के पश्चात् नहीं, मुझे वास्तविक सुख, शान्ति तथा संतोष होगा।

दूर रहकर खेलना—यह मन को अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हारे विरह में बिल्कुल घुल जाना चाहती हूँ। मैं तुम्हारे तादात्म्य की इच्छुक हूँ।

वह तुम्हारा सुनहला हास मुझे अत्यन्त प्रिय है। उसे मैं अपने अंक में लगा लूँगी। हाँ, यह अवश्य है कि तब मेरा अस्तित्व कपूर की भाँति उड़ जायगा। जब मेरा हृदय हठ करता है। तब मैं अपनी पलकें बन्द करके रात्रि कर लेती हूँ। और इस प्रकार तुम्हारे विरह की वेदना में अपने समय को व्यतीत करती हूँ।

(कवयित्री का दृढ़ विश्वास है कि कभी तो उसका प्रियतम उसे मिलेगा ही। उससे मिलने के लिए ही वह पहले अपने को घुला देना चाहती है।)

आकाश में मेघ छाये हुए हैं। उनके बरसने से मेरा आँगन (हृदय) गीला है। चन्द्रमा मुझे गेंद-सा टूटता दिखाई पड़ता है। सूर्य मुझे लाल-पीला होकर झुलसता-सा दिखाई देता है। हे प्रियतम ! यह तो नई असमानता है। कहाँ तो सूर्य, चन्द्र आदि के समान तुम्हारे अलौकिक खिलौने और तुम्हारे विचित्र खेल और कहाँ यह मेरा छोटा-सा गीला हृदयरूपी आँगन। अर्थात् भगवान की महानता इस छोटे से मानव-हृदय में कहाँ से समाये ; पर आश्चर्य यह है कि इस असमानता के होते हुए भी यह होता है।

(यहाँ ब्रह्म को खिलाड़ी; सूर्य तथा चन्द्रमा को गेंदें और खिलौने तथा अपने को खेलने की छोटी भूमि बताया गया है)।

गीत—६७ (हे चिर महान)

शब्दार्थ—सेली—योगी-यतियों के गले में रहनेवाली माला।

परिमल—पराग। वतास—समीर। झंझा—तेज आँधी। विरक्त—उदासीन। विहान—प्रभात।

भावार्थ—हिमालय पर्वत को सम्बोधन करती हुई कवयित्री कहती है कि हे चिर महान्! तुम्हारे श्वेत उच्च भाल पर प्रभात के समय सूर्य की स्वर्णिम रश्मियाँ रंगीन हास्य को चारों ओर बरसा जाती हैं। अर्थात् अत्यन्त सुन्दर दृश्य उपस्थित हो जाता है। तेरा श्वेत मस्तक रंगीन आभा से भर जाता है। तेरी चोटी रंगीन दिखाई देने लगती है। इन्द्रधनुष ही तेरी सेली बन जाता है। तू योगी-यती है। तेरे गले में इन्द्रधनुषरूपी सेली शोभित होती है। ऐसी सुन्दर बेला में बहता हुआ समीर तेरे मुख पर सुगंधित पराग मल-मल जाता है। हे हिम के भण्डार! तू रागहीन है। तुझे किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। हिमालय महान् है। वह कामना-रहित है।)

तेरा गर्वित शीश कभी नभ में नहीं झुकता। तेरा मस्तक सदा ऊँचा रहता है किन्तु तेरे अंक में (तलहटी में,) क्षार ही हैं। तू अपने अंक में क्षार (पत्थर, मिट्टी) लिए रहता है। तेरा मन विनम्र जगत को देखकर गल जाता है। तेरा विशाल तन वज्र के भार को भी सह लेता है। अर्थात् असंख्य चट्टानों का बोझ तू उठाये है। विनम्र होकर गलने से यह भाव है कि असंख्य नदियाँ तथा झरने तुझसे प्रवाहित होते हैं। तेरे प्राण कितने मृदु हैं तथा साथ ही कितने कठोर हैं। अर्थात् तू अत्यन्त सहनशील है तथा करुणा से परिपूर्ण है।

(असंख्य चट्टानों से युक्त होने के कारण वह कठोर है तथा अनेक नदियों का उद्गम होने से कोमल है)।

तेरी समाधि कभी भी भंग नहीं हुई। सैकड़ों आँधियाँ आईं पर वे हार-हारकर लौट गईं। किंतु तेरे दृगों से नीर बह चला है क्योंकि तू करुणा-विगलित है। सूर्य की किरणों से हिम के

कण जल कर पिघल रहे हैं। यह देखकर तू द्रवित हो उठा है। तू सुख से उदासीन है तथा दुख में भी विचलित नहीं होता। दुख तथा सुख में तू एक समान रहता है।

मेरे जीवन का आज तेरी छाया से मौन मिलाप हो। मेरा शरीर तेरी साधकता को अपना ले। अर्थात् मैं भी अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए ऐसी ही समाधि-मग्न हो जाऊँ जैसा तू है। और मेरे मन में वैसी ही करुणा समा जाय जैसी करुणा तुझमें है। तेरे हृदय में पावस तथा दृग में विहान छिपा है। वैसे ही मुझमें भी हो जाय।

(कवयित्री चाहती है कि हिमालय की साधना और करुणा मुझमें भी उतर आये। हिमालय से नदियाँ प्रवाहित हैं, यही तो उसके अन्दर छिपी बरसात की द्योतक है तथा उसकी सफेद बर्फीली चोटियाँ उसके प्रभात का द्योतक है)।

गीत—६८ (मैं सजग चिर साधना ले)

शब्दार्थ—सजग—सतर्क। प्रहरी—पहरेदार। निमिषि—पल, क्षण। अलख—अदृश्य। अविकल—पूर्ण, निश्चल।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि मैं अपनी साधना में सदा सजग हूँ। मैं कभी भी असतर्क नहीं होती। मेरे शरीर का प्रत्येक रोम पहरा देने वाले भौंरे के समान सदा सजग और सचेत रहता है। समयरूपी सागर में पल-क्षणरूपी बुलबुले मिटते रहते हैं। मेरे लिए प्रत्येक क्षण एक समान बना हुआ है। मैं अपने प्रियतम के विरह की आराधना लेकर स्वयं आराध्यमय हो गई हूँ। अर्थात् मैं अपने आराध्य में इस तरह विलीन हो गई हूँ कि आराध्य और आराधक दो न रहकर एक हो गए हैं। मैं स्वयं आराध्य हो गई हूँ।

(अपनी भावना तथा साधना की पराकाष्ठा में कवयित्री

स्वयं ब्रह्ममय हो गई है। उसमें और ब्रह्म में कोई भेद नहीं रहा है।)

मैंने अपने नेत्रों के तिल को, जो अत्यन्त जादू भरा है, अपनी स्थिर पलकों में बन्द कर लिया है। मैं उस अलख और अविकल निराकार परब्रह्म को सजीला रूप दे रही हूँ। मैं मुक्ति नहीं चाहती। मैं तो बंधन ही चाहती हूँ। हे प्रभु! तुम मुझे वरदान दो कि मेरी मुक्ति बंधनों की कामना लेकर आवे।

(मैं विरह में संतुष्ट हूँ। मैं बन्धनों से प्रेम करती हूँ। मैं मुक्ति नहीं चाहती।)

आज मुझे विरह का युग भी मिलन के लघु पल-सा दिखाई देता है। (विरह में समय पहाड़ हो जाता है। काटे नहीं कटता। मिलन में समय के पर लगे होते हैं। पता नहीं कैसे इतनी जल्दी समय कट जाता है, भाग जाता है।) सुख तथा दुख में किसकी तीक्ष्णता अधिक है, इसको मैं अभी तक न जान पाई, न सीख पाई। अपने प्रियतम की मधुर भावना में डूबी होने के कारण मुझे सब कुछ मधुर हो गया है। विरह भी मुझे मधुर हैं और मिलन भी मुझे मधुर है। क्योंकि विरह तथा मिलन का कारण तो प्रियतम ही है न।

(ब्रह्ममय हो जाने के पश्चात् मानव को सब कुछ सत्-चित-आनन्दस्वरूप ही भासता है।)

गीत—६९ (अलि मैं कण कण को जान चली)

शब्दार्थ—मनका—माला के सबसे ऊपर का दाना। मुक्ताहल—मोती। आख्यान—कहानी, वृत्तान्त। दशन—काटना या डसना। आहत—जख्मी, घायल। आतप—गर्मी। उर्वर—उपजाऊ।

भावार्थ—ए सखी! मैंने अब अणु-परमाणु को पहचान लिया है। संसार के कण-कण से मैं परिचित हो चुकी हूँ। मैं सबके

क्रंदन को पहचानने लगी हूँ। मैं सभी के दुख से परिचित हूँ। मेरे नेत्रों में अश्रु-बिन्दु हीरों की भाँति शोभित हैं। आँसुओं से भरी मेरी चितवन में इन्द्रधनुष की शोभा का दृश्य है। टूटे हुए सपनों के मनकों के समान वह कुछ आँसू मेरे मुरझाये हुए अधरों पर झर रहे हैं।

(प्रियतम के वियोग के कारण मेरे आँसू प्रवाहित हो रहे हैं।)

जिन मोती के समान जल-बिन्दुओं से मेघ भरे हुए हैं, वह मेरे ही आँसू हैं। वे हो अश्रु-कण तारों के द्वारा घास के ऊपर, ओस के रूप में लुढ़का दिए गए हैं। मैं आकाश के तथा रज के रस तथा विष को पहचान गई हूँ। अर्थात् सब के आँसू के सब रंगों को मैं जान चुकी हूँ। आकाश के सौन्दर्य तथा माधुर्य और संसार की पीड़ा तथा कष्ट सबसे मेरा पूर्ण परिचय है। आँसुओं के अन्तर्गत निहित रहस्य को मैंने समझ लिया है। मैंने दुःख को ही सुख का आख्यान समझ लिया है। अर्थात् विरह-व्यथा मेरे लिए सुखद है।

जिसके लगने से, चुभने से मीठा तथा तीखा भाव पैदा होता है, वह मेरे प्रत्येक अंग में सुख की सिहरन उत्पन्न कर रहा है। जो काँटा मेरे पैरों में चुभ कर मेरे जर्जर मन को सदा के लिए आहत बना देता है, मैं उसे ही चाहती हूँ।

(कवयित्री को काँटे की चुभन—संसार की पीड़ा—ही मधुर ज्ञात होती है।)

वह काँटा जो मृदु फूलों ने स्पन्दन से तथा अपने ही एकाकीपन से पैना है मैं उसके हृदय की कोमलता को पहचान गई हूँ। मैं तो उपवन तथा निर्जन पथ के प्रत्येक कंटक के मृदु मन की बात जान चली हूँ। मैं गति को चिर वरदान देकर चली हूँ।

(कवयित्री को चूँकि पीड़ा में आनंद आता है, इसी से

उन्हें काँटा भी प्रिय है और उसकी चुभन भी। उसके कसक की मिठास का भी मान है।)

मेरे अश्रु कण ही सर्वत्र जलकण के रूप में दिखाई देते हैं। मेघों में बिजली की प्यास के रूप में यही जलकण वर्तमान हैं। गर्मी से जलकर, झुलस कर ही वे निखरे हुए सुन्दर मालूम होते हैं। वे जलकर ही गिरते हुए फूलों पर अपनी चन्दन-सी शीतल ममता, ओस के रूप में गिर कर दिखाते हैं। सूखे हुए पुष्पों पर ओस के बिन्दु अपनी करुण भावना से ही लुढ़क पड़ते हैं। अर्थात् मेरे आँसू ही सब जगह अपनी करुणा के साथ व्याप्त हैं।

लगातार अश्रुओं के निकलने से जल के कण अधिक धुल-धुल कर उजले हो गये हैं। यद्यपि उन अश्रुओं का जन्म करुणा से है तो भी उन पर निष्ठुर चरण पड़ कर उन्हें कुचलते हैं। मैं मरु-भूमि तथा उर्वरा भूमि के अणु-अणु के कम्पन तथा कसक को पहिचान गई हूँ। प्रत्येक पग को मैंने लययुक्त कर दिया है।

(आँसुओं में पवित्रता, करुणा, उज्ज्वलता, पीड़ा तथा कसक भरी है और मैं इससे परिचत हूँ।)

नभ में सूर्य की स्वर्णिम आभा फैली है तथा चन्द्र की रजत ज्योत्स्ना व्याप्त होती है, वह प्रभा तथा चाँदनी मेरा ही स्वप्न है। संसार में चिर-परिचित संगी है। यह शूल तथा फूल का निर्मित मार्ग (अर्थात् दुख पीड़ा-कष्ट तथा सुख-आनन्द-उल्लास से भरा हुआ विश्व का मार्ग) चिर नूतन है तथा मेरी ही साधों से निर्मित है।

(ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मैंने समस्त दुखों, कष्टों तथा बाधाओं पर विजय पा ली है। दिन की आभा मेरे मिलन का स्वप्न है और रात की चाँदनी मेरे विरह का स्वप्न है।)

सूर्य के कारण प्रकाश से युक्त पृथ्वी की रज भी गर्वीली है। उसे भी मैंने अपनी करुणा-रस से द्रवित कर दिया है, अपने आँसुओं से उसे भी गीला कर दिया है। मैं सुख से चंचल तथा दुख के बोझ से दबी हूँ। मैंने तो प्रत्येक क्षण के जीवन को समझ लिया है। मैं तो मिटने को ही जीवन का निर्वाण समझती हूँ।

(मैंने प्रियतम को सम्पूर्ण भाव से समर्पित कर दिया है। मैंने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को तथा स्वयं जीवन को ठीक से समझ लिया।)

गीत—७० (मोम सा तन घुल चुका अब)

शब्दार्थ—बरूनियों—पलकों के बाल। निर्निमेषी—बिना पलक लगाए, एकटक। कल्प—संकल्प। बासंती—प्रफुल्लित करने वाली। विभावरी—तारों से युक्त रात। अंगारक तरी—अंगारों से भरी हुई रात। तटिनी—नदी।

भावार्थ—प्रियतम के वियोग में मेरा शरीर मोम के समान पिघल चुका है और मेरा मन दीपक के समान चल चुका है। विरह के कुछ रंगीन क्षणों को लेकर, नेत्रों में से कुछ बचे हुए जल-कणों को लेकर, और बरूनियों में उलझ कर बिखरे हुए स्वप्न रूपी सुमनों को लेकर मेरा विश्वासरूपी दूत अपने शिथिल पग से मेरे प्रियतम को खोजने निकल पड़ा है। अर्थात् प्रियतम के वियोग में मेरा तन और मन घुल चुका है और निश्वास मेरे प्रियतम की खोज में चल रहे हैं।

मेरी चंचल पलकें अब स्थिर हो चुकी हैं। मेरे प्रत्येक पल में होनेवाली कल्पनायें तथा विचार सब अंधकार में डूब चुके हैं। मेरे हृदय की ही धड़कन आज मुझे अपनी नहीं जान पड़ती। वह मुझे किसी अज्ञात देश की अपरिचित जान पड़ती है। उस

धड़कन के रहस्य को आज मैं स्वयं ही नहीं समझ पा रही हूँ। चेतना का स्वर्ण मेरी जलती वेदना में गल चुका है।

(कवयित्री की प्रिय-दर्शन की लालसा इतनी प्रबल है कि उसके नेत्र तथा पलक स्थिर हो गए हैं। उनमें इतना आत्म-विसर्जन तथा आत्म-विस्मृति हो गई है कि यह अपनी ही धड़कन को नहीं पहिचान पाती। उसकी चेतना भी पीड़ा की अधिकता से मूर्छित-सी हो गई है।)

जब तारकरूपी फूल और रश्मियोंरूपी श्वेत पत्ते समस्त भर चुके तब आकाश क्या प्रकाश तथा अंधकार की संधि-वेला को नहीं जानता है, नहीं समझता है? उस समय उस अज्ञात पार से प्रफुल्लता देनेवाला दिवस का रथ चल चुकता है।

(रहस्यवादी कवि प्रिय की झलक प्रभात बेला के प्रकाश में ही देखते हैं। अतः दिवस और रात्रि की सन्धिबेला में तारे छिप चुके हैं और प्रभात का आगमन हो गया। अब मेरी विरह-वेदना समाप्त होगी और मुझे अपने प्रियतम की झाँकी मिलेगी।)

दीपरूपी दृगों को खोलकर ही वह कह गया है कि 'अंधकार में ही पग बढ़ा'। प्रियतम तारों के अंदर से कह रहा है कि वेदना, कष्ट, बाधाओं, अन्धकार के होते हुए भी तू आगे बढ़ता जा, पैर बढ़ाता चल। उसे अब श्रम-धूमिल (थका और प्रभा-रहित) जान कर रात्रि के श्वास जगमग-जगमग करने लगते हैं। अंतिम याम ढल चुका है, मिलन-बेला अब समाप्त हो गई है, वह प्रियतम यह भी कह दे। यह भी वह कह सकता है। अर्थात् यदि मैं समस्त विघ्न-बाधाओं को रौंदकर प्रियतम की ओर अग्रसर होने की इच्छा रखती हूँ तो भी यदि कहीं वह यह कह दे कि अब प्रयत्न व्यर्थ है, अब मिलन-बेला का क्षण ही कहाँ है।

रात्रि अनन्त ज्ञात होती है। जैसे वह अन्तहीन है। ऐसा लगता है कि निकट ही कोई अंगारों से भरी हुई नौका है। क्षितिज के तट की रेखा अंधकाररूपी नदी को अपने में डुबा रही है। ए सुभग! मेरे शिथिल कर से आज स्मृतिरूपी पतवार गिर चुका है, छूट गया है। अतः अब जीवनरूपी नौका कैसे चलेगी ?

हे प्रियतम! तुम्हारा क्या संदेशा मेरे लिए है ? अब और अधिक कौन ज्वाला मुझे देना चाहते हो। वियोगाग्नि में यों ही मैं पहले जल रही हूँ, तुम क्या उसे और प्रज्ज्वलित करना चाहते हो ? इस विरह-ज्वाला के मार्ग के उस पार क्या चंदन के समान शीतल चाँदनी का देश है अर्थात् विरह-ज्वाला में तप लेने के पश्चात् क्या प्रियतम से मिलन संभव है ? तुम्हारे एक संकेत-मात्र को पाने के लिए सैकड़ों बार मेरे व्याकुल प्राण मचल चुके हैं।

(मैं तुम्हारा मिलन चाहती हूँ। क्या यह तादात्म्य संभव है ? या यों ही मुझे विरह-ज्वाला में झुलसाते रहोगे ? तुम्हारा एक संकेत पाने के लिए मेरे प्राण व्याकुल रहते हैं।)

गीत--७१ (पथ मेरा निर्वाण बन गया)

शब्दार्थ—रेणु—धूल। अंजन—वदना—आखों में सुरमा लगाए। मरकत—एक प्रकार की मणि-विशेष। लय-संधान—लय से पूर्ण। पारद—पारा। चंदन-चर्चित—चंदन लगा हुआ। अंगराग—चंदन, कपूर, केसर आदि से बना हुआ लेप या उबटन। मधुपर्क—शहद।

भावार्थ—मेरा पथ ही मेरे लिए मोक्ष-रूप हो गया। मेरा प्रत्येक पग मेरे लिए सैकड़ों वरदान के समान सुखद हो गया। मेरे थके हुए चरणों ने आज सूने अन्धकार में विद्युत का लोक (प्रकाश लोक) बना दिया है। मेरी यह धुँधली छाया आज

चाँदनी की रेणु बरसा रही है आज प्रलय के मेघ भी गले हुए मोतियों का बर्फ के जैसा तरल उफान-सा बन गए हैं।

(विरह ही मेरे लिए वरदान स्वरूप है। वह ही मेरे लिए निर्वाण के समान प्रिय है ।)

आज समस्त चकित दिशाएँ मुझे आँखों में अंजन लगाए रंग-बिरंगी घूँघट डाले दिखाई देती हैं। रात्रि ने मरकत मणि से बनी हुई बीणा के किरणों तार सँजोए हैं, ठीक किए हैं। मेरे स्पन्दन से ही तेज आँधी का हर-हर करता हुआ शब्द लय में परिवर्तित हो गया है। अर्थात् मेरे स्पन्दन से तेज आँधी भी स्वर और लय से युक्त हो गई है।

बड़ी-बड़ी शिलाएँ भी पिघले हुए पारे के समान दीख पड़ती हैं। आकाशरूपी आँगन चंदन से लिपा हुआ ज्ञात होता है। धूल ही सुगंधित अंगराग तथा कपूर-सपृश हो गई है। आज आतप मलयानिल के रूप में परिवर्तित हो गया है। आज शूलों का विष कलियों के गीले मधुपर्क के समान बन गया है।

(कवयित्री को अपनी विरह-वेदना अत्यन्त प्रिय और मधुर लगती है।)

मेरे प्रत्येक श्वास अपने को मिटा कर सौ-सौ बार प्रियतम के मिलन तथा विरह का लेखा लिख रही है। विलुप्त होते हुए क्षण मानो प्रियतम के अनदेखे चरणों की रेखा को नाप रहे हैं। पलभर का तुम्हारा वह स्वप्न युगों-युगों की पहचान बन गया है। मिलन का एक पल युगों की पहचान के रूपों में परिवर्तित हो गया है।

(मेरे प्रत्येक श्वास प्रियतम के मिलन की प्रतीक्षा करती है। मेरा व्यतीत हुआ प्रत्येक क्षण प्रियतम के चरणों की खोज कर रहा है। तुम्हारा एक मिलन ही मेरे लिए युगों की पहिचान के समान हो गया है।)

तुम मेरे हास को अपने करुणा के जल-कण से भर कर मुझे लौटा देते थे। तुम मेरे आँसुओं को अपनी हँसी से रंगीन कर के लौटा देते हो। आज मृत्यु का दूत भी तुम्हें स्पर्श करने के पश्चात् मेरे प्राणों का अतिथि हो गया है।

(अर्थात् मेरे आँसुओं में तुम्हारा हास और तुम्हारे हास में मेरे आँसू छिपे हैं। तुम्हारा स्पर्श होने के कारण मृत्यु भी मुझे भयावह न लगकर अतिथि के समान प्रिय लगती है।)

गीत—७२ (हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन)

शब्दार्थ—अक्षत—चावल। अगरुधूम—अगर की बत्ती का धुआँ। अभिषेक—ऊपर से पानी डालकर स्नान करना। मकरंद—पराग। परिधि—घेरा। स्वन—शब्द।

भावार्थ—शूल मुझे अक्षत के समान तथा धूल मुझे चंदन के समान प्रिय हो गई है। मुझे अपनी प्रत्येक श्वास अगर की बत्ती के सुगंधित धुएँ के समान प्रतीत होती है। मेरी स्नेहरूपी लौ ही दीर्घकाल तक अकम्पित भाव से जलनेवाली आरती लगती है। मेरे नेत्रों का जल ही प्रियतम के स्नान करने के जल-कण हैं।

(कवयित्री मनरूपी मन्दिर में अपने प्रियतम की पुजारिन की भाँति पूजा करती है। उसकी श्वासें ही अगरुधूम हैं। स्नेहरूपी दीपक की लौ ही आरती है। आँसू ही स्नान के लिए जल है।)

मेरे स्वप्नरूपी पुष्प अनेक रंगों के हैं। वे सुनहले, आकर्षक, सुन्दर, रंगीन, अनेक रंगों से मिश्रित, खिले हुए, रोमांचित तथा अश्रु (ओस) तथा मकरंद से गीले तथा सुगंधित हैं। स्वप्नरूपी ऐसे अनेक सुमन बिखरते रहे हैं।

(कवयित्री प्रीतम के ही मधुर स्वप्न देखती है। उसकी आँखों में अपने प्रियतम का चित्र खिंचा हुआ है।)

काले तथा सफेद जो रात तथा दिन हैं, जो सृष्टि तथा लय के गंधर्व हैं, अर्थात् जो गंधर्वों की भाँति सदैव बने रहेंगे। वह आँखों के लिए तो पुराने हैं अर्थात् पहिचाने हुए हैं तथा हृदय के लिए अपरिचित हैं। रात तथा दिन यह मुझे सजग पुजारी मिले हैं। अर्थात् मैं अपने प्रियतम को प्राप्त करने में सदा-सर्वदा सजग हूँ।

मेरे प्रियतम का आकाशरूपी मन्दिर परिधिहीन है, अनेक रंगों से भरा हुआ है। पृथ्वी के चरण तथा पीठ—यह ही मेरा व्यथासिक्त मृदु हृदय है। आज सिन्धु में रजत शंख का ही स्वर सुनाई देता है।

(आरती के समय शङ्ख-ध्वनि होती ही है। कवयित्री कहती है कि विश्व की समस्त वेदना मेरे हृदय में समाई है।)

यह मत कहो कि कोई मुझे प्रलय के द्वार पर रोक लेगा। मैं स्वयं वरद हूँ। मुझे भला कौन वरदान देगा ? क्या सुगन्ध को फूल अपने बन्धन में रख सकता है ? अर्थात् नहीं।

(आत्मा महान है, सर्व-गुण सम्पन्न है, सर्व - शक्तिमान है, क्योंकि वह उस परब्रह्म का अंश है। मैं आत्मा हूँ अतः मैं महान हूँ। मेरी शक्ति अपरिमित है। आत्मा को बन्धन में कौन रोक सकता है ? 'अहं ब्रह्मास्मि' दर्शन-शास्त्र का आध्यात्मिक सिद्धांत है।)

अपने प्राणों की व्याकुलता के कारण ही मुझे नित्य सुख का पता रहता है। प्रिय की विरह-ज्वाला में मैं मोम के देवता के सदृश घुलकर उज्ज्वल तथा पवित्र हो गई हूँ। मैं सृजन की श्वास हूँ तो फिर मैं नाश के क्षण क्यों गिनूँ। अर्थात मृत्यु की चिन्ता मुझे क्यों होने लगी जब मैं चिरंतन अखिल ब्रह्माण्ड के सृष्टा का अंग हूँ।

(जब मेरे प्रियतम स्वयं ब्रह्म हैं तो मुझे मृत्यु का क्या भय ? मैं मृत्यु को सोचूँ ही क्यों, जब कि आत्मा अजर-अमर है और मेरा प्रियतम मुझमें वर्तमान है।)

गीत—७३ (यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दे)

शब्दार्थ—रजत—चाँदी। बेला—समय। कल—सुन्दर, मधुर। उपल—पत्थर। अजिर—आँगन। अलिंद—भौंरा। प्रणत—विनम्र। अंक—चिह्न। दहली—देहरी। अक्षत—चावल। अन्तर्हित—विलुप्त, छिपा। अर्चित—अर्चना की हुई। मनके—माला के सब के ऊपर का दाना। प्रस्तर—पत्थर। मसि—स्याही। मुखर—शब्द, ध्वनित। झंझा—आँधी। दिग्भ्रान्त—दिशा-भ्रम। प्रहरी—पहरेदार। प्रभाती—प्रभात-बेला।

भावार्थ—कवयित्री कहती है कि यह मन्दिर का दीप है। इसे नीरव जलने दो (शरीर मन्दिर है और प्राण दीपक है।) चाँदी के-से श्वेत रङ्ग के शङ्ख तथा घड़ियाल तथा स्वर्ण रङ्ग की बंशी तथा वीणा के स्वर, आरती बेला को अपने शत-शत लयों से मधुर ध्वनियों से भर गये हैं। जब मधुर कण्ठों का मेला-सा लगा हुआ

था अर्थात् जब आरती के समय मधुर गीत, भजन तथा कीर्तन आदि के शब्द गूँज रहे थे, तब पत्थर की मूर्ति हँसती थी। अन्धकार खेल रहा था। अब मन्दिर में इष्ट अकेला ही है। आँगन के शून्य स्थान को गलने दो। यह है ही गलने के लिए।

भौरों के चरणों द्वारा स्पर्श की हुई भूमि स्वर्णिम दिखायी देती है। तथा मन्दिर की चंदन की बनी हुई देहरी पर विनम्र होकर दण्डवत करनेवालों के सिरों के चिह्न अंकित हैं। फूल झरे हुए पड़े हैं। श्वेत अक्षत बिखरा हुआ पड़ा है। धूप, अर्घ्य, नैवेद्य, अपरिमित मात्रा में बिखरा हुआ पड़ा है। किन्तु यह सब तम में विलीन, विलुप्त हो जायँगे। दीपक की लौ में सबकी अर्चित कथा को पलने दो।

(आत्मा मन्दिर की दीपक है। दीपक की लौ को आत्मा का प्रतीक माना है।)

विश्व-रूपी पुजारी क्षणों की माला को फेर कर सो गया है। तथा प्रतिध्वनि का इतिहास अब पत्थरों के बीच में लुप्त हो गया है। अब सर्वत्र सन्नाटा है। यह समस्त जीवन श्वासों की समाधि सा लगता है। जीवन का मार्ग अब समुद्र की स्याही-सा ज्ञात होता है। विश्व के मुखरित स्पन्दन कण-कण अब रुक गया है। इस प्राणरूपी स्पन्दन को फिर से दीपक की ज्वाला में ढलने दो। अर्थात् सदा ही साधना के मार्ग पर प्राणों को अग्रसर होने दो।

भयंकर झंझा के कारण दिशा-भ्रम हो गया है। दिशाओं का ज्ञान नहीं हो पा रहा है। रात्रि गहरी मूर्च्छा या निद्रा में है।

आज ज्योति का यह लघु प्रहरी ही मंदिर का पुजारी बने। जब तक दिन की हलचल लौटेगी अर्थात् जब प्रभात-वेला होगी तब तक यह दीपकरूपी लघु प्रहरी रात्रिपर्यन्त प्रतिपल जल कर प्रकाश देता रहेगा। यह रेखाओं में प्रकाश का जल भरेगा। यह मंदिर का दीप सायंकाल का दूत है। इसे प्रभात तक यों हो जलने तथा प्रकाश फैलाने दो।

(संध्या के पश्चात् ही दीपक जलाया जाता है, इसी से उसे संध्या का दूत कहा है। रात्रि के घने अंधकार को दूर करने के लिए ही उसे प्रातःकाल तक जलने देने को कहा गया है।)

गीत—७४ (पूछता क्यों शेष कितनी रात)

शब्दार्थ—सम्पुट—गह्वर। अवदात—सुन्दर; स्वच्छ। वात्यामक—बवंडर। पवि—वज्र। प्रणत - झुका हुआ।

भावार्थ—कवयित्री कहती है यह तू क्यों पूछ रहा है कि कितनी रात शेष है? ए प्राण! तुम अमर सम्पुट में ढले हुए हो! तुम उस प्रियतम के नखों की चिर कान्ति का स्पर्श पा गए हो, जिसके संकेत पर तू जला था। जिनकी स्निग्ध स्मृतियों को लिए तू कज्जल काली अंधकारपूर्ण दिशा में भी घुसा था। ए प्राण! वे ही कोमल निर्मल उँगलियाँ तुझे परिधि बनकर घेर रही हैं। अर्थात् मेरे प्राण, प्रियतम के चरणों के स्पर्श के कारण ही तुम व्याकुल हो।

अंधकार के बवंडर में समस्त जुगनुओं को दिखायी देना बन्द हो गया है। और अमूल्य तारे भी सब पिस गये हैं। वज्र

के हृदय में बिजली की शिखा काँप कर बुझ गई है । तेरा साथ तो केवल एकाकिनी बरसात ही चाहती है।

(कवयित्री की व्याकुलता के कारण उसके नेत्रों में वर्षा छिपी है । अतः वर्षा ऋतु को तेरा साथ वांछनीय है ।)

प्रभात की अरुणिमा, जो क्षितिज में व्याप्त है, वह भी उपहास कर रही है । प्रत्येक कण आज निष्ठुर सा बना है और प्रश्नमय हो रहा है । प्रत्येक कण मेरा परिचय, मेरा बसेरा पूछता सा ज्ञात होता है । किन्तु सभी प्रश्नों का उत्तर विरह से जलते हुए श्वास के अन्दर छिपा है । तू इस ओर घुलता जा रहा है और उधर प्रभात का प्रकाश फैला जा रहा है । अर्थात् विरह के कारण प्राण अत्यधिक व्याकुल थे । अब तो प्रभात-बेला आ गयी है और कवयित्री की व्याकुलता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है ।

तू विनम्र लौ की आरती ले । धुएँ की रेखा ही स्वर्ण-अक्षत होंगे । नील कुमकुम को लेकर वार । अपने मूक प्राणों से विरह की स्नेह-उज्ज्वल-वाणी लेकर शांतिपूर्वक मौन भाव होकर प्रियतम की आराधना में संलग्न हो । तुझे चिंता काहे की है । यदि प्रलय तेज, आँधी तथा वर्षा तेरी ओर बढ़ी आ रही हो, यदि वे तुझसे मिलना चाहती हों तो तुझे भ्रम काहे का हैं । तू आगे बढ़कर उनसे मिल । ए प्राण ! तू किसी बात का भय या शंका मत कर ।

(कवयित्री अपने प्राणों से कहती है कि तुम विघ्न-बाधाओं की चिंता मत करो । यह क्यों सोचते हो कि विरह-निशा कितनी शेष रह गई है । तुम प्रियतम के विरह में जलो और अपने अस्तित्व को सफल करो ।

गीत—७५ (आज क्यों तेरी वीणा मौन)

शब्दार्थ—चल—चंचल। पारावार—समुद्र। घन—बादल।

हे प्रियतम! आज तुम्हारी वीणा मौन क्यों है? उसे न सुन पाने से मेरा तन शिथिल पड़ने लगा है तथा हाथ थके-से जान पड़ते हैं। मेरे मन में उदासी छाई है, मेरा मन उचाट हो रहा है। तेरी वीणा न सुन सकने के कारण मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है और हाथ, पैर, समस्त शरीर थका, निर्जीव-सा हो गया है। तुम्हारी वीणा के स्वरों से हृदय स्पन्दित होने लगता था। अब तो इतने दिनों से वीणा न सुनने से उस स्पन्दन का आनन्द भी मैं भूलने-सी लगी हूँ। मेरे हृदय में जैसे एक मीठी कसक के रूप में तुम समा गए हो। आज तुम्हारी वीणा मौन क्यों है?

उस स्पन्दन के अभाव से मूर्च्छना-सी मुझे घेर रही है। मेरी पलकों ने अपनी स्वाभाविक गति छोड़ दी है। वे नीरव निश्चल होकर झुकी जाती हैं। मैं ही क्या, विश्व तुम्हारी प्रेममय झंकार के अभाव से मूर्च्छित-सा है। चंचल तारागण भी जैसे चित्र-लिखे से स्थिर और निद्रित हो गए हैं। आज आँखों में करुणा और व्यथा का पारावार लहराने लगा है। अश्रु एक निरन्तर बहने वाले स्रोत की भाँति बह रहे हैं। आज तुम्हारी वीणा मौन क्यों है?

बाहर घनघोर अंधकार छाया है। आकाश मेघाच्छन्न है, तिमिराच्छन्न है। यदि इस अंधकार में कोई ज्योति है तो वह मेरे हृदय में तुम्हारा अस्तित्व है, उसी प्रकार जैसे घने बादलों में बिजली छिपी रहती है। मेरा अन्तर तुम्हारी आभा से ज्योतिर्मय है। जीवन में तुम्हारी सुधि हाहाकार, झंझा, व्यथा और पीड़ा भर देती है। जीवन वर्षा की रात्रि के समान अशांत निराशा के अंधकार से परिपूर्ण हो जाता है। वर्षा की रात्रि में

जैसे जल बरसा करता है, वैसे ही तुम्हारे वियोग में, तुम्हारी स्मृति में मेरे आँसू रात भर गिरा करते हैं। जैसे वर्षा में वातावरण अशान्त और अंधकारमय होता है, वैसे ही मेरा हृदय वेदना और व्यथा से अशान्त है, वह निराशा से तमपूर्ण है। किसने मेरे हृदय को ऐसा कर दिया है ? आज तेरी वीणा मौन क्यों है ?

प्रियतम की स्मृति सदा कवयित्री के हृदय में रहती है और उससे उसकी व्यथा सजग रहती है। प्रियतम की वीणा पहले उसमें स्पन्दन पैदा करती रहती थी किन्तु उसके स्वर मौन हो गए हैं। इसी से वेदना, पीड़ा, निराशा और अशान्ति से उसका हृदय परिपूर्ण हो गया है।

गीत—७६ (शृंगार कर ले सजनि)

शब्दार्थ—उर्म्मियों—लहरों। अमित—असीमित। कच्च—यहाँ कोष्ठ-गृह—सार ले—लगा ले।

ए सखी, आज शृंगार कर ले। आज के चाँदी के रंग के श्वेत चंचल बादल ऐसे झीने और हल्के होते हैं, जैसे नव क्षीरसागर अपनी चंचल लहरों से शोभित हो। आज वातावरण बड़ा मधुर और मादक है। मेघयुक्त आकाश में असंख्य तारे ऐसे तैर रहे हैं जैसे मधुर फेन से युक्त (फेनिल) मोतियों की पंक्ति। प्रेयसि के समान पृथ्वी ज्योत्स्ना का घूँघट डालकर सिहर उठती है। प्रियतम की स्मृति से इस मधुर वातावरण में शरीर में रोमाँच हो जाता है। पृथ्वी पर ज्योत्स्ना फैली है। पृथ्वी उसके आवरण में सिहर-सिहर उठती है।

ऐसे समय में कलियाँ ओसों की रससिक्त बूँदों से अपनी गोदी भरे हैं। हिम से नहाई उन कलियों पर जुगनू अपने दीप जला रहे हैं। चारों ओर पुष्प-पराग उड़ रही है। समीर ने

जैसे स्वयं मधुपराग से वन के पथों को लीप दिया हो! कमलों के पुष्प-पराग पर बैठी मतवाली भ्रमरी मधुर गीत गा रही है। भौंरों के गुंजार से मलयानिल गुंजित है।

यद्यपि प्रियतम पास नहीं हैं, किन्तु उन्हीं की आभा से तो प्रकृति की समस्त वस्तुएँ अलौकिक हैं। प्रियतम के हृदय का उल्लास प्रकृति के अवयवों में परिलक्षित होता है। ऐसे समय में तू विरह का उपहार लेकर स्वप्न-सुमनों से अपने तन को सजा ले, अर्थात् तू प्रियतम की मधुर स्मृति से अपने हृदय को सजाये रख। उनकी विरह-वेदना भी तेरे लिए वरदान हो जाय। तेरी तो प्यास अनन्त है। तू चिर-वियोगिनी है। तेरी आँखें उस अनन्त वियोग की साक्षी बनें। तेरी आँखों में छाया वियोग झाँक पड़े। अगणित युगों की प्यास का अंजन तू अपने नेत्रों में सार ले, लगा ले। प्रियतम के नूपुरों की मादक ध्वनि ही आज तेरे मधुर मिलन-गीत बन जायँ। प्रियतम की मादक मधुर स्मृति ही तुझे मिलन के गीत के समान सुखदायक बने।

जीवन-सरिता के तट पर जो स्मृतिरूपी बालू के कण फैले हुए हैं वही मेरी भूली हुई पहिचान के समान हैं। कभी मेरा मिलन प्रिय से हुआ था किन्तु अब तो विछोह इतने दिनों का हो गया है कि उसकी स्मृति पर भी धुन्ध सा छाने लगा है। 'पहिचान' जैसे कुछ 'भूली हुई' सी हो गई है। प्रियतम की मादक स्मृति के क्षण ऐसे ही व्यतीत होते जाते हैं। वे मधुर क्षण जैसे मनुहार (प्रेम में रूठना-मनाना) के समान सुखद हैं, वरदान के समान प्रिय और अमूल्य हैं। आज की रात्रि मधुसिक्त है रस से भीगती इस रात्रि में प्रियतम का विछोह असह्य है। तू बैठी मत रह, प्रतीक्षा-रत मत रह। यद्यपि प्रियतम के देश की डगर अनजानी है और प्रियतम दूर देश में है किन्तु तू उस दिशा की ओर अपना कदम बढ़ा।

परमात्मा सत-चित् आनन्दस्वरूप है। आत्मा परमात्मा का अंश है, उसी आनन्द-स्वरूप का अंश है। अतः परमात्मा से बिछुड़ी होने पर भी आत्मा यदि आनन्द का अनुभव करती है तो उस विराट सत्ता के आनन्द-स्वरूप के कारण ही। साधक को अपने अंतिम लक्ष्य, परमात्मा की प्राप्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए। प्रकृति-पति की प्रकृति अति मनोरम है। यह मनोहरता उस 'सौन्दर्य-छवि के आगार' की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा आत्मा को देती है। विरह-वेदना का सम्बल लेकर आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करने को प्रयत्न-रत होती है।

गीत—७७ (ओ पागल संसार)

शब्दार्थ—उन्मीलन—प्रकटीकरण। वर्ती—बत्ती। स्नेह-सिक्त—प्रेम (तेज) से परिपूर्ण।

कवयित्री को अपनी वेदना प्रिय है। वह जलने का ही उपहार चाहती है—

हे पागल संसार ! तू यद्यपि निराशा तथा व्यथा के अंधकार से पूर्ण है, किन्तु यह वेदना ही हृदय को करुणा की शीतलता देती है। (मधुर और करुण भावों का जन्म व्यथापूर्ण हृदय ही में होता है, इसी से पागल संसार को शीतल तममय कहा है) तू तो केवल जलने का ही उपहार प्रिय से माँग। आत्म-बलिदान का ही दूसरा नाम प्रेम है। प्रेम की वेदना प्रेमी के लिए सदा मधुर होती है। वह उसका सदा स्वागत करता है। देखो पतिंगा सदा ही दीप-शिखा का चुंबन करता है। क्षण भर में ही वह स्वयं ज्वालामय हो जाता है। प्रेम करते ही तुझे जल मिटने का व्यापार करना होगा। यही तो प्रेम की सफलता है। तभी तो तू प्रेम का आदर्श स्थापित करेगा। आत्म-बलिदान ही तो प्रेम का सार है।

"'अमगर' हरीसे इश्क में हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिए हुए।'
'सतर मंसूर के लोहू से हुई यह तहरीर,
यानी सरदार नहीं वह जो सरेदार नहीं,'।

दीपक अवश्य ही स्वयं जलता है, किन्तु तभी तो वह चारों ओर प्रकाश भर देने में समर्थ होता है। परन्तु प्रेम की ज्वाला बहुत तीव्र होती है। यदि दीपक प्रकाश देता है तो घर को जला डालने की भी उसमें क्षमता है—केवल छू भर लेने से। इस प्रेम-दीप को जलने दे। तू एकाकी ही अच्छा। यदि तू प्रेम के निकट आया तो याद रख, तुझे क्षार (राख) हो जाना पड़ेगा। जल जाने के लिए तैयार होकर तू प्रेम की डगर में आना, क्योंकि 'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।'

प्रेम में यदि तू जलता रहेगा तभी उज्ज्वल प्रकाश से पूर्ण रहेगा। उसमें जलना ही प्रकाश (यश) पाना है और प्रेम में बुझना (प्रेम का घटना) ही अंधकार है। और अंधकार तो दुख का दूसरा नाम है ही, यह तो तू जानता ही है। प्रेम-ज्वाला में जलने का नाम ही सुख है। मेरा प्रियतम प्रेम-स्वरूप है। वह सदा प्रेम की ज्वाला से परिपूर्ण है। दुख और प्रेम का गठ-बंधन सदा से ही है। प्रियतम प्रेम का आगार है। अत: उसमें चिर-दुख वर्तमान है और मैं प्रेम का रसास्वादन चाहती हूँ, मैं प्रेम के सुख का उपयोग करना चाहती हूँ। अत: मुझे चिर-सुख है। (एक और भी अर्थ है। मुझे प्रियतम का चिर-वियोग है। पीड़ा ही में सुख है। अत: वेदना से परिपूर्ण होने से मुझमें चिर-सुख है। पीड़ा का अभाव ही दुख है। प्रियतम तो आनन्द-स्वरूप है। अत: उसमें चिर-दुख है। बड़े सुंदर विरोधाभास के दर्शन हमें इस पद में होते हैं) प्रेम तो समान स्थिति तथा दशा के प्राणियों में सफल होगा। तो फिर

जब एक में चिर-दुख है और एक में चिर-सुख है तो फिर दोनों में प्यार कैसे होगा।

शलभ तो वर्तिका की ज्वाला से मिलता है। अतः पतिंगा आभायुक्त कहाँ हो पाता है। वह तो स्वयं ही झुलस जाता है। वहाँ मिलन का खंडन है। शलभ वर्तिका से मिल कर केवल झुलस कर काला हो जाता है (मिलन से कलुषता उत्पन्न होती है) पर अपने प्रेमरूपी तेल को अपने जीवन-दीप में भर कर हृदयरूपी वर्ती को जला कर प्रकाश उत्पन्न करना अच्छा है। विरह में जलने से प्रेम में पवित्रता आती है तात्पर्य यह है कि प्रेम का उद्गम तो अपने ही अन्तस्तल से होना चाहिए। अपने छोटे से तन से पतंगा भला नवीन ज्योति का प्रसार कब कर पाया। अर्थात् आत्मा प्रियतम से पूर्ण प्रेम के लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व ही ह्रास को प्राप्त होती है।

तू अपने जीवन के दीप को मृदुलतर बना। उसमें अपने स्नेह-सिंचित उर को बत्ती बना। फिर तू हँस-हँस कर जल। इससे तुझे शोभा, आभा प्राप्त होगी!

भगवान आनन्द-स्वरूप हैं और आत्मा भी परमात्मा का अंश होने से आनन्द-स्वरूप हुई। किन्तु भगवान के विछोह में आत्मा चिर-दुखी है। अः चिर-दुख ही, वेदना ही चिर-सुख हुआ। बड़ी मार्मिक काव्योचित व्यंजना है।

कवयित्री को अपनी वेदना प्रिय है। वह जलने का वरदान माँगती है। वियोग में प्रेम का आभामय रूप निखरता है। इसी से महादेवी विरह से प्रेम करती हैं।

गीत—७८ (बताता जा रे अभिमानी)

शब्दार्थ—उर्वर—उपजाऊ। अभिशाप—शाप।

कवयित्री अपने प्रियतम को निष्ठुर और अभिमानी कहते हुए संबोधित करती है—

ए अभिमानी ! मुझे यह बताता जा। मेरे नेत्र जीवन के प्रत्येक कण को अपने आँसुओं से सींच कर रससिक्त तथा उर्वर कर रहे हैं। हृदय में मधुर भावनाओं का कोष यह मेरे नेत्र उँड़ेले दे रहे हैं। तुम्हारे वियोग के कारण मैं एकाकी हूँ। मेरा हृदय रिक्त है, शून्य है। किन्तु मेरे इस सूनेपन को तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी स्मृति का स्पंदन (कंपन) भर रहा है। तुम्हारे वियोग में मैं दुखी हूँ। वह मेरा निर्धन दुख ही मेरा सर्वस्व है। जगत् के समस्त वैभव से अधिक महत्वपूर्ण मेरे लिए तुम्हारे द्वारा प्रदान किया मेरा दुख है। मुझे तो तेरा समस्त वैभव प्राप्त है। मेरा वैभवपूर्ण हृदय तुम्हारी ही तो देन है, तो मैं तेरे वैभव की भिक्षुक कहलाऊँ या रानी कहलाऊँ ? ए अभिमानी, यह बताता जा !

मेरा अन्तस्तल तुम्हारे वियोग में दीपक-सा जल रहा है। मेरे आँसुओं के बादल संचित (एकत्रित) हो रहे हैं। इसमें प्रलय-काल का अनिल (मेरी दीर्घ निश्वासें) लिपटा हुआ है। झंझा-वात के सामने यह वियोग-दीपक कैसे जल पायेगा, मैं यही सोच रही हूँ। उसे तो बुझ जाने का भय रहेगा। फिर इस विरह-दीपक में तो हिय का पानी (आँसू) भरा है। भला पानी से दीपक कैसे जलेगा ? यह तो बताता जा। (कवयित्री को अपने प्रेम में विश्वास है। वह विश्वासपूर्वक समझती है कि विरह-वेदना में उसके प्रेम की प्रभा धीमी नहीं पड़ सकती। प्रेम तो उस ज्योति-शिखा को और भी प्रज्ज्वलित कर देगा)।

मैं तो केवल यही चाहती थी कि तेरी प्राप्ति मुझे भले ही न हो, पर मैं अपने को तेरे ऊपर बलिदान कर सकूँ। मैंने प्रेम में मिट-मिट कर अपना 'बनना', अपना निर्माण बिसार दिया, विसर्जित कर दिया। तेरा प्रेम मेरे लिए वरदान रहा या अभि-शाप—यह तू ही बता। मैं अपने प्रथम मिलन-- यद्यपि क्षणिक

—की कथा कहूँ या चिर-विरह की कहानी कहूँ ? यह तू ही बताता जा।

कवयित्री कहती है कि मैंने प्रियतम को कभी नहीं माँगा। मैंने उनकी विरह-वेदना को ही माँगा। वह विरह-वेदना ही मेरे जीवन का आभामय वैभव है। अत: मैं तेरे वैभव की भिक्षुक भी हुई तथा तेरे वैभव की रानी भी। मैंने केवल तुझसे प्रेम करना और प्रेम में मिटना चाहा था। आज मेरे पास क्षणिक मधुर-मिलन की कहानी भी है और चिर-विरह की कहानी भी।

गीत—७९ (मुखर पिक हौले बोल)

शब्दार्थ—मुखर—अधिक बोलनेवाला। हौले—धीरे। निशीथ —रात।

प्रतीक के रूप में 'मुखर पिक के बोल' कवयित्री के हृदय की चंचल, मर्मस्पर्शी, अनन्त भावनायें, प्रियतम की स्मृतियाँ हैं।

ए मुखर पिक ! तू यदि चुप नहीं रह सकता तो कम-से-कम धीरे धीरे से तो बोल। तू बड़ा हठी है। पंचम स्वर से तू क्यों बोल रहा है। यदि तू ऐसे पंचम स्वर से बोलता रहेगा तो सोई हुई मृदु, मधुर कलियाँ जाग पड़ेंगी। तेरा रसीला स्वर उनकी निद्रा को भंग कर देगा। मोहित हुए भौंरे तुझसे और भी अधिक कूकने को कहेंगे। तेरी कूक की मिठास से वह रस-मग्न जो हो जायेंगे। पीले पल्लव पृथ्वी पर गिरने लगेंगे जैसे तेरी रस-माधुरी से वे चौंक-चौंक कर मूर्च्छित हो जाते हों। आम के वृक्ष बौर से भर जायेंगे। प्रेम की अधिकता से इनका रोमांच हो जायगा। स्वयं वायु मस्त होकर बहने लगेगी ! हठ न कर। धीरे-धीरे बोल।

बसंत ऋतु का प्यार भ्रमरों के गुंजार की बंसी के रूप में गूँज उठेगा। स्वयं बसंत ऋतु प्रेम के स्वरों में बोल उठेगा। उसका मधुर स्वप्न समाप्त हो जायगा। वायु के कारण चंचल

पत्तों तथा घास से उनकी मोती की बूँदें (ओस) ढुलक पड़ेंगी, जो उनके लघु सुकुमार स्वप्न की भाँति है। (जैसे स्वप्न बहुत अल्पकाल तक ही रहता है वैसे ही ओस बिन्दु भी शीघ्र ही ढुलक जाते हैं।) विरही को अपने प्रियतम के मधुर स्वप्न कितने मूल्यवान होते हैं। तेरे हठीले बोल से उनके मधुर स्वप्न भंग हो जायेंगे।

पक्षी भी अपना घोसला छोड़कर कलरव कर उठेंगे जैसे कि वह पूछेंगे 'कौन आता है जिसके लिए प्रकृति इतनी व्याकुल है ?' दिशाओं रूपी नववधुओं के बादलरूपी घूँघट के छोर भी चंचल हो उठेंगे। अ त् बादल भी चंचल हो जायेंगे। किसी के आने की आशायुक्त प्रसन्नता से उनके कपोल प्रेमाश्रुओं से भर जायेंगे।

मेरे प्रिय को तो निशीथ के सन्नाटे में ही आना अच्छा लगता है। उसकी पद-चाप तो मेरे नीरव क्षणों से भी अधिक नीरव है। ए मेरे श्रेष्ठ मन ! यह पल तथा घड़ियाँ कितनी अनमोल हैं जब तुम प्रिय-आगमन की आशा से उद्वेलित हो रहे हो !

(अन्य स्थानों पर भी कवयित्री ने अपने प्रियतम की इस प्रवृत्ति का वर्णन किया है—

'प्रियतम को तो भाता है घन के पर्दे में आना,
ओ नभ की तारावलियो तुम क्षण भर को छिप जाना।')

वह स्वप्न बन-बनकर आता है और अचेतावस्था दूर होते ही लौट जाता है। सूफियों की 'हाल' की अवस्था में ही प्रियतम आता है और अचेतावस्था दू ह वह चला जाता है।) मैं प्रतीक्षा रत हूँ। पथ पर मैंने अपने पलक पाँवड़े बिछा दि हैं। इन पलकों के अति निकट ही (आड़ में ही) मेरे कान जा

बैठे हैं। आँखें देखेंगी बाद में, पर कान तो देखने के पूर्व ही पद-चाप सुनकर पहचान लेंगे।

(एक शेर है—'आहट पे कान, दर पे नजर दिल में इस्तराव
पूछो सितमकशों से मजा इन्तजार का)

तू व्यर्थ कानों में मधु मत घोल ! धीरे-धीरे बोल !

ए मेरे मन ! यदि तू उस करुण हिलोर को अपनी स्वर-लहरी में आत्मसात् कर सके तो अवश्य कर ले। मेरे मन ! तू भी उतना ही मधुर होगा। मेरा हृदय इतना शुभ हो जाय कि प्रात:काल में उसे मेरे मन को छोड़कर कोई अन्य स्थान छिपने के लिए खोजने की आवश्यकता ही न प्रतीत हो। अपनी बंद आँखें खोलकर मैं उसे उसमें लेकर बंद कर लूँ। अपनी पलकों से उसे बाँध लूँ।

प्रियतम की मधुर स्मृति इतने मादक रूप से कवयित्री के हृदय को उद्वेलित किये डाल रही है तो वह उसे तनिक धीरज, तनिक संयम से काम लेने को कहती है। (कुछ ऐसे ही भाव उर्दू के इन अशार से भी टपकते हैं:—

'कुछ आ रही है आहट उस पाये-नाज की सी,
तुझ पर खुदा की रहमत, ए दिल ! जरा ठहरना।'
तथा—'सँभलने दे जरा ओ नामुरादी क्या कयामत है,
कि दामाने खयाले यार छूटा जाय है मुझसे।')

गीत—८० (पथ देख बिता दी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं)

शब्दार्थ—सुवासित—सुगंधपूर्ण। पंकज—कमल। पाटल—गुलाब का फूल।

आत्मा कैसे परमात्मा से साक्षात्कार करने के लिए प्रतीक्षा-रत तथा प्रयत्न-रत रहती है तथा उस प्रतीक्षावस्था में क्या स्थिति रहती है इसी का वर्णन यहाँ किया गया है।

मैंने पथ जोहते-जोहते ही रात बिता दी पर मैं प्रिय को पहिचान नहीं सकी । ऐसा तो नहीं हुआ कि वह आये हों और मैं उन्हें पहिचान न पाई हूँ ।

आकाश-मार्ग को अंधकार ने अपने सुवासित हिम-जल से धोया, अर्थात् रात्रि के समय ओस-बिन्दु से विश्व छा गया । आकाश-मार्ग से ओस की बूँदें गिरीं । जैसे कि प्रियतम के आगमन की आशा में यह सब तैयारियाँ हों । सूने आँगन (रिक्त आकाश) में दीप (तारे) झिल-मिलाकर प्रिय के मार्ग का आलोक-पूर्ण करने लगे । पर उन प्रज्ज्वलित दीपों को प्रातः कौन आकर बुझा गया (प्रातः को तारे छिप जाते हैं) मैं नहीं जान पाई । ए प्रियतम ! कहीं यह तुम्हारा काम तो नहीं है । मैं प्रिय से अभी अपरिचित सी ही हूँ । (अभी आत्मा से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है)

प्रिय के आगमन के लिए मंगलमय पूजा का आयोजन किया गया । कनक-थाल (अरुणिमापूर्ण आकाश) में रंगीन बादल सुनहले अरुण गुलाब की भाँति था । प्रातः का सूर्य ही मंगल-कलश था । विहगों का कलरव ही मंगल-गान था । (पूजा में पूजा की थाली, उसमें रोली, अक्षत, पुष्प रेशमी वस्त्र आदि होते ही हैं । मंगलकलश भी होता है । मंगलाचार भी होता है ।) प्रातःकाल प्रिय-पथ से वह आया तो पर उसने मुझे अपनी प्रेम गाथा सुनाई नहीं ।

मेरे प्रियतम को मनाने के लिए संध्या शृंगार करके आई । इन्द्र-धनुष ही उसका रंग-बिरंगा चीर था । महावर (अरुण-आकाश) तथा अंजन (नीले या काले बादल) से वह सुशोभित थी । खिले हुए कमलों पर गूँजते हुए भौंरे ही उसके नुपुरों की रुनझुन थी । पर मैं प्रियतम के ध्यान में इतनी बेसुध थी कि प्रियतम को मनाने को आने वाली संध्या भी मेरी बेसुध-वाली अवस्था को दूर न कर सकी ।

इन दीर्घ निश्वासों के इतिहास के महत्व को आँकते हुए मुझे युग बीत गए हैं। आजीवन मैं विरह का महत्व समझती रही हूँ और उसका मूल्य आँकती रही हूँ। रिक्त (क्योंकि प्रियतम से मिलन नहीं हुआ है) पल फिर-फिर कर आशा का संदेश लिए हुए लौटते हैं और उससे मेरा शरीर पुलकायमान हो जाता है, उसमें रोमांच हो उठता है। मेरे नेत्रों से प्रिय की यह याद लुढ़क कर बह रही है, ढुलक रही है, इसे तुम आँसू मत समझना।

हे सखी ! नभ का भी नाश हो जायगा, जैसे दिन में कोहरा मिट जाता है। विश्व का भी ह्रास होगा, जैसे जल के बुदबुद जल्दी ही मिट जाते हैं। पर मेरे दुख का राज्य अनन्त है। मेरी चिर-वेदना सदा स्थायी रहेगी। मैं कोई उस पथ के चिह्न के समान तो हूँ नहीं जो कुछ देर बाद मिट जाते हैं। मैं तो प्रिय की अमर सुहागिन हूँ।

कवयित्री कहती है कि मेरे हृदय में अनन्त वेदना है। वह वेदना मेरे प्रियतम की दी हुई है। वह मेरा सौभाग्य-चिह्न है। वह तो कभी नहीं मिटेगा। यह सत्य है कि मैंने प्रिय का साक्षात्कार नहीं किया है। संभव है प्रियतम को मैं पहिचान भी न पाऊँ। (आत्मा का जब परमात्मा से साक्षात्कार होता है तो पहले-पहल आत्मा को उसे पहिचानने में कुछ कठिनाई पड़ती ही है। यद्यपि आत्मा परमात्मा का अंश है। पर विछोह भी तो लम्बे अरसे से है।) पर मैं उसका पथ तो जोह ही रही हूँ। (आत्मा सदा परमात्मा से मिलने को आकुल तथा प्रयत्न-रत रहती है।)

गीत—८१ (इस जादूगरनी वीणा पर गा लेने दो क्षण भर गायक।)

शब्दार्थ—स्मित—हास्य। दिव—सूर्य, ज्योति।

कवयित्री कहती है कि उस विराट सत्ता के आनन्दमय तत्त्व का तनिक अंश भी जिसे प्राप्त हो जाता है उसका जीवन धन्य और सार्थक हो जाता है।

ए गायक ! तुम्हारी वीणा बड़ी जादूगरनी है इसमें विश्व को मोह लेने की अद्भुत क्षमता है। मुझे इस वीणा पर दम भर गा लेने दो। विश्व का समस्त उल्लास उस आनन्द-स्वरूप-सत्ता के ही आनन्द का अंश हैं। जिसने एक कण भर भी इस अंश को पा लिया, बस वही विश्व को मोहने में समर्थ हो गया।

अपने रोम-रोम में प्यास भर कर क्षण भर ही को पपीहों ने अपनी दर्द-भरी वाणी में 'पी कहाँ' का राग गाया था कि समस्त संसार आकुल-सा होकर काँप उठा। विश्व रोमांचित हो गया। तारागण से पूर्ण अम्बर भी सिहर उठा। (आकाश में चंचल तारे क्या झिलमिलाते हैं, जैसे अम्बर को प्रेम-कम्प हो रहा हो। बादल का हृदय भी उमड़ आया (बादल उमड़-घुमड़ पड़ा)। हे गायक [जगत-पिता], तुम्हारी वीणा के स्वर [अनन्त-प्रेम की सत्ता] ऐसे मोहक हैं।

क्षण भर के लिए ही फूलों ने अपने अधरों पर मुस्कान तथा आँखों में आँसू (ओस की बूँदें) भर कर गाया था कि उन्होंने विश्व पथ को नन्दन-कानन का स्थायी पथ बना डाला। पृथ्वी को उन्होंने अपने मोहक राग और रूप से स्वर्ग बना डाला अपने लघु उर के अनन्त सौरभ से उन्होंने यह पथ भर डाला। उनका जीवनरूपी निर्झर सदा को झरने लगा। तो फिर हे गायक ! मुझे भी क्षण भर गा लेने दो।

ज्वाला को आलिंगन करके एक क्षण-मात्र को ही दीपक ने गाया था, वह लघु पल ही तेरे लिए गर्व का विषय है। वह लघु रजकण ही आभा के सागर के रूप में परिवर्तित हो गया है। उस आभा पर स्वयं सूर्य बलिहारी जाता है।

तो हे प्रिय मैं, भी एक घड़ी भर गा लूँ—अपने हृदय को मधुर वेदना से भर कर। (वह वेदना के गीत गाना चाहती है। वेदना उसकी प्रिय सहचरी है) तब दुख और सुख में भेद न रह जायगा। दोनों में समरसता, एकरसता आ जायगी। तब दुख सुखमय हो जायगा और सुख दुखमय हो जायगा। (दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना) तरल निर्झर वह उपल (पत्थर, ओला) हो जायँगे और मरुस्थल भी उर्वरा भूमि हो जायगे। तुम्हारे वीणा के स्वरों में उथल-पुथल मचा देने की शक्ति है, कुछ का कुछ कर देने की शक्ति है।

कवयित्री का कहना है कि मैं ईश्वरीय प्रेम प्राप्त करने में प्रयत्न-रत हूँ। वह यदि प्राप्त हो जाता है तो विश्व में परिवर्तन उपस्थित करने की, उथल-पुथल मचा देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। आत्मा मधुर तथा चंचल भावनाओं से भर जाती है।

गीत—८२ (घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय)

शब्दार्थ—व्योम—आकाश। मंथर—धीमा, शान्त।

कवयित्री अपने जीवन का उद्देश्य चाहती है दूसरे के सुख-शान्ति की वृद्धि। हे प्रिय ! मुझे बादल बन जाने का वरदान दो।

मैं मानस (हृदय) रूपी जलधि (समुद्र) से नया जन्म पाऊँ। (बादल समुद्र के जल से बनते हैं) और तेरे दृग (नेत्र रूपी व्योम) में मैं घिर आऊँ। मेरा शरीर तरल अश्रु (जल की बूँदों) से विनिर्मित (बना) हो मैं सजल श्याम मंथर (धीमी चाल वाला) तथा मूक (नीरव) तरल गात से नित्य आकाश में घिरूँ और फिर झर-झरकर (बरस-बरस कर) मिट जाऊँ। अर्थात् विश्व को रस-सिक्त करते हुए मैं आत्म-बलिदान कर दूँ। मेरा जन्म मिटने के लिए हो। मैं बादल के समान सजल श्यामल

नयनाभिराम रूप और जीवन पाऊँ और वह क्षणिक जीवन फिर रस की वर्षा करके विलुप्त हो जाय।

कवयित्री व्यक्तिगत सुख तथा स्वार्थ के लिए जीवन नहीं चाहती। बस विश्व की वेदना को शान्त करने के लिए जन्म पाना चाहती है। वह घन बनना चाहती है, क्योंकि घन-वर्षा ही पृथ्वी को सरस, सजल और उर्वरा करती है।

गीत--८३ (आ मेरी चिरमिलन यामिनी)

शब्दार्थ—यामिनी—रात्रि। सीरे—ठंढे। कबरी—कंथा। परिमल—पराग! दामिनी—बिजली।

ऐ मेरी रात्रि, आ, जिसमें मैं अपने प्रिय से मिल सकूँ—उस प्रिय से मिल सकूँ—जिससे मिलने की इच्छा मैं अनन्त काल से करती आ रही हूँ। ऐ मेरी चिर-मिलन यामिनी, आ! (रात्रि के समय ही निद्रा को अवस्था में प्रियतम की छवि के दर्शन होते हैं। अत: प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष रूप से ही प्रियतम से मिलन होता है। आत्मा और ब्रह्म के साक्षात मिलन की बात यहाँ कही गई है। इसी से रात्रि को मिलन-यामिनी कहा है। कवयित्री अनेक बार कह चुकी है कि उसके प्रियतम को तम के परदे में, रात्रि की नीरवता में ही आना अच्छा लगता है।) ए तममयी [रात्रि] तू धीरे-धीरे घिर आ। आज तू अपनी अलकों में हीरे न सजा। अर्थात् आज रात्रि को तारागण न चमकें। इतना सन्नाटा रहे कि तेरे ठंढे श्वास [रात्रि की ठंढक के भी कारण] विश्व को चौंका न दें। अर्थात् तेरे श्वास भी कहीं नीरवता भंग न कर दें। ए कामिनी! [कोमल स्त्री] तेरे अलकों में गुँथे हरिश्रृंगार के फूल [रात्रि के समय के तारे] धीरे-धीरे ही झरें। (तारा यदि टूटे अथवा तारे यदि विलुप्त हों, तो धीरे-धीरे हो)

तू पराग के बिछौने धीरे धीरे से बिछा दे, अर्थात् शिथिल चरण से मलयानिल डोले। आज तू कलियों को रोने म दे।

अर्थात् ओस से वह परिपूर्ण न हो (अन्यथा रोने के स्वर से नीरवता भंग होगी ।) आज चिर चंचल लहरों को सोने दे— अन्यथा उनका शोर नीरवता को भंग करेगा। आज तू निद्रित विश्व पर चन्द्रमारूपी प्याले से मधुर चाँदनी न ढालने दे कि कहीं नीरवता भंग हो जाये।

नीरव घन (बादल) परिमल (पराग) भर लावें। उनका मृदु उर आँसू बन-बनकर न गले। पपीहा अपनी दर्द भरी 'पी कहाँ', 'पी कहाँ' न सुनाने पावे। हे अलि ! (चिर-मिलन यामिनी) आज जुगनू के छिन्नहार को पहिन कर चपल दामिनी न विहँसे। (बिजली न चमके) (जुगनू के छिन्नहार से आशय यह है कि एक जुगनू यहाँ चमकता है और और दूसरा वहाँ। उनकी चमक में एकसूत्रता नहीं होती। इसी से हार को 'छिन्न' (छितरा हुआ) कहा है।

यह आलस्यपूर्ण लोचन निरंतर जाग रहे हैं (अपलक हैं)। आज मेरे बंधन मेरे लिए मुक्ति के समान प्रिय और मधुर बन गए हैं। मेरा लघु क्षण भी मेरे लिए अनन्त हो गया है। हे रात्रि ! आज मेरे हृदय की कम्पन विरह-रागिनी नहीं बजा पायेगी।

छाया का विनाश अंधकार में हो जाता है, उसी प्रकार उस मिलन रात्रि के समय में छाया की भाँति अपने प्रियतम में विलीन हो जाऊँगी। छाया का क्षय (नाश) तम (अंधकार) में हो चला है। आज सीमित (मेरा सीमितपन) असीम (विराट सत्ता) में सदा को लय हो गया है। प्रियतम के व्यक्तित्व में मैं लीन हो जाऊँ। यहाँ आत्मसमर्पण मेरी पराजय कही जा सकती है, परन्तु वास्तव में इस हार में मेरी सैकड़ों विजय निहित हैं। मेरी एक हार में सैकड़ों जय (सफलता) छिपी हों (अर्थात् अपने प्रियतम का साक्षात्कार मैं न कर पाई। इसे मेरी हार कह

लो। पर मैंने वह भुवन-मोहनी वेदना पाई है कि इस पर सैकड़ों मिलन (जय) न्योछावर।) आज विश्व का कण-कण मुझे चिर सुहागिनी कहेगा। मेरा अन्तर सदा मेरे ही प्रिय की वेदना से पूर्ण रहेगा। अत: मैं चिर सुहागिनी हुई।

वह नीरव यामिनी की कामना करती है और विश्व की अनेक वस्तुओं से नीरवता भंग न करने को कहती है, क्योंकि उसका प्रियतम नीरवता ही में आता है।

गीत—८४ (जग ओ मुरली की मतवाली)

शब्दार्थ—गोरसवाली—ग्वालिन। सेली—साधुओं का कपड़ा।

कवयित्री अपनी वेदना को प्रिय के प्रेम की (मुरली की) मतवाली कहती है। ओ मुरली से प्रेम करनेवाली जाग। मेरी वेदने! तेरे ही कारण प्रेम में प्राण- तिष्ठा होती है। जीवन के दुर्गम पथ मेरे लिए ऐसे आकर्षक और मधुर हो जायें, जैसे कि पवित्र ब्रज की गलियाँ हों। शूलों (काँटों) में मुझे मधुवन की कलियों का-सा रस मिले। मेरे आँसुओं में यमुना का प्रवाह हो। मेरे हृदय के कम्पन में वंशी की ध्वनि हो। ओ मेरी वेदना, यदि तू करुणा का मंगल घट लेकर ग्वालिन बनकर आये तो मेरा जीवन धन्य हो जाय। (कवयित्री कहती है कि यदि वेदना मेरी चिर-सहचरी हो जाय तो विश्व का कण-कण मेरे लिए माधुर्य से भर जाय। वेदना उसे अत्यन्त प्रिय है।

यद्यपि तेरे चरणों पर नवों निधियाँ खेला कीं (नवों निधियाँ तेरे अधीन थीं) पर तूने हँस कर सेली को पहिनना अच्छा समझा। (सबसे अधिक प्रिय, वेदना ही कवयित्री को लगी।) तू दीवानी, चिर 'जाग्रत' थी। तू प्रिय की भिक्षुक थी। तुम दुख की रानी रहीं। अर्थात् दुख को तुमने सदा गले लगाया। तूने अपने खारे दृग-जल से सींच-सींच कर चित्र की स्नेह-

रूपी बेल का पोषण किया (वियोग और वेदना ही में सच्चे प्रेम का निखार होता है।)

कंचन के प्याले का फेनिल नीलम-सा अंधकार-सा हलाहल विष तूने अपने स्पर्श-मात्र से प्रिय के पद-पद्मों के मधुजल के रूप में परिवर्तित कर डाला। वह तम सा असित जल तेरे स्पर्श से उज्जवल हो गया। वेदना के स्पर्श से दुख-अश्रु पवित्र प्रिय के पद-पद्मों के मधुजल में परिवर्तित हो गया। तू फिर अपने मधु कर से छूकर इस विष की प्याली को मधुर कर जा। अर्थात् पवित्र वेदना के स्पर्श से अशुभ भावनाओं से पूर्ण हृदय भी पावन भावनाओं से पूरित हृदय हो जाता है। वेदना की अतिशयोक्ति से हृदय में सात्विकता का जन्म होता है।

यह मानसरोवर (हृदय) मरुभूमि में परिवर्तित हो गया है, आँखों में अब रोते-रोते आँसू भी नहीं रहे हैं। दृग के निर्झर गतिहीन तथा मौन हो गए हैं। उनमें न बहाव है न चंचलता। इस शीत निशा (निराशा रूपी घोर अंधकार) का अंत नहीं है। मेरे जीवन में तो पतझड़ ही बार-बार आता है। अब बसंत नहीं आता। ए वेदना ! तू गा ! तेरे ही पंचम स्वर से (सशक्त वाणी से) प्रभावित होकर हृदय की डाली-डाली कुसुमित होगी (फूलों से भर जायगी)।

अपने प्रियतम से प्रेम करनेवाली मेरी वेदना, तू सजग हो जा।

गीत—८५ (मैं मधुमास आली)

शब्दार्थ—कालिन्दी—यमुना। निमिष—क्षण।

हे आली ! मैं मधुमास बनी हूँ। (कवयित्री अपनी वेदना को सदा अपनी सखी कहती है।) दुख मेरे लिए मधुर है। उस मधुर विषाद की आज करुण रात घिर आई है। प्रिय के स्मृति-रूपी चन्द्र से झलक कर छिटकी हुई चाँदनी तू बरस जा। प्रिय

की स्मृति से शरीर पुलकायमान होता है। हृदय प्रेम की आभा से जगमग करने लगता है। ए सजनी ! मेरी आँखों में निराली यमुना उमड़ आई है। अर्थात् प्रेमाश्रु की मैं अविरल वर्षा कर रही हूँ।

चाँदी के स्वप्नों में छितरी हुई चंचल तारावली सजग है। तारे रात भर झिलमिलाते हैं अतः रात भर जगने के कारण उनकी पलकें नहीं लगती। सुखरूपी पिक ने अचानक जागकर मादक पंचम तान लेना प्रारंभ किया। निश्वास की मृदु मलयानिल बहने लगी।

मेरा प्रत्येक रोम सजल है; प्रेम की झलक से पूर्ण है। मधु सिक्त उसमें पाँवड़े बिछे हैं। भावों की मधुरिमा ही पाँवड़े हैं। आज जीवन के क्षण मेरे अज्ञात दूत हैं। अर्थात् यह मधुर क्षण इतनी शीघ्रता से भागे जा रहे हैं कि इन क्षणों से परिचय प्राप्त करने का अवसर ही नहीं आता। या यह क्षण मेरे लिए क्या संदेश लाए हैं यह मैं नहीं जानती। (इसी से अज्ञात दूत कहा है।) क्या प्रिय की मधुर रागवाली मुरली अब न बजेगी ?

कवयित्री ने अपनी वेदना को मधुमास माना है यह रूपक बाँधकर उसने अपनी वेदना के रूप को व्यक्त किया है। मधुमास में चमकते हुए तारों से भरी रातें होती हैं मधुर ज्योत्स्ना रात को आलोकित करती है, मलयानिल बहती है, कोमल पंचम स्वर से बोलती है। ओस की बूँदों से पुष्प सिक्त रहते हैं। कवयित्री ने अपनी तुलना मधुमास से की है। उसका मधुर विषाद ही रजनी है, स्मृति ही ज्योत्स्ना है, प्रेमाश्रु ही यमुना है आदि।

अपनी वेदना के कारण कवयित्री-मधुमास के समान मधुर भावनाओं का केन्द्र बनी है।

गीत—८६

(मैं मतवाली इधर-उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है)

शब्दार्थ—हाट—बाजार। वेला—समय।

कवयित्री ने आत्मा की महानता का वर्णन किया। प्रियतम का अंश होने से ही वह महान् है। प्रियतम की दी हुई वेदना भी मधुर है।

इधर मैं भी अपने प्रियतम के प्रेम में मतवाली हूँ और उधर मेरा प्रिय भी अपूर्व शोभा से युक्त, निराली आन-बान वाला है। मैं यहाँ इस संसार में हूँ और मेरा प्रियतम ब्रह्मलोक में निवास करता है अर्थात् मैं अपने विश्राम से वियुक्त हूँ। मेरी आँखों में यह प्रेमाश्रु नहीं है वरन् मोती बनकर उसकी छवि ढलकर आई है। आकाश में यह बिजली नहीं है वरन् उसके घन (बादल) रूपी प्याले में मेरा ही प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। नभ में दीपक (तारागण) अवश्य उसके हैं किन्तु उसमें स्नेह (तेल तथा प्रेम) मेरा ही है जो उन्हें ज्योतिर्मय रखता है। उसकी हर कम्पन की कहानी में मेरे ही यह प्राण हैं। यहाँ स्वप्नों की हाट है, हे अलि ! यहाँ छाया का मेला-सा लगा है। अर्थात् विश्व के समस्त व्यापार स्वप्नवत् हैं। यहाँ की प्रत्येक वास्तविकता एक छाया-मात्र है।

कवयित्री के अद्वैतवाद का समर्थन इन पंक्तियों में होता है। आत्मा और परमात्मा में माया के आवरण के कारण जो भेद-सा, दुई का भाव-सा दिखाई भी देता है, वह अवास्तविक है, भ्रम-मात्र है। आत्मा और परमात्मा एक ही है। पर आत्मा अंश है और परमात्मा पूर्ण। आत्मा के अस्तित्व से ही परमात्मा के खेल (सृष्टि व्यापार) की महत्ता है। उसी तरह जैसे पर-मात्मा का अंश होने के कारण ही आत्मा का महत्व है। आत्मा

और परमात्मा की एकरूपता ही से विश्व का व्यापार नियमित और व्यवस्थित रूप से चलता है।

मेरे मधुवन की कलियों मे जो स्मित (मुस्कान) है वह मेरे उस प्रियतम ही की है। परमात्मा की मधुशाला में मेरे ही मन की मादकता बिकती है। आत्मा ही न हो तो परमात्मा की महत्ता, उसकी अलौकिकता, उसके उत्कर्ष की कहानी कहे कौन ?

('दुनिया पे अपना हुस्न जताने के वास्ते,
एहसाँ लिया है रूह ने मुश्ते गुबार का।')

शरीर में आत्मा का अस्तित्व ही शरीर-धारी मनुष्य की महत्ता का कारण है, क्योंकि आत्मा, परमात्मा का ही एक रूपान्तर है, अंश है। मेरे दुख का राज्य मधुर है और उसकी सुधि (स्मृति) के पल (क्षण) ही उस राज्य के रखवाले हैं। अर्थात् उसकी स्मृति के कारण ही मेरे दुख का रूप उज्जवल है, पावन है। उसके सुख के कोष की रक्षा के लिए मैंने उसमें वेदना के ताले डाल दिए हैं। वह सौरभ का सिन्धु है और मेरा यह मधुर जीवन मधु की वेला के साधन हैं। यह जीवन इसलिए मधुर है क्योंकि यह उस 'मधुर तम' की देन है।

हे अलि ! मेरा प्रियतम मुझसे तो परिचित नहीं है, पर मेरी इन आँखों के पानी से उसका परिचय है। मैंने उसे देखा नहीं है किन्तु उसकी पग-ध्वनि अवश्य मेरी पहिचानी हुई है। अर्थात् अभी आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है किन्तु, आत्मा को उस विराट सत्ता का आभास-मात्र है। मेरे मन में उसकी स्मृति भी विस्मृति के रूप में बन कर आती है। परमात्मा के चिंतन में आत्मा बेसुध-सी होने लगती है। वह अचेत-सी अवस्था उसकी स्मृति के प्रभाव ही से है। उसके प्रेम की पराकाष्ठा में मनुष्य अपने वास्तविक अस्तित्व को भी भूलने-सा लगता है। 'हाल' (अचेतावस्था) की दशा में काया भी

छायावत् हो जाती है। हे सजनी! उस परमात्मा ने यह निर्भय खेल मुझसे क्यों खेला है ?

उसका तो खेल है और मुझे वेदना की असह्य पीड़ा सहना पड़ती है। विश्व का निर्माण ही उस विराट सत्ता का खेल है। यह वही जाने कि वह यह खेल क्यों खेल रहा है।

आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहती है। और जब तक आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक उसकी दशा वेदनापूर्ण रहती है। आत्मा को परमात्मा का आभास-मात्र होता है और वह भी सच्ची लगन होने पर। कवयित्री (आत्मा) विराट सत्ता के प्रेम तथा उसकी खोज में मतवाली है।

गीत—८७ (तुमको क्या देखूँ चिर-नूतन)

हे चिर-नूतन्! मैं तुम्हें क्या देखूँ। तुम तो मेरे रोम-रोम में समाये हुए हो। तुम तो मेरे ही अन्तर में वर्तमान हो। तुम मेरे लिए चिर-नूतन हो। तुम्हारी रूप-सुधा मेरे लिए कभी बासी नहीं होती। छोटे-से छोटा तृण तथा बड़े से बड़ा अम्बर जिसके काले तिल में प्रतिबिम्बित हो जाता है। मेरे तनिक-से तिल में समस्त विराट सत्ता समायी है। नीरवता के स्वप्न से जग कर (अर्थात् आत्मा परमात्मा से साक्षात्कार करने के लिए प्रयत्न-रत होकर) अपनी चंचलता से (कर्मण्यता से) सागर (विश्व-हृदय) को भर देता है। बिना आत्मा की परमात्मा की ओर प्रगति हुए आकारहीन तम (व्यापक अज्ञानांधकार) दूर नहीं हो सकता। और बिना अंधकार के दूर हुए भला यह लोचन क्या देख पायेंगे। ईश्वर के साक्षात्कार के लिए अज्ञानांधकार का दूर होना परमावश्यक है। तुमको मैं पहिचानूँ क्या। पहले अपने हृदय से दुई का भाव, अज्ञान के तम को तो दूर कर लूँ।

जब मैं स्वयं अपने ही हृदय को न जान पायी तो उस विराट सत्ता को ठीक से कैसे समझूँगी। मेरा हृदय मेरे ही सुख-दुख से उर्वर है। जीवन में यदि दुख और सुख दोनों न हों, तो फिर जीवन ही क्या। कवयित्री को एकाकी जीवन पसंद नहीं है। इस हृदय को मैं अपना कहती हूँ। इसे अपना कह कर मैं गर्वित होती हूँ। यह मेरे सूनेपन को चंचल-पलों में परिवर्तित कर देता है। जड़ को यह (अस्थिर वस्तु को) नव कम्पन के पुष्पों में बदल देता है। मेरे हृदय की क्षमता अपूर्व है। मेरी ही श्वासों का यह उद्गम है। इसी के कारण मेरे प्राणों की स्थिति है। जब अपने ऐसे हृदय ही को मैं न जान पायी तो हे छायातन (अव्यक्त परमात्मा, अनुभव और ज्ञान में न आने वाली विराट सत्ता) तुम्हें ही भला क्या बाँध पाऊँगी। कवयित्री कहती है कि परमात्मा का साक्षात्कार करना हँसी-खेल नहीं है। मनुष्य अपने ही को नहीं जान पाता तो फिर परमात्मा को क्या जानेगा ? परमात्मा को जानने के पूर्व आत्म-ज्ञान का होना परमावश्यक है।

मेरी विरह-निशा ही उसके लिए दिन है। अर्थात् मेरी विरह-वेदना जिसके लिए खेल से अधिक महत्व नहीं रखती। वह स्वच्छन्द है पर मेरे तो बंधन का वही कारण है। स्वच्छन्द आत्मा शरीर की कारा में बंद है। यह भी अर्थ है कि आत्मा के साक्षात्कार की इच्छा मनुष्य को परवश कर देती है। वह भगवान अणु-अणु में समाया है। जो विश्व में व्याप्त है, जो बाँधा नहीं जा सकता, जिसकी प्रकृति ही चंचलता है (विश्व प्राणमय है, निष्प्राण नहीं) जिसका स्पन्दन ही विश्व की गति है उसके संयोग से ही मेरा जीवन संगम के समान पावन है। आत्मा का परमात्मा से गठ-बन्धन ही परम पावनता है। जब

मैं अपने चंचल मन ही को नहीं बाँध पायी तो हे चिर-चंचल ! तुमको ही कैसे रोक पाऊँगी।

छोटे-छोटे पल (काल) ही मेरे वश में नहीं हैं। जिनका व्यतीत हो जाना प्रलय के समान भयंकर है, क्योंकि बीता हुआ काल वापस नहीं आता; इन पलों के निर्माण से ही संसृति (विश्व) के अङ्कुर उगते हैं। मेरी पलकों का द्रुत (तेज) कम्पन (खुलना-मुँदना) ही जिस काल का चिर उत्थान और पतन है। (नये पलों का आना उत्थान और उनका व्यतीत हो जाना ही पतन है।) मेरे पल मुझसे ही नव हैं। मेरे लिए नवीन हैं और मेरे लिए चिरंतन (शाश्वत) हैं। मैं उनको ही बस में नहीं कर सकी तो फिर हे चिर-नूतन (जो स्थिर न हो, सदा परिवर्तन करता ही रहे, उसे पहचान कर भी पहचानना कितना कठिन हो जाता है, क्योंकि वह इतना शीघ्र बदल जो जाता है) तुम्हें ही कैसे देख पाऊँगी ?

कवयित्री कहती है कि आदमी का मन बड़ा चंचल है। यही बस में नहीं है। मनुष्य अपने समय को व्यर्थ खोता है पहले अपने को बस में कर लेने, मन और इन्द्रियों का दमन कर चुकने के बाद ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है, आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार संभव है।

गीत—८८ (प्रिय गया है लौट रात)

शब्दार्थ—अलस—आलस्यपूर्ण । अश्रु स्नात—आँसुओं से भीगी। वकुल—एक वृक्ष-विशेष । वात—समीर । विरल—छितरे । नीर-जात—कमल ।

कवयित्री कहती है कि मेरे प्रियतम रात्रि की नीरवता में आए। प्रतीक्षा-रत प्रकृति को नींद आ गई थी। और किसी को जाग्रत न पाकर (आत्मा को परमात्मा से मिलने को उत्सुक न पाकर) वह लौट गए। यह मेरा अभाग्य था।

प्रियतम रात को आये थे, किन्तु लौट गये। अपने सजल (ओस से पूर्ण) धवल (ज्योत्स्नापूर्ण), अलस (नीरव-निद्रित) चरणों से वह आया था। वातावरण मूक, मादक, मधुर तथा करुण था। ओस की बूँदों से पूर्ण चाँदनी रात थी। ऐसे नीरव और मोहक समय में मेरा प्रियतम आया था। सदा चंचल रहनेवाली हवा भी उस समय निद्रित थी। अपने सौरभमय (मस्त कर देने वाली पराग) को ढाल कर वह शिथिल हो चुकी थी (परिश्रम के पश्चात् शिथिलता स्वाभाविक है) और वकुल के अरुण पत्तों की सेज पर वह सोई है। युगों-युगों का मूक (नीरब) तथा विकल (वियोग-दुख के कारण) जल (अश्रु) अपने तरल (द्रव) स्नेह (प्रेम तथा तेल) से अब पुलकित है। उस स्नेह से पूरित दीप भी निद्रा में मग्न स्वप्न की गोदी में था। ऐसे समय मेरे प्रियतम लौट गये।

आकाश के यह छितरे हुए तारे नहीं हैं वरन् मेरे प्रियतम के अमिट पद-चिन्ह हैं। वह पद-चिन्ह-रूपी तारे जैसे नीर-जात को गिन रहे हैं।

न जाने किसके पदचाप से चकित होकर मेरे अमित (असंख्य) जन्म, प्रभात के रूप में प्रत्येक श्वास में जाग उठे हैं। मेरे प्रत्येक निश्वास में जन्म-जन्मांतरों की प्रतीक्षा जगी हुई है। प्रियतम के (पदचाप) की धीमी ध्वनि के कारण ही वह जगी है।

कवयित्री कहती है कि मेरे जीवन में निद्रा के बाद (आत्म-ज्ञान होने के पश्चात्) जो जागरण है, उसका कारण है—मुझे प्रियतम का आभास (पद-चाप की ध्वनि) होना।

गीत—८९ (एक बार आओ इस पथ से)

शब्दार्थ—कुन्तल—घुँघराले बाल। शलभ—पतिंगा। अम्बर—आकाश। संसृति—विश्व।

कवयित्री कहती है कि हे प्रियतम, एक बार भी यदि तुमसे मेरा साक्षात्कार हो जाय तो मेरा जीवन धन्य हो जाय। मैं विरह वेदना में कबसे जल रही हूँ। तुम्हारे आगमन से मेरा जीवन शान्ति को पा सकेगा।

हे प्रियतम। तुम चिर-चंचल हो। तुम हृदय में रुकते ही नहीं। बार-बार भाग जाते हो। मलयानिल की भाँति बनकर आओ और मुझे शीतलता प्रदान करो। इस मलयानिल से पूर्ण वन में (भावनाओं से पूर्ण जीवन में) तुम एक बार तो इस पथ (हृदय) से आओ। तुम्हारे अधरों पर स्मितरूपी किरणें खेल रही हों, तुम्हारा करुण-मुख श्रम-कणों (पसीने की बूँदों) से पूर्ण हो। मेरी विरहरूपी यामिनी (रात) पंथ (जीवन पथ) में अपने सुख दुख को लिए हुए अलसायी पड़ी है अर्थात् विरह-वेदना के कारण मेरा जीवन अशान्त है। तुम इस विरहरूपी यामिनी (कामिनी) के घुँघराले-लहराते बालों को अपने हाथों से सुगंधपूर्ण करके चिर-निद्रा में सुला दो। तुम्हारे मधुर स्पर्श से मेरी वेदना को शान्ति मिलेगी, वेदना सो जायगी।

तुम्हारे विरह में आकाश जल रहा है। अतः उसके हृदय में छाले पड़ गए हैं (तारों की ओर संकेत है) यह पल-पल के निष्ठुर प्रहरी हैं। सदा सजग रहते हुए तारे जैसे प्रहरी हों। यह तारे ऐसे दीप हैं जिन पर कोई पतिंगा मँडराता नहीं है— आत्म-बलिदान करने के लिए। इस नभ के उर के छालों के प्रति किसी को ममता, किसी को सहानुभूति नहीं है। इन्हें तो विरह की ज्वाला से निरंतर ऐसे जलना पड़ रहा है कि इन्हें भस्म हो जाने का भी अधिकार नहीं है। स्नेह (तेल) से रहित इन आकाश के झिलमिलाते दीपकों को तुम बुझा जाओ। अपनी निकटता से इस विरह-ज्वाला को शान्त करो।

हे प्रियतम, तुम हो, सर्वत्र व्यापक अंधकार है, और बस मेरा चिर-परिचित सूनापन है। मेरी छाया में (भावनाओं में) जिनमें समस्त विश्व का करुण स्पन्दन समाया है, आज मुझमें लय (विलुप्त) हो जायँ अर्थात् इन करुण भावनाओं को मैं विस्मृत कर दूँ। तेरे निश्वासों में घुल-मिलकर मेरा जीवन सौरभ के समान मादक और मधुर हो जाय।

गीत--९० (क्यों जग कहता मतवाली)

शब्दार्थ --आँकवाऊँ--मूल्य निर्धारित करूँ। अनुनय--विनय, प्रार्थना। मनुहारों--मनाना, खुशामद। आवाहन--स्वागत के स्वरों में बुलाना। वितरण--बाँटना।

कवयित्री को अपनी वेदनारूपी निधि अत्यन्त प्रिय है। वह वेदना को अपने जीवन से अलग नहीं करना चाहती।

पता नहीं, संसार मुझे क्यों पागल समझता है ? पतिंगे भी धन्य हैं। प्रेम में वह अपने को स्वाहा कर देते हैं। मेरे प्रेम का आदर्श तो पतिंगे हैं। मैं उनके जले हुए पंखों को एकत्रित करूँगी और उनसे दीप-शिखा का मूल्य निर्धारित करूँगी। अर्थात् उनके आत्म-बलिदान की पराकाष्ठा से मैं उनके प्रियतम के प्रति अगाध प्रेम का मूल्य समझूँगी। मैंने जीवन की जब समस्त निधि जलने ही में प्राप्त कर ली है तो फिर वेदना मुझे इतनी प्रिय क्यों न हो।

जब मैंने अपने हृदय में ही अपने प्रियतम को स्थान दे दिया है, तो उनसे बार-बार विनय करना, उन्हें मनाना, उनसे वियुक्त समझकर आँसू बहाना, उन्हें बुलाना, उनसे मिलने के लिए संकेत-स्थल पर जाना आदि व्यर्थ है। जिसने अपने प्रियतम को अपने में ही देख लिया, उसे इस दुनियावी प्रेम के ढंगों से क्या मतलब ?

प्रिय की छाँह (स्मृति) ही मेरी प्रार्थनाओं में, रूठने-मनाने में, आँसू में, हृदयोद्गारों में, प्रिय को स्वागतपूर्ण स्वरों में बुलाने में तथा प्रेम-व्यापारों में छिपी है। और यह स्मृति मुझे इतनी अधिक प्रिय है।

वेदना ही से विश्व व्याप्त है। सुख तो क्षणिक होता है। अस्थिर होता है। चिरंतन तो दुख ही है। यहाँ बसंत ऋतु तो चार दिनों की है। सुन्दर भौंरों की गुंजार भी कुछ दिनों के लिए ही है। मधु तथा पराग-वितरण (लुटना-लुटाना भी क्षण भर ही को है। मेरे इस पतझर की डाली-डाली वियोग का कण-कण) मेरे लिए चिर-बसंत-सा मधुर और स्थायी है।

तारों में जो आभा है, कली में जो हास्य है, वह मेरे प्रियतम ही की देन है। तो फिर यदि मैं अपना हृदय न बिंधवाऊँ, यदि निश्वासों के तार का आविर्भाव न हो तो भला मैं बताओ, किस प्रकार प्रियतम के लिये हार बना सकती हूँ। अर्थात् प्रियतम की प्राप्ति के लिए वेदना परमावश्यक है।

मैंने मधुशाला (जीवन में मस्ती, सुख) कब देखी ? मैंने मरकतमणि का प्याला (वैभव) कब माँगा ? मूँगे के रंग की लाल शराब कब मेरे प्याले में छलकी। अर्थात् मेरे जीवन में सुख का उफान आया ही कब। मैं तो केवल उसकी हँसी में अपनी आँखें धोती रही हूँ अर्थात् प्रियतम की मधुर स्मृति में मैं सदा रोती रही हूँ।

कवयित्री चिर-वियोगिनी है। वेदना उसकी चिर-सहचरी है। और वह वेदना को कभी अपने से अलग करना भी नहीं चाहती। प्रेम में वेदना ही तो जीवन है।

गीत—६१ (जाने किसकी ध्वनि रूम-झूम)

शब्दार्थ—अचल—पर्वत। प्रस्तर—पत्थर। अविदित—अज्ञात।

कवयित्री को अपने प्रियतम की स्मृति विह्वल किए है, विरह-वेदना उसे रुला रही है।

मैं नहीं जानती कि किसकी ध्वनि झूम-झूमकर पर्वतों को चूम-चूम आती है ? प्रियतम के जड़ (भावना-रहित) जीवन में संचित हुए स्वप्न मेरे लिए मधुर झरनों के समान प्रिय हो जाते हैं। अर्थात् यद्यपि मेरा प्रिय निष्ठुर है, पर उसकी स्मृति मुझमें मधुर भावनाओं को भर देती है। मधुर-स्वप्नों-सा मधुर मेरा जीवन हो जाता है। प्रस्तर (उनकी निष्ठुरता) के अणु-अणु घुल-घुलकर उसमें नये प्रेम का नीर भरते हैं। अर्थात् मेरे प्रेम में उनकी निष्ठुरता भी मुझे परम प्रिय जान पड़ती है। मेरे प्राण प्यास से पूर्ण होकर (प्रेम में अतृप्त होती है) प्रियतम के अज्ञात देश की ओर बह-बह चलते हैं। जाने बार-बार किसकी स्मृति मेरी पलकों को चूम-चूम जाती है। अर्थात् उसकी स्मृति मुझे पुलकित कर देती है।

मेरे हृदयरूपी कोष के मोती (अश्रु) अज्ञात हैं। अर्थात् संसार मेरे अश्रुओं को नहीं देख सका है। आँसू नहीं हैं, जैसे तरल रजत (चाँदी) ही पिघल पिघल कर बह रही हो। पर आज आँसू बार-बार आँखों में भर जाते हैं और रोकने पर भी नहीं रुकते। प्रियतम के चरणों की धूल-कणों को चूम-चूमकर यह प्रतिक्षण मिटते ही जाते हैं।

कवयित्री की वेदना प्रियतम के अभाव में अत्यन्त तीव्र है। वह नहीं चाहती थी कि विश्व को उस वेदना का पता चले। किन्तु वह बाध्य है। उसकी वेदना प्रकट हो ही जाती है।

गीत—६२ (तेरी सुधि बिन क्षण-क्षण सूना)

शब्दार्थ—शूल—काँटे।

कवयित्री कहती है कि जो क्षण प्रियतम की सुधि में बीतते

हैं वही सार्थक हैं प्रियतम का वियोग उतना ही आवश्यक और महत्वपूर्ण है जितना जीवन में संयोग।

तेरी सुधि ही यदि जीवन में न हो तो फिर जीवन निस्सार है। वह क्षण जो तेरी सुधि में न बीतें, व्यर्थ हैं। कभी तो तेरी सुधि के क्षण मुझे अत्यन्त व्याकुल कर देते हैं (विरह-वेदना से) और कभी प्रसन्नता से मुझे रोमांच हो आता है। मेरी परछाईं (भावनाओं) से चित्रित (रंग-बिरंगे) होकर यह सुधि के क्षण मेरे आते हैं। इनके बिना श्रृंगार-रूपी सदन सूना ही रहेगा अर्थात् बिना प्रिय की स्मृति के प्रेम का जीवन भी क्या।

इन सुधि के क्षणों में कभी तो मधुर कल्पनायें (स्वप्न) और उल्लास (मुस्कान) अंकित रहती हैं। इनका निर्माण सुख और दुख के डोरों से हुआ है। अर्थात् स्मृति सुखद भी होती है और दुखद भी। इसमें सुख-दुख का मिश्रण है। मेरा अपलक आनन (प्रियतम के वियोग में नींद कहाँ) अपनेपन के अवगुण्ठन, घूँघट (अपने प्रियतम की स्मृति) के बिना सूना ही है। इस स्मृति ही में तो मेरा अपनापन छिपा है।

जिसका चुम्बन मन को चौंका देता है (स्मृति के हृदय में जगते ही न जाने कैसा-कैसा लगता है)। जीवन में विस्मृति-सी, बेसुधपन-सा छाने लगता है। जब तक भूलों (प्रेम में की गई) के शूल (की गई भूलों के कारण दुख तथा पश्चात्ताप) के बिना हृदय का नूतन पुष्पों से पूर्ण उपवन न होगा वह सूना ही रहेगा। प्रेम-जीवन में भूलों का भी महत्व होता है, तभी तो पश्चात्ताप की मधुर ज्वाला हृदय को जलायेगी।

दृगरूपी तटों पर, हिम से भी अधिक उज्ज्वल आँसू, करुणा की लहरों में बहकर आ जाते हैं। नवनिधियों से युक्त जीवन भी प्रियतम के बिना सूना है।

जिन सुधि के क्षणों का रोदन तथा किलकन (सुख तथा

दुखपूर्ण भावनायें) मेरे सूनेपन को भी प्रसन्नता से भर देता हो, उन्हें मुखरित (ध्वनिपूर्ण) कर देता हो, उनका स्वागत है। जग के विस्मृत आँगन में यदि संयोग और वियोग के शिशु किलकारी न मारें तो वह सूना ही रहेगा। अर्थात् जीवन में संयोग और वियोग दोनों का ही महत्व हैं और दोनों के संयोग से ही जीवन परिपूर्ण होता है।

गीत—९३ (ओ विभावरी)

शब्दार्थ—विभावरी—रात्रि।

कवयित्री विभावरी को संबोधित करके कहती है कि ज्योत्स्ना ही तेरा अंगराग है, चारों दिशाओं में उड़ता पराग ही तेरे माँग का सेंदुर है और जो किरणों का जाल है वही तेरे बालों का बँधा जूड़ा है।

देश-देश में घूमता हुआ समीर तेरे पास प्रियतम का संदेश लाया है। तू अपने मोतियों (आँसुओं) के कोष को वार दे।

कुछ मधुर, करुण, नवीन लहरों, (स्वर का उतार-चढ़ाव) से युक्त वीणा लेकर प्रियतम के मादक पद-चाप (ध्वनि) की मलार गा।

ए विभावरी! अंधकार के भार को व्याप्त होने दे। इन अंगारों (झिलमिलाते तारों) को बुझ जाने दे (प्रभात होने दे)। तू सुगंधि का कोमल वस्त्र तथा वकुल (पुष्प-विशेष) का हार पहिन। (प्रातः पराग से युक्त समीर बहने लगता है तथा कलियाँ खिल जाती हैं।)

गीत—५९ (प्रिय जिसने दुख पाला हो)

शब्दार्थ—अभिनंदन—स्वागत।

कवयित्री को अपने आँसू प्रिय हैं। वह प्रियतम से आँसू ही का वरदान माँगती है यही आँसुओं का हार वह अपने प्रियतम को पहनायेगी।

मैंने तो सदा दुख ही को पाला है। मेरे प्राणों में वेदना इस प्रकार से समायी थी जैसे चंदन में सुगंध वेदना चंदन की भाँति शीतल है। तूफानों की छाया (घोर कष्टों का अस्तित्व) मुझे ऐसे ही सुखद हो जैसे आलिंगन। जीवन की हार का मैंने सदा जय की भाँति अभिनन्दन किया है। मुझे यही वरदान दो कि मेरे आँसू उसकी माला बनें।

यह आँसू जल-जलकर (वेदना के कारण ही आँसू जल पाते हैं) उजियाला देते हैं (आँसू, वेदना की अधिकता से अन्त:करण निर्मल हो जाता है)। मैंने अपने सुख को इन आँसुओं की मधुशाला पर वार दिया है। (कवयित्री के आँसू उसके लिए मधुशाला की भाँति मादक हैं।) मैंने अपने मधु की हाला में (सुख से भरे जीवन में) हँसकर हालाहल ढाला है। (दुखों को आमंत्रित किया है।) उन (आँसुओं) के अधरों का प्याला मेरी साधों (अपूर्ण अभिलाषाओं) से निर्मित हुआ है। अर्थात प्रियतम का अभाव ही मेरे दुखों का कारण है।

मेरे आँसू मुझे अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि प्रियतम की स्मृति में ये निकले हैं।

गीत—६४ (दीपक में पतंग जलता क्यों)

शब्दार्थ—आकुलता—व्याकुलता। निस्पंद—नीरव।

कवयित्री अपने मन से पूछती है कि पतग क्यों दीपक पर अपने को वार देता है। दीपक की प्रभा से उसे प्रेम है। फिर यह उसमें दूरी का अभिनय (खेल, दिखावा) क्यों करता है?

प्रिय प्रियतम का उजाला दीपक में है, उसी के प्रेम की चिनगारी तुझमें भी तो है। (समस्त आत्माओं में उसी विराट सत्ता का अंश है। तू दूसरों की ज्वाला पर (उनके प्रेम की प्रभा पर) इतनी ममता क्यों करती है। तू अपनी ही ज्वाला (प्रेम की महत्ता) को क्यों नहीं देखती?

कभी दीपक भी दीपक पर गिरता है ? कभी एक तारा भी दूसरे तारे में घुलता है ? अर्थात् प्रत्येक आत्मा परमात्मा की प्रभा से ज्योतिपुंज बनी है। एक आत्मा किसी दूसरी आत्मा से प्रकाश पाये ही क्यों ? ईश्वर की सत्ता तो सभी में समायी है। शिखा में भी तेरा ही उन्माद है। तो फिर जलने के लिए व्याकुलता क्यों ? पतिंगे और दीपक में एक ही प्रेम की प्रभा है किन्तु तो भी पतिंगा दीप-शिखा पर जलने को व्याकुल रहता है। (आत्मा परमात्मा का अंश होते हुए भी परमात्मा में लीन हो जाने को व्याकुल है।)

जीवन के संसर्ग से ही जड़ में भी जीवन आ जाता है तम भी दिन में मिलकर दिन के प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। आत्मा, परमात्मा के साक्षात्कार से ही परमात्मा-स्वरूप हो जाती है पर जीवन के, आभा के कण सदा एक से ही रहते हैं अर्थात् वास्तव में आत्मा और परमात्मा में कोई भेद है ही नहीं—शिवोऽहम्। फिर क्यों भ्रम में पड़ा है।

यदि तू जलने को व्याकुल है तो तेरे आँसू का जल ही दीपक का तेल होगा। धूमहीन (पवित्र) निस्पन्द जगत में जल और बुझ अर्थात् प्रेम में जल और प्रेम ही में अपनी सत्ता को मिटा दे। तू रोता क्यों है ? प्रियतम तो तेरे पास है, तो तुझे वियोग कैसा ?

कवयित्री कहती है कि पतंग दीपक में जलने को इसलिए व्याकुल रहता है क्योंकि वह अपनी सत्ता से अपने प्रियतम की सत्ता को भिन्न समझता है। इसी से वह भ्रम में है। वास्तव में दीपक की शिखा में उसके अंतर के प्रेम में वही 'एक' वर्तमान है।

गीत—६६ (आँसू का मोल न लूँगी मैं)

शब्दार्थ—दंशन—काटना।

कवयित्री प्रेम करती है, प्रेम करने के लिए। वह प्रेम इसलिए करती है क्योंकि उससे बिना प्रेम किये रहा ही नहीं जाता वह प्रेम का बदला नहीं चाहती। अपने को लुटा देने ही में वह सब-कुछ पा लेती है।

मैं आँसू का मूल्य नहीं चाहती। मैं नहीं चाहती कि मैंने आँसू बहाये हैं तो बदले में मुझे प्रियतम भी कुछ दे। प्रेम में यह व्यापार की गंध मुझे प्रिय नहीं है। (कवयित्री स्वयं अपने से प्रश्न करती है और स्वयं उत्तर देती है।) यह क्षण (काल) क्या है ? यह मेरे ही प्रेम का तीव्र स्पंदन है। यह रज क्या है ? यह मेरा ही मृदु नव तन है। यह संसार क्या है ? मेरा ही प्रतिबिंब इसमें दिखाई देता है। यह मेरा लघु दर्पण है। स्वयं तुम क्या हो ? तुम मेरे ही चिर जीवन हो। तुम 'मैं' हो। मुझमें तुममें कोई भेद नहीं। सब मेरे हैं क्योंकि मेरे ही प्रियतम सबमें हैं। तो फिर कोई अपने से ही व्यापार करता है ? अपने आँसू का मूल्य यदि लूँगी भी तो अपने ही से लेना होगा !

बादल को बरस जाने दो। सुमनों के दल को अपने मधु को लुटा चुकने दो। जैसे करुणा के बिना पृथ्वी का अंचल शून्य रहता है। वैसे बिना मधुर वेदना के जीवन के पल होते हैं। मेरी आँखों में अक्षय जल है। मैं उनसे विश्व को भर दूँगी। मैं चिर-वियोगिनी हूँ। अपनी वेदना से मैं विश्व को रस-सिक्त कर दूँगी।

मेरा यह अवगुण्ठन (आवरण) मिथ्या है। जब मैं तुम एक हैं तो घूँघट कैसा और किससे ? यह पाप और उसके फलस्वरूप दाह जो है, उसका कारण मेरा भोलापन ही है। (अज्ञान होने के कारण ही तो बेचारा मनुष्य पाप करता है।) बस सुधि की 'काट' अर्थात् स्मृति के कारण जो दुख होता है,

केवल वही मेरे लिए चिर सत्य है। मेरे करुणा के कण अनन्त हैं। मैं युगों के बन्धन को हँस कर पल-मात्र में 'मुक्ति' के समान कर दूँगी। कवयित्री को अपने आँसुओं से बल पर विश्वास है। इन्हीं के सहारे उसके प्रेम में निरवार होगा और वह अंत में प्रियतम से साक्षात्कार कर पाने में समर्थ होगी।

गीत—६७ (प्रिय! मैं हूँ एक पहेली)

शब्दार्थ—विरक्ति—विराग। आसक्ति—मोह।

कवयित्री अपने को एक पहेली कहती है क्योंकि वह विरोधी तत्त्वों से निर्मित है। अपने में दो विरोधीतत्त्वों को वह एक साथ पाती है।

मेरे प्रियतम की चितवन में जितनी मादकता, जितना मधु और जितना मधुर हास है, उतना ही जग के प्रत्येक कम्प में विष है, क्रंदन है और विषाद है। मेरा प्रियतम तो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है और माया-मोह तथा अज्ञानांधकार में फँसा विश्व पीड़ा, रुदन और पाप-शाप का केन्द्र बना है। यहाँ मानव विषय-वासना को ही सुख मानकर मग्न रहता है। वास्तविक सुख तो कुछ और ही है। इसी से 'सुख' को भोगता हुआ भी मनुष्य दुखी ही है। सुखरूपी सरिता की रंगरेलियाँ पी-पीकर भी मैं चिर-प्यासी हूँ। मेरी चिर दुख की प्यास बनी ही हुई है क्योंकि वास्तविक सुख ईश्वर के साक्षात्कार ही में है। उसका अभाव मुझमें दुख की चिर प्यास जगाये हुआ है।

मेरे प्रत्येक रोम में निर्झर तथा आग दोनों एक साथ झरते हैं। मेरीं श्वांसों में जाग-जागकर विरक्ति तथा आसक्ति दोनों ही प्यार करती हैं। अर्थात् प्रिय के अभाव में मेरे हृदय में दाह है और उसकी स्मृति मेरे लिए शीतल जल-धारा है। प्रियतम के प्रति आसक्ति में मुझे प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में आसक्ति है क्योंकि सबमें मेरा प्रियतम समाया है और प्रियतम के अस्तित्व

के कारण मुझे अब संसार की अन्य वस्तुओं में कोई आकर्षण नहीं रह गया है। मुझे सबमें आसक्ति है। मैं सांसारिक प्राणी हूँ (सीमा की गोद में पली हूँ) किन्तु असीम से भी खेली हूँ। (विराट सत्ता का अंश ही आत्मा है।)

कवयित्री अपने को एक पहेली इसलिए कहती है क्योंकि आत्मा सीमित भी है और परमात्मा का अंश होने से असीमित भी। निर्झर और आग, विरक्ति और आसक्ति का एक ही साथ होना सुख-सरिता के जल को पीकर भी दुख-प्यास का रहना, हास और क्रंदन, अमृत और विष तथा हर्ष और विषाद, एक साथ पारस्परिक विरोधी तत्वों का एक ही में होना, एक अपूर्व पहेली तो है ही।

गीत—६८ (क्या नई मेरी कहानी)

शब्दार्थ—वारिद—बादल। जलधि—समुद्र।

कवयित्री कहती है कि प्रेम करना और फिर बदले में असफलता पाना, प्रियतम की निष्ठुरता को पाना—यहीं तो है प्रेम की सनातन कहानी।

क्या मेरी कहानी नई है ? अर्थात् नहीं। विश्व का कण-कण वही पुरानी कहानी सुना रहा है। यह प्रेम और उसकी पीड़ा, आत्मा का परमात्मा के साक्षात्कार के लिए प्रयत्न-रत होना चिरंतन है, शाश्वत है।

सजल बादल का हृदय-कण जब पिघल कर आँसू के रूप में चू पड़ा तो उसे पंक (कीचड़) का फटा हुआ प्यासा अपरिचित हृदय पी गया। (वर्षा के अभाव में सूखी पृथ्वी में दरारें पड़ जाती हैं।) पर उससे बादल की कहानी वैसे ही लोप हो गई, जैसे बिजली क्षण भर में ही चमक कर छिप जाती है। मेरी कहानी इतनी करुण है, जैसे वर्षा करने के बाद बादलों का अस्तित्व को मिटा डालना।

कमल के हृदय में पराग ने अपने जन्म-काल ही से नित्य प्यार पाया किन्तु अकृतज्ञ पराग निष्ठुर होकर वायु के चंचल पंखों पर चढ़ कर उड़ गया। वह तालाब, जहाँ वह सदा रहा और वह कलिका, जिसने उसे जन्म दिया, वही उसके लिए बिराने हो गए। मेरी भी जीवन कहानी ऐसी ही निष्ठुरता से भरी है।

मनुष्य के कठोर हृदय को चीर कर प्रेम का जो निर्झर वह गया उसको समुद्र ने अतिथि कह कर अपने में समेट लिया। वह सुधा के समान निर्झर का जल तब खारी पानी हो गया। मेरी कहानी वैसी ही अमिट है।

निष्ठुर प्रेमी जब प्रेमिका के प्यार को निष्ठुरता से ठुकरा देता है तो केवल प्रेम ही नहीं बिलखता, निष्टुर प्रेमी को भी पछताना पड़ता है। संसार का यही नियम है। मतलब निकल जाने के बाद आँखें दिखाना और यह कहानी सनातन है। अतः मेरी कहानी, मेरे असफल प्रेम की कहानी भी कोई नई नहीं है।

('किस्से लिखे हुए हैं जो फरहादो कैस के,
खोए हुए वरक वह मेरी दास्ताँ के हैं।')

गीत ६६ (मधु बेला है आज)

शब्दार्थ—वतास—वायु। पाटल—गुलाब।

कवयित्री कहती है कि तुझे जो भी ईश्वरीय वैभव प्राप्त हुआ है, उसे परोपकारार्थ लगा। यही उस वैभव की सार्थकता है।

कवयित्री का जीवन पाटल के फूल के सदृश है। आज बसंत ऋतु की मधुरिमा है।

दुख की रात (दुख ही में मनुष्य रोता है) मोतियों की जयमाला देने (आँसू रूपी ओस की बूँदें बरसाने) आई है। सुख की मंद वतास ताल दे-देकर पलकें खोलती है। शीतल-मंद समीर के झोंकों के संगीत में प्रातःकाल कलियाँ खोलता है। शूल

(काँटों, कष्टों) से डरो मत। दुख ही तो हृदय को निर्मल, पवित्र और मधुर भावनाओं से पूर्ण कर देते हैं। यह तो तुझसे दुलार करने आये हैं। दुख का तो मनुष्य को स्वागत करना चाहिए, क्योंकि इससे उसके हृदय की महत्ता विकसित होती है।

विश्व भिक्षुक के समान तेरा प्यार तथा करुणा पाने को खड़ा है। अपने दुख से व्याकुल क्यों है ? ए नादान ! उठ और हँसकर अपने हृदयरूपी पंखुड़ियों के द्वार खोल दे। अपनी वेदना विश्व पर उँढेल दे। अपने सौन्दर्य पर, अपनी विभूति पर, इठला मत। यह क्षण-भंगुर है। आज का सोना कल धूल में परिवर्तित हो जायगा। इससे जो तेरे पास है, उसे मुक्त हाथों से लुटा। तू सर्वस्व दान कर दे। यही जीवन की सफलता है।

गीत—१०० (यह पतझर मधुवन भी हो)

शब्दार्थ—तुषार—पाला। दंशन—काटना। मारुत—वायु।

कवयित्री चाहती है कि जीवन में दुख ही दुख यदि होंगे तो जीवन नीरस हो जायगा। सुख और दुख यदि दोनों ही बारी-बारी से आयेंगे, तभी जीवन समृद्धिशाली होगा।

उसकी कामना है कि यह पतझर (दुख से परिपूर्ण जीवन) बसंत (सुख, विनोद का घर) हो जाय। जब दुख सा तुषार उपवन में बेसुध सा सोता हो, तब उस पर वन श्री चितवन में मधु भर कर छलका देती हो तभी तो जीवन की सार्थकता है। जीवन में दुख भी (शूलों का दंशन) हो तथा कलियों का चुम्बन भी अर्थात् सुख भी हो।

सूखे पल्लव अपनी करुण कहानी कहते फिर रहे हैं। वायु ने परिमल (पराग) को आसन दिया हो तथा नभ अपनी आँखों का पानी देता हो। वर्षा का जल ही जैसे नभ का रुदन हो। अर्थात् यदि सूखे पल्लव वियोग से जर्जरित हों तो उन पर सहानुभूति का जल बरसाने वाला भी कोई हो। यदि एक ओर

अलि कुल का क्रंदन हो तो दूसरी ओर कोयल का मधुर कूकना भी हो।

जब संध्या ने कालिमा की स्याही अपने आँसू से घोली हो, तो यदि इस ओर अंधकार हो तो उस ओर प्राची दिशा के अरुण अंचल में हास्य की रोली छिड़की हो। काली रात के जागरण में अरुण दिन का प्रकट होना भी हो।

मोती का जन्म तो सीप में स्वाती नक्षत्र की बूँदों के पड़ने से होता है। पर पलकें तो योंही मोती बना लेती हैं (आँसू की ओर सकेत है।) तब उनको अधरों की हँसी की रेखा आकर धोती है। मेरे कठोर ग्रीष्म ऋतु के ताप में करुणा के नये बादल भी छिपे हों।

कवयित्री चाहती है कि दुख के बाद सुख भी मनुष्य के जीवन में आए।

गीत---१०१ (कहता जग दुख को प्यार न कर)

शब्दार्थ—विनिमय—बदला।

संसार सुख ही सुख चाहता है। वह दुख की काली छाया अपने ऊपर नहीं पड़ने देना चाहता। पर कवयित्री को उसका उपदेश मान्य नहीं है।

संसार कहता है कि सुख से प्रेम करो, दुख से नहीं। आँखों के यह अनबींधे मोती (छिद्र-रहित मोतियों को अनबींधे मोती कहते हैं।) भला किसके बंधन में बँध पाये हैं। यह तो पल-पल में बनते हैं और फिर पल-पल में मिट जाते हैं। इन्हें गूँथ-गूँथ कर हार बनाने का निष्फल प्रयत्न न कर। तू अश्रुपात द्वारा अपने प्रियतम को नहीं पा सकती।

भला अपने को खोकर भी किसी ने अपने को पाया है ? उस छाया (विराट सत्ता का प्रतिबिम्ब—आत्मा) भला किसने पहिचाना है ? तू भ्रमता रह अर्थात् प्रयत्न-रत रह। तम (दुख)

ही प्रियतम का पावन रूप है। आ शून्य से अभिसार कैसा ? अर्थात् यदि तेरा हृदय प्रियतम के दिये दुख, वेदना में नहीं रमता, तो तू प्रियतम को कैसे पायेगा। यह भी एक अर्थ है कि यदि तू भ्रम (संशय) के समान है तो प्रियतम तम (अंधकार) के रूप में है। भ्रम-संशय से रहित हो। प्रियतम के प्यार में विश्वास रख। तभी तू उनका अभिसार पायेगा।

तेरे हृदय की मधुर कसक न सोने की है और न हीरे की है। (कंचन तथा हीरा भले ही आभा-मय हों पर हैं कठोर तेरी कसक इनसे भी अधिक मूल्यवान है। तू इस मधुर कसक का मेरी मुस्कान से या तो अदला-बदली कर और या फिर व्यापार करना ही बंद कर दे।

मेरा तो अणु-अणु दर्पणमय है। इसमें तेरा रोम रोम प्रतिबिम्बित है। मैं तो स्वयं तेरी ही छाया हूँ। तेरा ही अंश हूँ। तो फिर अपने ही से इतनी बिनती-प्रार्थना तथा रूठना-मनाना क्या शोभा देता है।

सुख-मधु में दुख का मिश्रण क्या शोभा देता है ? दुखरूपी विष में क्या सुखरूपी मिश्री के कण मिले हैं ? पर संसार भले ही यह कहे कि तुझे कलियों के कोमल देश में जाना है, तू शूलों से शृंगार न कर। अर्थात् संसार के दुख से तू कोई सरोकार न रख वरन् सुख को ही प्रेम कर।

दुख और सुख का कोई संबंध नहीं अर्थात् दुख करते हुए सुख नहीं प्राप्त हो सकता। सुख-रूपी अमृत में दुख को मिलाने से उसका स्वाद कड़ुवा हो जाता है, या दुखरूपी विष के घोल में सुख-रूपी मिश्री को घोलने से मिश्री की मिठास जाती रहती है। कहने का तात्पर्य यह कि दुख को छोड़कर ही सुख मिल सकता है।

किन्तु कवयित्री को अपनी वेदना ही अत्यंत प्रिय है।

गीत—(१०२ मत अरुण घूँघट खोल री)

शब्दार्थ—पद्मपराग—कमल। कुमकुम—शृंगार का एक पदार्थ—एक प्रकार का चूर्ण। चयन करना—इकट्ठा करना।

किन्तु कवयित्री को अपनी वेदना ही अत्यंत प्रिय है।

कवयित्री सुख के घूँट नहीं पीना चाहती। उसे दुख की हाला ही प्रिय है।

तू अरुण घूँघट मत खोल। घूँघट को अरुण इसलिए कहा है क्योंकि वधू लज्जा-शीला होती है। लज्जा की लाली उसके घूँघट में छिपी होती है।

आकाश में फूल (तारे) बिना वृन्त के ही खिले हैं। वह हँसते हुए भी अश्रु बहाते हैं। तारों का झिलमिलाना ही उनका हँसना है और रात में ओस का गिरना जैसे उनके आँसुओं का पतन है। तारागणों के उन अनमोल फूलों का चयन मत कर।

तेरी अलकें तरल सोने से धुली हैं। उनमें सुहाग का लाल सेंदुर भरा है। यह पद्मरागों से सजी है। सुगंधपूर्ण चूर्ण तथा सुगंधित फूलों से बाल गुँथे हैं। तू वायु के मार्ग में मत डोल। अन्यथा धूल-कणों से अलकें उलझ जायँगी।

रात ने मोती सजाये (ओस गिराई) फूलों की हाट लगाई—असंख्य कलियाँ खिलकर फूल हो गई। इनसे इनके माधुर्य का मूल्य न पूछना, अन्यथा यह लज्जा से गल जायँगे।

सुनहरे रंग के कुमकुम में बसा कर नये मेघ की चूनर रँगी है। इन लहरियों में अपूर्व सौन्दर्य भरा है इनमें मत बिछल अन्यथा इस चूनर का रंग धुल जायगा, फीका पड़ जायगा।

कली की प्यालियों में तू लाल मदिरा मत घोल क्योंकि इनमें श्वेत सुधा की चाँदनी भर कर चन्द्रमा प्रकृति को वितरित करता है।

पलकरूपी सीप में नींदरूपी स्वाति-जल स्वप्नरूपी मुक्ता का निर्माण कर रहा है। तू भी अपने प्रियतम से मिल। अपनी मुस्कान से इन्हें मत तोल। अपनी मुस्कान से इनका विनिमय करने का प्रयत्न मत कर।

शिशु के समान जग चपल तो है ही स्वाभाविक रीति से सुख-दुख के खेल खेलकर वह थक कर अचानक सो गया है। यदि तू मधुर कोयल या पक्षियों के कलरव में बोलेगा, तो यह शिशु जग जायगा और मचलने लगेगा।

सुख और दुख का खेल खेलते खेलते ही विश्व थकता है और फिर बेसुध हो जाता है।

कवयित्री कहती है कि सुख की इच्छा मत कर। जीवन की उज्ज्वलता और महत्ता दुख ही में है। तू वेदना का ही वरदान माँग। वेदना ही तेरे लिए सर्वस्व हो, अमूल्य निधि हो।

गीत—(१०३ जग करुण-करुण, मैं मधुर-मधुर)

शब्दार्थ—रश्मि—किरण। यान—रथ।

कवयित्री कहती है कि मैंने अपनी सरस वेदना से विश्व के नीरस तथा नीरव हृदय को अलंकृत कर दिया है।

जग करुणा से पूर्ण है और मैं मधुरिमा से। करुणा और मधुरिमा के संसर्ग से विश्व के समस्त रज-कण अत्यन्त सुन्दर हो उठते हैं। अर्थात् एक तो करुणा यों ही मधुर होती है और प्रेम का माधुर्य उस करुणा में और चार चाँद लगा देता है। मेरी विरह-वेदना मधुर भी है और करुण भी। जिस प्रकार आम का वृक्ष पतझड़ में पत्तों से रहित हो नीरव-सा खड़ा दिखाई देता है, विश्व की दशा भी दुख के झंझावात से ऐसी ही है। तब मैं विश्व को सुख पहुँचाने के लिए ओस की माला को पहने हुए पिक बनकर डाली-डाली गाती हूँ तब सुख तथा दुख की मंजरियों (बौर) के अंकुर क्षण-क्षण में फूट-फूट उठते हैं।

विस्मृति जीवन को रिक्त, नीरव, शून्य, कर देती है। चन्द्रमा के हिम-किरण बाण (सजल ज्योत्स्ना की किरणें जीवन-सर (जीवनरूपी तालाब) के प्राणों को मूक कर देते हैं। अर्थात् जब विस्मृति के कारण जीवन का स्पन्दन रुकने-सा लगता है, तब मैं मलय-पवन (सुगंधिपूर्ण समीर) के रश्मि यान (किरणों रूपी रथ) पर चढ़कर नीरव हृदय में मधु का संदेश लेकर मर्मर (मधुर ध्वनि) भरने आ जाती हूँ। अर्थात् प्रियतम की मधुर स्मृति से हृदय भावनाओं से भर जाता है।

भाग्यरूपी अंधकारपूर्ण सागर अपार है। इसी में तारागण रूपी अंगार जब बुझ जाते हैं, गोता लगाते हैं, जब मैं भाग्यरूपी समुद्र की लहर-लहर को प्रथम रश्मि के मोहक शृंगार को करके अपनी छवि से उसे ज्योतिर्मय करने आ जाती हूँ। (कवयित्री नियति पर विश्वास करती है पर एक सीमा तक।) अपनी कर्मण्यता की ज्योति से अँधेरी अस्पष्ट नियति को मानव अपनी प्रभा से अलौकिक कर देता है।

युगों से मेरी प्रिय की बीन मूक थी। उसके तार भी शिथिल तथा स्थिर थे। उनमें कंपन नहीं था। मैंने शीघ्र ही उनकी नींद छीन ली, अर्थात् उनमें कंपन उत्पन्न कर दिया। मैंने नीरवता, सूनेपन को नवझंकारों की करुण-मधुर ध्वनि से गुंजित कर दिया।

कवयित्री कहती है कि विश्व के सूनेपन की शुष्कता को मैंने अपनी वेदना की करुणा और मधुरिमा से रस सक्त कर दिया है।

गीत—१०४ (अलि वरदान मेरे नयन)

शब्दार्थ—अतल—अत्यन्त गहरा। चषक—प्याला।

कवयित्री विश्व से सुख नहीं माँगती। उसके आँसू ह उसकी निधि हैं। इसी से कवयित्री अपने नेत्रों को वरदान के समान मानती है।

हे अलि ! मेरे नयन मेरे लिए वरदानस्वरूप हैं। संसाररूपी अतल सागर उमड़ रहा है। सुखरूपी सरोवर लहरें ले रहा है। किन्तु मेरे प्यासे नयनों को इनकी वाञ्छा नहीं है। ये प्यासे नयन अश्रु का लघु कण ही चाहते हैं। यदि मेरे प्रियतम घनश्याम हैं तो मेरे नयन चातक पक्षी की भाँति हैं।

उजाला तिमिर को पल भर में पी जाता है। अर्थात् मेरे आँसुओं की आभा हृदय की मलीनता, उनकी वेदना को धो डालती है। आँसू मुझे शान्ति देते हैं मेरे हृदय की महत्ता को बढ़ाते हैं। रवि रूपी पात्र (हृदय की आभा) जल में (करुणा पूर्ण अश्रु) परिवर्तित हो प्लावित होकर वहने लगते हैं। तब मेरे प्यासे नैन अणु-अणु को (जीवन के) आप स्नेह पिलाते हैं। जीवन-प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है। मेरे नेत्र दुखरूपी शराब के प्याले के समान हैं।

अरुणिमा (प्रातःकाल को) की किरणरूपी चामर (मूर्छल) को छूकर अपने ऊपर निर्भर नभ-दीप (तारागण) बुझ गए। किन्तु यह मेरे निश्चल नयन निरंतर बिना विश्राम किए पथ में जल रहे हैं। विरहरूपी अँधेरे के लिए नयन-दीपक हैं।

नित्य सैकड़ों बुदबुदे उलझते हैं अर्थात् अनेक भावनायें हृदय में बनती-बिगड़ती हैं। अनेक तीव्र भँवर (आवर्त्त) जीवनरूपी नदी को घेर लेते हैं। वेदना से पूर्ण यह जीवन हो जाता है। पर प्रियतम की मुस्कान में रँगे, अर्थात् प्रियतम के प्रेम में डूबे, यह नयन तनिक भी दुख से व्याकुल नहीं होते। जीवनरूपी नदी के लिए यह नेत्र कमल के समान हैं। जैसे कमल से नदी की शोभा बढ़ती है, वैसे मेरे आँसुओं ने मेरे जीवन का मूल्य बढ़ा दिया है।

मैं प्रियतम के प्रेम में ऐसे ही मिट जाऊँ, जैसे बादल मिट जाता है। मेरा हृदय उसी तरह प्रियतम में डूब जाय, विलुप्त

हो जाय जैसे बिजली की चमक मिट जाती है। किन्तु मेरे कण-कण से अगणित नेत्र फूट पड़े। (कवयित्री को अपने आँसू प्रिय हैं। वह चाहती है कि यदि रोम-रोम में नेत्र होते तो मैं करुणाश्रुओं की धारा बहा देती। सूर ने भी कहा है 'दीठ न दई रोम-रोमन प्रति इतनिहिं कला नसानी, विधातहिं भूलि परी मैं जानी।') मेरे नेत्र प्रिय के स्नेह के अंकुर हैं। प्रियतम का प्रेम ही इनसे आँसुओं के रूप में झिरता है।

गीत—१०५ (दूर घर मैं पथ से अनजान)

शब्दार्थ—आकार—मूर्त्तिमान। झंझावात—आँधी।

कवयित्री अपनी मनोदशा का वर्णन करती है। उसकी वेदना अत्यन्त तीव्र है। निराशा का अंधकार उसे घेरे है।

प्रियतम का घर दूर है और मैं पथ से अनजान हूँ। एक तो यों ही प्रियतम का घर दूर है और जब मुझे मार्ग भी नहीं मालूम है तो मैं प्रियतम तक कैसे पहुँचूँगी। मेरी ही चितवन से अंधकार का समुद्र उमड़ा है। अर्थात् मैं निराशा के अंधकार में घिरी हुई हूँ। मेरी आशा के अंकुर शूलों में मूर्त्तिमान हैं। अर्थात् मेरी आशा निराशा के तम से आच्छादित है। मेरे प्राण बालू से पूर्ण तट की भाँति हैं। अर्थात् मेरा जीवन प्रियतम के अभाव में नीरस है, मरुथल है।

मेरी निश्वासों से वेदना की आँधी बहती रहती है। आँसू में प्रलय के बादलों का उत्पात निहित है। अर्थात् मेरे आँसू कभी रुकना जानते ही नहीं। मेरी कसक में बिजली की सी तड़क (तीव्रता) है।

स्वयं मेरी प्रतिध्वनि पल-पल मेरा उपहास किया करती है। मेरी पद-ध्वनि में जैसे औरों का आभास होने लगता है। अर्थात् मैं अपनी साधना में अकेली हूँ जैसे एक पथिक शून्य-मार्ग में अपनी पद-ध्वनि सुनकर परेशान होता है उसी प्रकार, मैं भी

अकेले अपने मार्ग में चल रही हूँ। जैसे मेरी विरह-व्यथा की अधिकता से मेरे पदचापों का भी रूपान्तर हो गया हो। मैं स्वयं अपने को भूल गई हूँ। मुझे आत्म-विस्मृति हो गई है।

दुख की अधिकता में ही मनुष्य के हृदय में पावनता आती है, दूसरों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होने लगती है, सबके लिये अपनत्व का भाव आ जाता है प्रिय की स्मृति की अस्पष्ट झंकार सुख में सोई रहती है। अर्थात् प्रिय की मधुर स्मृति ही जीवन का कुछ सुख देती है। मेरे लिए दुख और सुख समान हो जाता है।

अश्रु के बिन्दु ढुलकने से हृदय का महान सिन्धु भर जाता है। तिल-तिल मिटने के बाद ही चिर-जीवन का नया निर्माण होता है। मेरी यह नादान उलझन नहीं सुलझी। प्रेम में मर-मिटना ही तो वास्तविक जीवन पाना है।

युग का अद्भुत हार पलपल के झरने ही से बनता है। प्रत्येक श्वास को खोकर विश्व नित्य दिन से व्यापार करता है अर्थात् अपने जीवन के दिनों को पूरा करता है। यही उसका अभिशाप है, और यही उसका वरदान है।

प्रेम के पथ का कण-कण आकर्षक है। इसके तृण, तृण में अपनापन है। प्रेमी हृदय का अर्थ एक मूक पहेली की भाँति है। प्रेम में अमिट दुराव (छिपाने की भावना) होतो है अपने प्रेम के प्रकटीकरण में प्रेयसि लज्जा का अनुभव करती है। प्रेम का बंधन, दुखद नहीं होता। हृदय को अपने इस बंधन में ही अभिमान होता है।

कवयित्री कहती है कि प्रेम के मार्ग में अनेक बाधाएँ आती हैं। किन्तु आत्म-बलिदान ही में प्रेम आनंदित होता है। प्रेम की पहेली का सुलझाना बड़ा कठिन है। प्रेल की मिठास, इसका आकर्षण अवर्णनीय होता है।

गीत—१०६ (प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली)

शब्दार्थ—चल—चंचल।

कवयित्री कहती है कि जब आत्मा शरीर के बंधन में बँध जाती है और परमात्मा से उसकी सत्ता भिन्न हो जाती है तो आत्मा लघु और परमात्मा महान रूप में हो जाता है।

प्रियतम मेरी सुधि भूल गए और मैं प्रिय के देश पहुँचाने वाले मार्ग को भूल गई। तब बताओ, प्रियतम से मेरा साक्षात्कार कैसे होगा। मेरे ही हृदय में हँसकर मेरे प्रियतम बस गये, उनके अस्तित्व से मेरी श्वासों में मादक मधु रस भर गया। लघु कलिका के चंचल पराग के नभ छाये हुए हैं और मैं बन में फूली हुई हूँ। अर्थात् लघु कलिका के समान मेरा हृदय छोटा-सा है। उनका गतिमान प्रेम ही उस लघु कलिका के चचल उड़नेवाले पराग-सा है। किन्तु वह प्रेम इतना महान, इतना अधिक है, इतना व्यापक है कि वह समस्त नभ में छा गया है। मेरे प्रेम ने विश्व के प्रांगण को भर दिया है। अपने प्रियतम के प्रेम को पाकर मुझे आत्म-गौरव प्राप्त हुआ है। मैं घमण्ड से फूल उठी हूँ। मेरे प्रियतम मेरी सुधि भूल गए हैं और मैं उनकी नगरी का मार्ग भूल गई हूँ।

किसी समय में मुझसे उनसे साक्षात्कार हुआ होगा। किन्तु अब तो मैंने उनके गुरु (अत्यन्त महान) अन्तर को जो पर्वत के समान विशाल था, छोड़ दिया है। किसी समय मैं अपने प्रियतम के अंतर में बसी थी किंतु अब उसमें मेरा वास नहीं रहा। उससे मैं इस प्रकार से अलग हो गई हूँ जैसे कि कोई बालू का कण महान पर्वत से झर-सा पड़े। अर्थात् जब तक मेरी आत्मा परमात्मा से अलग नहीं हुई थी तब तक वह भी परमात्मा ही थी, स्वयं विराट-स्वरूप थी। किन्तु जब आत्मा उस विराट सत्ता से अलग हो गई तो उस

विराट सत्ता का अंश होते हुए भी वह एक लघु कण के सदृश हो गई। विराट सत्ता यदि पर्वत की भाँति महान थी तो आत्मा उससे अलग होने पर सिकता-कण के समान हो गई। हे सजनी! अब मेरा उनसे परिचय था, अर्थात् कभी तो 'मैं' (आत्मा) 'वह' (परमात्मा) ही थी, पर शरीर के अंदर वास करने पर आत्मा पथ की धूल के समान लघु तथा महत्व में छोटी है और परमात्मा घन को चुम्बन करनेवाले अत्यन्त उच्च पर्वत-शिखर की भाँति है। यहाँ विशिष्टाद्वैत की झलक है। आत्मा परमात्मा का अंश होते हुए भी महत्ता में परमात्मा से बहुत नीचे है। आखिर आत्मा भी तो जगत-पिता का एक अंश-मात्र ही है।

उनकी वीणा की मधु-कम्पन मुझमें नवजीवन डाल गई। अर्थात् परमात्मा की सुधि, प्रियतम की स्मृति के स्पन्दन से मुझमें नवजीवन-संचार होता है। मैं उनका पथ तो खोज नहीं पाई, हाँ प्रतिध्वनि-सी शून्य में भूलने लगी। माया-मोह के जाल में फँसकर, विषय-वासना तथा भोगों के थोथे आकर्षण में फँसकर आत्मा परमात्मा का मार्ग भूल जाती है, उसके प्राप्त करने के साधनों को वह भूल जाती है। जैसे प्रतिध्वनि देर तक शून्य में टकराती और गूँजती रहती है (जैसे वह भूल रही हो) वैसे ही आत्मा बहुत काल तक इधर-उधर ठोकरें खाती रहती है, भ्रमा करती है—परमात्मा की टोह में। उसका अंतिम लक्ष्य उसे प्राप्त नहीं होता। परमात्मा से आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता।

कवयित्री कहती है कि जैसे आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से प्रयत्न-रत नहीं होती, वैसे ही परमात्मा भी आत्मा को अपनाने में उदासीन रहता है। आत्मा यदि परमात्मा की ओर एक कदम अग्रसर हो तो परमात्मा दो कदम बढ़ता है आत्मा की ओर—पर पहले आत्मा प्रयत्न-रत हो तो।

गीत—१०७ (लय गति मदिर, गति ताल अमर)

शब्दार्थ—सित-असित—श्वेत तथा काला। अवतंश—भाग। लोल—सुन्दर चंचल। सीकर—पानी के छोटे छोटे कण या फुहारा। सीमन्त—बाल।

कवयित्री ने प्रकृति-सुन्दरी की नृत्य करती हुई अप्सरा से तुलना की है तथा रूपक बाँधा है।

हे अप्सरे! तेरे गीत के लय भी मादक है तेरी गति तथा ताल भी अमर है और तेरा नृत्य भी सुन्दर है। प्रकाश और अंधकार यही तो तेरा श्वेत तथा काला वस्त्र है। सागर का गर्जन यही तेरे मँजीरों का रुन-झुन है। झंझा (वायु के तीव्र झोकों) में तेरी अलकावली उड़ रही है। मेघ क्या बोल रहे हैं, जैसे वह तेरी करधनी बज रही हो। हे अप्सरे! तेरा नृत्य सुन्दर है।

प्रकृति-सुन्दरी विश्व में नृत्य कर रही है। उसका नृत्य विश्व में मधुरिमा का सृजन कर रहा है। जब अप्सरा नृत्य करती है तब तबला या मृदंग भी बजता है और पैरों के घुँघरू उस ताल पर नाचते हैं। अप्सरा की करधनी भी हिलने के कारण ध्वनि पैदा करती है, वह सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्र से सुसज्जित रहती है। नाचते समय उसके घुँघराले काले केश हवा में उड़ते हैं, लहराते हैं और उसका अंचल भी हवा में उड़ता है। प्रकृति में अंधकार और प्रकाश ही प्रकृति-सुन्दरी के काले-श्वेत वस्त्र हैं, सागर की गर्जना ही मजीरों की रुनझुन है, आदि। इस प्रकार रूपक बाँध कर कवयित्री ने प्रकृति-सुन्दरी के कार्यों की अप्सरा के नृत्य से तुलना की है।

रवि तथा शशि ही प्रकृति-नटी के सुन्दर अवतंस हैं। तारा-गण ही अमूल्य जड़ाऊ गहनों से युक्त बाल (सीमन्त) हैं। इन्द्र-चपला ही उस प्रकृति अप्सरा के प्रेम-चिह्न (मुद्रायें) हैं। इन्द्र-धनुप ही उसकी मुस्कान है। नृत्य के परिश्रम से उसकी पस

की बूँदें गिरती हैं। ओस की बूँदें ही जैसे उसके पसीने की बूँदें हों। हे अप्सरि ! तेरा नर्तन सुन्दर है।

तू अपनी पलकों को खोलती है, वह ही जैसे काल के युग हैं। पलकों का खोलना, बंद करना ही युगों का बीतना है। स्पन्दन (कम्पन) में ही अगणित जीवन लय हैं। अप्सरा के हृदय का स्पन्दन ही जैसे प्रकृति-सुन्दरी में अगणित जीवनों का लय होना है। प्रकृति में असंख्य प्राणी हैं। उन जीवित प्राणियों की गति ही जैसे प्रकृति-सुन्दरी का स्पन्दन है। तेरी श्वासों में सचराचर जग बेसुध होकर नाच-नाच उठता है। अर्थात् चर तथा अचर जीव प्रकृति की गति से प्रेरित होकर नृत्य-रत होते हैं, कर्मण्यता को प्राप्त होते हैं। प्रकृति का सौन्दर्य विश्व के प्राणियों को मोहित करता है।

तेरी प्रतिध्वनि ही मधु से पूर्ण दिन बन जाती है और तेरी समीपता ही वर्षा-ऋतु के क्षण अर्थात् वर्षा का सुहावना समय बनता है। जैसे वर्षा ऋतु मनोरम होती है वैसे प्रकृति-सुन्दरी से जिसकी निकटता है, उसके हृदयगत-भाव अत्यन्त सुन्दर होते हैं। हे रूपसि ! (रूपवाली) तुम्हारे स्पर्श करते ही अर्थात् प्रकृति के निकट आते ही मनुष्य तुझ पर मर मिटता है अर्थात् तेरे सौन्दर्य के प्रभाव से वह अपनी चेतना तक खोने लगता है। वह बेसुध-सा होने लगता है। जड़ पदार्थ भी तेरा स्पर्श पाकर अमरता का वरदान पा लेते हैं। अर्थात् प्रकृति जड़ वस्तुओं को अपूर्व सौन्दर्य तथा प्रेरणा-शक्ति दे देती है। अप्सरे ! तेरा नृत्य सुन्दर है।

कवयित्री ने प्रकृति के सौन्दर्य, आकर्षण तथा महत्ता का वर्णन रूपक बाँधते हुए एक अप्सरा से किया है। प्रकृति इतनी सुन्दर, महान क्यों न हो। परमात्मा, प्रकृतिपति जो कहलाता है।

कण-कण जड़ हैं, उनके प्याले (कणों से निर्मित वस्तुएँ) आभा-युक्त हैं। उसमें जीवन की मदिरा छलछला रही है। तू फेनिल सीकर को झुक-झुककर, झूम-झूमकर, थक कर घूँट-घूँट पीती है।

तू अपने लास (शृंगार-प्रधान नृत्य) की उल्लासरूपी तन्मयता को प्रसन्न होकर बिखराती जाती है। प्रत्येक कण यही कहता है कि यदि पहले मैं मृदुल अधर को छू लूँ, तो मैं उपहार के समान प्रिय और मन-वाञ्छित बन जाऊँ।

हे सृष्टि तथा प्रलय के आलिंगन ! हे सीमा तथा असीम के मूक मिलन। तुझको कौन कठिन तथा कराल कहता है। तू (प्रकृति) तो कोमलतर है तथा चिर रहस्यमयी है।

हे अप्सरे ! तेरे लिए ही प्राण-दीप जलते हैं। तेरे लिए ही प्रातःकाल होता है। तेरे लिए ही फूल खिलते हैं। हे श्याम अंगवाली प्रकृति अप्सरे ! अत्यन्त मोहक रूप पाकर भी फिर मिट जाता है ! यह सब केवल तेरे ही कौतुक के लिए होता है। हे प्रकृति सुन्दरी ! तेरा लास (शृंगार-नृत्य) अमर है। प्रकृति-नटी का नृत्य अनन्त काल से चलता रहा है और चलता रहेगा।

गीत—१०८ (उर तिमिर मय घर तिमिर मय)

शब्दार्थ—अलस—आलस्यपूर्ण।

कवयित्री कहती है कि मेरे प्रियतम आनेवाले हैं। उनके स्वागतार्थ तू तैयारियाँ कर ले।

मेरा हृदय भी अंधकार से पूर्ण है तथा यह घर (विश्व जहाँ हम रहते हैं) भी अंधकार से व्याप्त है ! इस निराशा तथा अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए हे सजनी, प्रेमरूपी दीपक जला ले। मेरे मार्ग में रात और विहान रो-रो गये हैं। तेरे यह स्वप्न शीशे की भाँति टूटे पड़े हैं। तेरे मान (रूठन)

तेरी भूलें, तेरे स्वप्न आज सब भंग हो गये हैं। मार्ग में सुन्दर फूल भी हैं, किन्तु पथ शूलमय है। तू अपनी सुकुमार पलकें इस शूलमय मार्ग में बिछाले। अर्थात् प्रेम के दुस्तर मार्ग में बाधायें ही बाधायें हैं। तू अपनी मधुर भावनाओं तथा आत्म-बलिदान से इन बाधाओं पर विजय पा ले।

तेरे हृदय के दीर्घ निश्वास उड़कर बादल बन गये हैं जो इस प्यासे, अतृप्त जीवन पर घिर आये हैं। पलकरूपी सीपों में स्वाति-जल पाकर वह मुक्ता हो गए हैं। (आँसू की उपमा मोती से दी जाती है।) यह प्रेमाश्रु अत्यन्त कोमल भावनाओं के फलस्वरूप हैं। यह बरस गए हैं। धूल में मिलकर यह मिट रहे हैं। तू इन प्रेमाश्रुओं को गूँथ कर हार बना ले।

जब मिलने की बेला (समय) हुई, तब तू (आत्मा) जाग कर फिर आलस्य में फँसकर सो गई। स्वप्न में अपनी मुस्कान का मूल्य निर्धारित करके वह वापस चला गया। (पहले भी कहा जा चुका है कि अचेतावस्था 'हाल', में सूफियों का प्रियतम आता है, और अचेतावस्था दूर होते ही प्रियतम चला जाता है। यह भाव अनेक बार अनेक कविताओं में आया है। अब नींद का उपहार लेकर वही प्रतिध्वनि (प्रिय के आगमन के कारण पद-चापों की) आ रही है। अर्थात् निद्रा में फिर प्रियतम आ रहा है। चल सजनी! दीप जला ले।

कवयित्री का प्रियतम आनेवाला है उसके स्वागतार्थ वह प्रकाश करना चाहती है ताकि अंधकार दूर हो जाय। प्रतीक्षा करते-करते वह अलसाकर सो गई और तभी उसका प्रियतम आकर लौट गया। कवयित्री को इसका पश्चात्ताप है।

गीत--१०९ (जागो बेसुध रात नहीं यह)

शब्दार्थ—बतास—समीर। पारद—पारा। पाटल—गुलाब।

कवयित्री कहती है कि प्रकृति भी मेरे दुख सुख से प्रभावित है। ओस की बूँदें मेरे ही अश्रु हैं। मलयानिल मेरी ही निश्वासें हैं, आदि।

ए बेसुध पड़नेवाले ! जागो यह रात नहीं है। यह प्रभात काल है। प्रात: बहनेवाले समीर को तुम मादक मलयानिल न समझो, यह तो मेरे दीर्घ निश्वास है। मेरे हृदय में दुख-सुख भरा है। उस दुख-जल के स्पर्श कर लेने से ही उससे निकलने वाला समीर शीतल है। प्रिय की स्मृतिरूपी सुख के पतंग से स्पर्श करके आता हुआ समीर सुगंधियुक्त है। यह मेरे हृदय की निश्वासें बिखरी हुई हैं, जिसे तुम शीतल मंद, सुगंधित वायु समझ रहे हो। प्रकृति के अवयव भी कवयित्री के दुख-सुख से प्रभावित हैं।

गुलाब के फूल के ऊपर जो तुम हिम-हास देख रहे हो (ओस की बूँदों पर जब प्रकाश की किरणें पड़ती हैं, तो बूँदें झलमल करने लगती हैं जैसे उनमें मुस्कान भर गई हो) वह वास्तव में मेरी पलकों के करुणा के कण हैं (आँसू-क्योंकि वे हृदय की करुण अवस्था के द्योतक हैं)। यह मोती (ओस पारे की भाँति चंचल है। ओस का झलमल करना ही उसकी चंचलता है) ओसरूपी आँसू हृदय से निकल-निकल कर बार-बार ढुल-ढुल पड़ते हैं। वे बनते हैं और बिगड़ते हैं। रात को ओस गिरती है और प्रात: सूर्य-किरणें उन्हें उड़ा ले जाती हैं।

अनन्त अन्धकार के अंतर में जो बिजली क्षण भर को दमक कर (चमककर) छिप गई है, वह मेरे ही विषाद में मेरे प्रियतम को मधुर स्मृतियों की क्षणिक आभा है। प्रियतम के वियोग में दुख का अन्त नहीं है। निराशा का अंधकार मेरे हृदय को [illegible] है। किन्तु इसमें प्रियतम की स्मृति जब आती है तो [illegible]

की क्षीण ज्योति कभी-कभी दिखायी पड़ती है। स्मृति से हृदय में आनन्द की बिजली क्षण भर चमककर छिप जाती है, स्थायी नहीं रहती, वैसे ही स्मृति सम्पूर्ण और स्थायी आनन्द नहीं दे सकती। (वह तो केवल प्रियतम से मिलन पर ही संभव है।)

यह मेरे स्वप्नों का परिहास (खेल-हँसी) नहीं है। स्वयं मेरी वेदना अपने अंचल में आशा का दीपक ढके हुए तथा श्रम-कण (पसीने में) ढुलकते हीरक (गिरती हुई बूँदें) लेकर उपस्थित हुई है। (कवयित्री पूर्ण रूप से निराश है कि उससे उसके प्रियतम का मिलन नहीं होगा) किन्तु निराशा के कारण जो वेदना उसके हृदय में है, तो वह भी तो उसके प्रियतम की देन है। इस प्रकार जब प्रियतम की दी हुई कोई वस्तु स्थायी रूप से उसके हृदय में है, अवश्य ही उसे कभी-कभी आशा होती है—किन्तु क्षीण—कि उससे उसके प्रियतम का मिलन होगा। जैसे दीपक के बुझ जाने के भय से उसे अंचल की ओट में रखना पड़ता है, वैसे ही आशा के दीप को सहेज कर सतर्कता-पूर्वक अपने हृदय में रखना पड़ता है। निराश हृदय में प्रियतम की मधुर स्मृति ही तो केवल उसका आधार है।

कवयित्री आशामय है। वह कहती है कि यद्यपि उसका प्रियतम से मिलन नहीं हुआ, किन्तु प्रियतम की ही दी हुई वेदना उसके हृदय में है। अतः इस वेदना के प्रादुर्भाव से अवश्य ही उसके प्रियतम उसे अवश्य एक न एक दिन अपनायेंगे। इसी से उसे अपनी वेदना इतनी प्रिय है। कवयित्री को अपने पवित्र प्रेम पर पूर्ण विश्वास है। यह उसके प्रेम की शक्ति ही है जो उसके दुख-सुख की छाप प्रकृति के अवयवों पर भी पड़ती है।

गीत—११० (केवल जीवन का क्षण मेरे)

शब्दार्थ—मधुमय परिमल—मधुसिक्त पराग।

कवयित्री की वेदना अनन्त है। प्रकृति स्वयं उसकी वेदना से सहानुभूति रखती है। वह उसकी वेदना को बँटाने तथा उसको कम करने का प्रयत्न करती है।

इस संसार में मेरा कोई नहीं है। केवल 'जीवन का क्षण' ही मेरे हैं। उन्हें ही मैं अपना कह सकती हूँ। वह क्षण हो जो मुझे प्रियतम की स्मृति कराते हैं, मुझे अत्यन्त प्रिय हैं किन्तु तब भी मैं क्यों चिरन्तन प्यास से तड़प रही हूँ। इस सम्पूर्ण विश्व की प्यास का कण-कण मुझे क्यों घेरे है ? किन्तु वह प्यास मुझे परम प्रिय है। प्रियतम के अभाव में जो चिर-अतृप्ति मुझे घेरे है उसका अन्त नहीं है। मेरे जीवन के यह-क्षण बड़े मूल्य वान हैं क्योंकि मेरे प्रियतम की स्मृति उनमें निवास करती है। नत (झुके हुए, जल से भरे होने के कारण बोझ से) घन— (निराशा से पूर्ण) विद्युत, मेरे पल माँग रहे हैं। अर्थात् मेरे निराश जीवन के क्षण मधुर मिलन की आशा की क्षणिक प्रभा माँग रहे हैं। आकाश नित्य अंचल फैलाये हुए, रोकर, (ओस का गिरना ही अम्बर का रोना है) विरह व्यथा से व्याकुल होकर, तथा हँसकर (बादलों की रंग बिरंगी आभा ही उनका हँसना है) दिन-रात उनको माँग रहे हैं। निराश-हृदय आशा की क्षीण ज्योति चाहते हैं। कलियाँ पराग को अपने में भर कर रोती हैं। मेरा हृदय आँसूमय हो जाता है। आँसू निर्झर की भाँति निरंतर झरते रहते हैं। प्रात:काल का मत्त समीर (सुगंध से पूर्ण) मेरे सैकड़ों फेरे लगाता है। मुझे शान्ति, शीतलता प्रदान करने के लिए, जैसे वह मुझसे सहानुभूति दिखाता हो, इसीलिए वह मेरा हित करता है। (प्रकृति के अवय . जैसे

कवयित्री की विरह-वेदना में उससे सहानुभूति रखते हों और उसका दुख बटाने को तत्पर रहते हों ।)

प्रेम की प्यास कभी नहीं बुझती । सागर (मानस) की लहरों-लहरों में प्यास भरी है । तारागण रात भर जल कर बुझ जाते हैं किन्तु दूसरी रात्रि को फिर वह जलने के लिए नया स्नेह (तेल) फिर-फिर भर लाते हैं। अर्थात् ज्यों-ज्यों निराशा और असफलता प्रेम को प्राप्त होती है, वैसे-वैसे ही वह और अधिक प्रयत्न-रत होता है ।

यह लघु पल ही मेरे धन हैं । इनको मैं किसको दूँ, किसको लौटाऊँ ? यह पल कितने मूल्यवान हैं । मधु-सिक्त पराग इन पर वारी जाता है । मुक्ताहल गल कर झर जाते हैं ।

कवयित्री को अपने वह क्षण अत्यन्त अमूल्य लगते हैं जब उसे अपने प्रिय की स्मृति होती है । इन मधुर क्षणों का विनिमय करने को वह प्रस्तुत नहीं है । प्रियतम की याद के वह मधुर क्षण यदि किसी को उपहार में दिये भी जा सकते हैं तो केवल अपने प्रियतम ही को । उसे अपनी वेदना तथा अपने प्रियतम की स्मृति अत्यन्त मधुर है ।

———

1 [illegible] 2. [illegible] 3. [illegible]
[illegible]
2 [illegible]
3 [illegible]
4 [illegible]
[illegible]

[illegible]

1. Washerman = 20 = 100   22 Rs
2. Ma = 25   7 Sarees
3. Paperman = 5
4. Raja = 12   3 picture
5. Gova = 10   3 picture
6. veena baby = 7 for fees   15
7. Rawjan = 2
8. meat = 5
9. table cover = 2 - 8
10. potatoe = 0 - 8
11. Palak = 0 - 4
12. Gola = 0 - 12
13. Gova = 5 - 0 for [illegible]
14. Raja = 1 - 0 [illegible]
15. Soap = 0 - 11
16. Fish = 5 - 00
17. Extra = 3 - 00 Total 105
18. Pen = 2 - 50

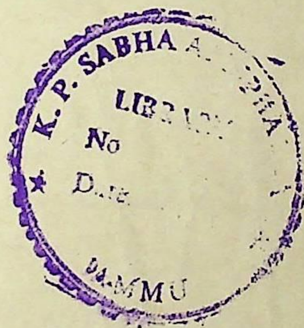


Raj kumari kak
Ram krishen verma

(1) छायावादी काव्य की समस्त विशेषतायें

2. भावाभिव्यंजक के अनुकूल भाषा

3. हृदयग्राही एवं सरस चित्रण है।



Raj Raj Kumari Kak

Raj Kumari R. J. Kumari